ऐ अल्लाह! मेरे सृष्टा,
मालिक और नियन्ता,
मेरे कर्मों को देखने वाले,
मैं दुआ करता हूँ, विनती करता हूँ
और इस विनम्र प्रयास को स्वीकार करने की
प्रार्थना करता हूँ!

इस पुस्तक के पाठकों को
मार्गदर्शन का प्रकाश प्राप्त करने में
उनकी सहायता कर
और क़ियामत के दिन मुझे मुक्ति दे दे!

जिस दिन तेरी दया और कृपा
के अतिरिक्त कोई सहारा न होगा!

आमीन!

ग़लत

फ़हमियाँ

इस्लाम के बारे में ग़लतफ़हमियों का पर्दाफ़ाश

सैयद हामिद मोहसिन

हिन्दी अनुवाद

अब्दुल्लाह दानिश

सलाम सेन्टर

SALAAM Centre

शान्ति और बन्धुत्व का प्रेरक

Ghalat Fehmiyan (Hindi)

ISLAM Facts vs Fictions (English)

Copyright © 2013 SYED HAMID MOHSIN.

ISBN: 978-81-928089-4-9

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, including photocopy, recording, or any information storage and retrieval system, without permission in writing from the author, except for the situation below which is permitted.

For Reprinting

Reprinting or reproducing this book on the condition that absolutely no change, addition, or omission is introduced is permitted free of charge. To make high quality reprints, you may contact the author / Salaam Centre to obtain free copies of the soft copy or printing files of this book.

The web site of this book :

This e-book is available on the Web, world wide at:
www.Misconceptions.in, www.QuranForAll.in

Price: Rs. 150/-

Printed and Published by :
SALAAM CENTRE
65, Ist main, S.R.K. Garden, Jayanagar, Bangalore – 560 041
Branch: #5, Rich homes, Richmond Raod, Bangalore - 560 025
Contact: +91 99011 29956 / +91 99451 77477 / 080-2663 9007
Email: salaamcentrebangalore@gmail.com

विषय सूची

✯	मिथक और यर्थाथ	1
✯	प्रेम हमें जोड़ता है	2
✯	सतही धारणाओं का चलन	4
✯	भेदभावपूर्ण इतिहास	4
✯	पाकिस्तान और भारतीय मुसलमान	5
✯	786	6
✯	चाँद और तारा	7
✯	शरारतपूर्ण दुष्प्रचार	7
✯	पाकिस्तानी झण्डा	7
✯	आपत्तिजनक माँस	8
✯	लव जेहाद	9
✯	राज परिवारों का प्रेम	13
✯	बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध मामले	14
✯	जिज़िया, महत्व और पृष्ठभूमि	17
✯	वन्दे मातरम् राष्ट्रवाद से बढ़कर राजनीति	22
✯	तलाक़ (विवाह-विच्छेद)	24
✯	खुलअ, तलाक पाने का महिलाओं का अधिकार	26
✯	फ़तवा	27
✯	कुफ़्र और काफ़िर	29
✯	मुसलमान माँसाहारी क्यों होते हैं?	30
✯	क्या माँसाहारी भोजन लोगों को हिंसक बनाता है?	32
✯	हलाल और हराम (वैध और अवैध)	33
✯	हलालः जानवरों को ज़बहः करने का इस्लामी तरीक़ा	34
✯	हरामः शराब और जूआ पर प्रतिबन्ध	34
✯	बलात्कार : लैंगिक आतंकवाद	36
✯	इस्लामी क़ानून में व्यभिचार और बलात्कार में अन्तर	37
✯	क्या इस्लामी राज्य और मुस्लिम देश में कोई अन्तर है?	38
✯	मुसलमान या मुहम्मडन	40
✯	शीया और सुन्नी मुसलमान	42

✯	क्या उर्दू विदेशी भाषा है?	46
✯	मदरसा शिक्षा व्यवस्था	47
✯	मस्जिद	50
✯	मस्जिद के अन्दर की कुछ विशेषताएँ	51
✯	''पूरी धरती मस्जिद है''	52
✯	अज़ान (नमाज़ के लिए पुकार)	44
✯	इस्लाम में पुरोहितवाद नहीं	55
✯	क्या मुसलमान काबा की पूजा करते हैं?	56
✯	काला पत्थर	58
✯	ग़ैर मुस्लिमों को मक्का में जाने की अनुमति क्यों नहीं है?	60
✯	दरगाहों का दर्शन	61
✯	दरगाह और मस्जिद में अन्तर	62
✯	अल्लाह और पैग़म्बर की मूर्तियाँ क्यों नहीं	64
✯	क्या पैग़म्बर मुहम्मद ने इस्लाम को तलवार से फैलाया	67
✯	क्या इस्लाम ताक़त से फैला?	70
✯	पर्सनल लॉ	78
✯	आबादी का राक्षस	78
✯	मुस्लिम तुष्टीकरण	80
✯	टीपू सुल्तान एक राष्ट्रप्रेमी जिसकी छवि धूमिल कर दी गई	84
✯	प्राचीन शत्रुताः आधुनिक घृणा	91
✯	हमारे राजनैतिक तन्त्र को साम्प्रदायिक जहर से मुक्त करो	101
✯	जेहाद	106
✯	महान जेहाद	107
✯	सर्वोत्तम जेहाद	107
✯	निम्न जेहाद	108
✯	सामाजिक जेहाद	110
✯	पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की युद्ध धारणा	112
✯	जेहाद शब्द : उपयोग और दुरुपयोग	116
✯	धर्म का दुरुपयोग	120
✯	दमन और आतंकवाद, क्या इनमे कोई अन्तर है	123
✯	इस्लाम के विरुद्ध नफरत का प्रसार	128
✯	मीडियाः आतंकवाद की दोहरी परिभाषा	131

✯	आतंकवाद की जड़ें	134
✯	हिंसा आतंकवाद और नरसंहार की सूची में पश्चिम सबसे आगे	138
✯	इस्लाम में आत्मघाती हमला हराम है	145
✯	इस्लामी रुढ़िवाद	149
✯	महिलाएँः अज्ञात अतीत और अनिश्चित वर्तमान	153
✯	महिलाओं के सम्बन्ध में इस्लामी दृष्टिकोण (सीधे मौलिक स्रोतों से)	159
✯	इस्लामी क़ानून के अन्तर्गत महिलाओं के अधिकार	161
✯	इस्लाम में महिलाओं के कर्त्तव्य	164
✯	हिजाब या बुर्का	167
✯	हिजाब बुद्धिमानी और सुविज्ञता का शिखर	171
✯	महिलाओं की रजामंदी; इस्लामी दृष्टिकोण	172
✯	मुस्लिम महिलाओं के सम्बन्ध में आज के कुछ विवादित मामले	174
✯	इस्लामी क़ानून में क्यों महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले विरासत आधी मिलती है।	174
✯	यद्यपि सभी पश्चिमी देशों में महिलाओं ने मताधिकार प्राप्त कर लिया है, अनेक मुस्लिम देशों में महिलाओं को अभी तक यह अधिकार क्यों नहीं दिया गया है?	176
✯	महिलाओं की शिक्षा और वाहन चलाने का अधिकार	177
✯	बहुविवाह और एकल विवाह	178
✯	पश्चिमी हथियार	178
✯	यहूदी धर्म में बहुविवाह	179
✯	ईसाई धर्म में बहुविवाह	180
✯	हिन्दू धर्म में बहुविवाह	181
✯	पश्चिमी समाज में बहुविवाह	182
✯	इस्लाम धर्म में बहुविवाह	183
✯	पवित्र पैग़म्बर और उनका पारिवारिक जीवन	186
✯	पैग़म्बर (सल्ल0) के अनेक विवाह	188
✯	बहुविवाह के कारण	189
✯	इस्लाम में विधवाओं तलाकशुदा महिलाओं का विवाह	198
✯	क़ुरआन की आयतें जिनका ग़लत अर्थ समझा गया है	201
✯	आभार	211
✯	हवाले	213

परिचय

हम आज समस्याओं भरे दौर से गुज़र रहे हैं। राष्ट्र-राज्यों की सीमाओं ने मानवता के बीच दूरियाँ पैदा कर दी हैं। अन्तर्सामुदायिक सम्बन्धों को ऐसी ताकतों की ओर से लगातार चुनौती मिल रही है जो धार्मिक, जातीय और भाषाई भावनाओं का शोषण कर रही हैं। धर्म का प्रयोग जनता में आध्यात्मिक शान्ति का प्रसार करने के बजाए उसको बाँटने के लिए किया जा रहा है। उपभोक्तावाद और व्यापारवाद की प्रवृत्तियाँ मिलकर लोगों और राष्ट्रों की प्राकृतिक सम्पत्ति पर डाका डाल रही हैं। उपभोक्तावाद की जो शक्तियाँ अन्तर्राष्ट्रीय ताकतों का मार्गदर्शन कर रही हैं वह हथियारों के उद्योग के पहिए को गतिशील रखने के लिए युद्धों को बढ़ावा देने पर उतारु हैं। बुद्धिजीवी वर्ग, शोध संस्थाएँ और मीडिया, जो इनकी योजनाओं का रहस्य खोल सकती थीं वह उनकी आलोचना करने से बच रही हैं क्योंकि ये उनकी उदारता पर निर्भर हैं। उनके सहयोग के बिना सिविल सोसाइटी की आवाज़ कहीं नहीं सुनी जा सकती।

यह सर्वमान्य सत्य है कि युद्धों को बढ़ावा देने से पहले मुस्लिम समुदाय के विरूद्ध प्रचलित धारणाओं के द्वारा द्वेष भड़काने वाली और नफ़रत फैलाने वाली मीडिया द्वारा अभियान चलाया जाता है और उसे बदनाम किया जाता है। इन अभियानों ने पूरी दुनिया में सामाजिक समरसता को बहुत अधिक क्षति पहुँचाया है। अतः हम देख रहे हैं कि आज अन्तर्राष्ट्रीय चैनलों के माध्यम से बहुत अधिक नफ़रत फैलाई जा रही है और सत्ता के पदों पर आसीन लोगों की ओर से युद्ध की घोषणाएँ की जा रही हैं। इन परिथितियों में जो लोग तटस्थ रहते हैं या परिस्थितियों के सम्बन्ध में निर्णय न कर पाने के कारण चुप रहते हैं उनसे यह स्पष्ट करने के लिए कहा जाता है कि आप बताइए कि आप उनके(आतंकवादियों) साथ हैं अथवा हमारे साथ।

पिछले वर्षों में मीडिया द्वारा जो लगातार दुष्प्रचार किया गया है उसने मुस्लिम समुदाय के विरुद्ध द्वेष को मज़बूत किया है। यह द्वेष इतिहास की ग़लतफ़हमियों, ग़रीबों के संसाधनों पर अधिकार पाने के लिए स्पर्धा, और राजनीति पर आधारित है। इस तरह ग़रीबों, कमज़ोरों और निम्न वर्गों के लोगों के अक़ीदों (विश्वास) और

सामाजिक परम्पराओं को बदनाम किया जाता है और दुनिया में फैली बुराईयों के लिए उन्हीं को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। विडंबना यह है कि महाशक्तियों के आतंक का शिकार और आर्थिक लालच का शिकार होने वालों पर ही आतंकवादी होने का आरोप लगाया जा रहा है। जेहाद जैसी धारणाओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है मानो यह निर्दोषों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा हो। निर्दोषों को खलनायक बनाने के खेल के पीछे कौन हैं? इस संबंध में मुश्किल से ही कोई संदेह हो सकता है ।

यह स्पष्ट करने की भी ज़रूरत नहीं कि तेल के कूँओं और ऊर्जा के स्रोतों पर नज़र कौन लगाए हुए है और घृणा और युद्ध की आवश्यकता किसको है। अब समय आ गया है कि इस खेल को हम समझें और खुले हुए झूठ का रहस्य मालूम करें। लोगों को एक मंच पर लाने और एक-दूसरे की ताकत से लाभ उठाने के लिए एक-दूसरे के अक़ीदे की सकारात्मक समझ पैदा करने की एक कोशिश के दूरगामी परिणाम हमें प्राप्त होंगे।

विभिन्न सम्प्रदायों के बीच ग़लतफहमियों को मज़बूत बनाने के लिए पश्चिमी देशों ने काफी काम किया है। मध्य-पूर्व में आतंकवाद के विरुद्ध तथाकथित युद्ध, 10 लाख से अधिक मौतों के लिए ज़िम्मेदार है। और इसकी जड़ें *क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन्स* और गोरी नस्ल के प्रभुत्व के विषैले सिद्धान्तों में निहित हैं। अभी अधिक दिनों की बात नहीं है कि दो-राष्ट्र के सिद्धान्त ने उपमहाद्वीप में यही भूमिका अदा की। विचारों और दृष्टिकोण के स्तर पर इनका विरोध करने की आवश्यकता है। यदि लोगों को एक-दूसरे से निकट लाना है और शान्ति और सद्भाव के साथ लोगों को रहना है तो प्रत्येक को विकास में सहयोग देना होगा और भेद-भाव और नफ़रतों से वैचारिक स्तर पर लड़ना होगा। सभी समुदायों के लोगों द्वारा जीवन स्तर में सुधार के लिए सामाजिक कार्य-योजना के रूप में इन विचारों को जनता में पहुँचाना होगा। साम्प्रदायिक राजनीति और आतंक की राजनीति के पीछे निहित सच्चाइयों की जानकारी को समाज के सभी वर्गों तक ले जाने की आवश्यकता है।

हममें से कुछ लोग अनेक वर्षों से इस काम में लगे हुए हैं। इस काम को और अधिक तेज़ करने की आवश्यकता है और इसमें और अधिक कार्यकर्त्ताओं, शिक्षकों और सम्बन्धित व्यक्तियों को सम्मिलित करना है। इस महत्वपूर्ण कार्य को आगे बढ़ाने में मदद करने के लिए ही हमने इस पुस्तक *''इस्लामः तथ्य बनाम मिथक''* को प्रकाशित किया है।

प्राकथन

आज हम जिस दुनिया में रह रहे हैं वह सिमट कर एक गाँव बन गई है, क्योंकि हम आज विचारों का आदान-प्रदान और बात-चीत पूरी दुनिया के लोगों से कभी भी कर सकते हैं। यदि राष्ट्र और इनकी जनता सीमाओं की अनदेखी करने का फैसला करें तो नई मीडिया ने भौतिक सीमाओं को पहले ही अर्थहीन कर दिया है। सूचना क्रान्ति ने हम सबके लिए यह संभब बना दिया है कि हम अपने आप को ग्लोबल (विश्व व्यापी) गाँव के नागरिक के रूप में देख सकें। हालाँकि हम अधिकतर निराश और आपस में युद्धरत देशों के नागरिक हैं। लेकिन यह हमारे अन्दर इस तीव्र इच्छा का आहवान करती है कि हम अलग पहिचान का दावा करने के बजाए अपने मन में समान मूल्यों की आकांछा रखें। दुनिया के लोगों के पास दोनों विकल्प हैं; सांस्कृतिक इकाइयों के रंग विरंगे बूटों की तरह जीयें या एक दूसरे से युद्धरत देशों की कड़ाही में जलें।

हमारे पीछे जो एक सदी का अन्तराल गुज़रा है उसमें दुनिया ने दो विश्व युद्ध, दीर्घकाल तक चलने वाला शीत युद्ध देखा और इस समय हम आतंक के विरूद्ध कथित युद्ध देख रहे हैं। क्या इन युद्धों ने दुनिया को बेहतर, रहने योग्य, समृद्ध और शान्तिपूर्ण स्थान बना दिया है? अधिकतर लोग मुझसे सहमत होंगे कि शान्ति हमसे जितनी दूर पहले थी अब उससे अधिक दूर हो गई है,और शान्ति की तलाश वास्तविकता की तुलना में भाषण अधिक है। अधिकतर युद्ध उन लोकतन्त्रों द्वारा छेड़े गए जो हथियार उद्योग की लाबियों द्वारा बन्धक बना लिए गये थे। आतंक के विरूद्ध युद्ध का परिणाम जनता के आतंकित होने के रूप में निकला है और उन लोगों को न्याय दिलाने- जिनको इस दौरान न्याय नहीं मिला था-के बजाए एक के बाद एक देश नष्ट कर दिए गए। मीडिया का प्रयोग दिलों को जोड़ने के बजाए मन में दीवारें खड़ी करने के लिए अधिक किया गया। जो लोग पहले से संसाधनों और औद्योगिक विशेषताओं से परिपूर्ण थे, उनकी खुशहाली को गरीबों और संसाधनहीन लोगों की कीमत पर सुनिश्चित किया गया। दुर्भाग्यवश यह वही ग़रीब और संसाधनहीन लोग हैं जिनको लगातार शान्ति के दुश्मन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

अतः यह हमारे लिए प्रश्न करने का समय है कि विश्व-शान्ति कैसे सुनिश्चित होगी। दूसरों को बदनाम करना और नफ़रतें पैदा करना वास्तव में शान्ति का रास्ता नहीं है। नफ़रत से केवल नफ़रत ही पैदा होगी। नस्लीय, धार्मिक, साम्प्रदायिक और जातीय विविधताएँ सदैव रहेंगी, ये विविधताएँ हमारे अस्तित्व को सुगन्धित करेंगी और इसमें रंग भरेंगी और मानवता को उदासीनता से मुक्त कराएँगी। इन चीज़ों को लोगों के बीच बँटवारे, टकराव और तनाव का आधार नहीं बनना चाहिए। असहनशीलता और पूर्वाग्रह पैदा करने वाली और हमारी अलग पहिचान का दावा करने वाली नफ़रत को बढ़ाने के बजाए प्यार, सहानुभूति और सहनशीलता जैसी जोड़ने वाली चीज़ों को बढ़ावा देना चाहिए। दुनिया के सीमित संसाधनों पर अधिकार करने के लिए द्वेष, प्रतिद्वन्दिता, स्पर्धा के बजाए समता, समानता और न्याय का लक्ष्य भविष्य की ओर बढ़ने में हमारे मार्गदर्शक सिद्धान्त होने चाहिए। हमारे मार्ग को प्रकाशित करने वाली चीज़ें समृद्धि की चाह के बजाए सन्तोष, एकाधिकार के बजाए साझेदारी और अपभोग के बजाए संरक्षण होना चाहिए। यह संसार उन लोगों के हाथ में सुरक्षित रह सकता है जो भिन्नता का सम्मान करते हैं, जो दूसरों का सम्मान करते हैं और जो दूसरों को वरीयता देते और साझा करना चाहते हैं। इसका उन लोगों के साथ कोई भविष्य नहीं, जो पूर्वाग्रहों को बढ़ाने में आनन्द लेते हैं, नफ़रत बेचते हैं और दुनिया पर प्रभुत्व प्राप्त करने की इच्छा ही उनको गतिमान करने वाली एक मात्र प्रेरणा होती है।

सहनशीलता और सहअस्तित्व ही भारतीयता का मूल हैं। वह भू-क्षेत्र जिसे हम भारतवर्ष कहते हैं, हजारों वर्षों से विविधताओं को साथ लेकर चल रहा है। हम अपने संविधान के दूरदर्शी निर्माताओं के ऋणी हैं जिन्होंने एक ऐसा दस्तावेज़ लिखा जो सबके लिए समानता और न्याय को सुनिश्चित करता है और इसके साथ-साथ लोगों की ऐतिहासिक विविधता को अपने अन्दर स्थान उपलब्ध कराता है। हमारे हाथ ऐसे लोगों को सलाम करने के लिए उठते हैं जिन्होंने साम्प्रदायिक आधार पर बँटवारे के दुख की अनदेखी करके हम सबको सिद्धान्तों का एक ऐसा चार्टर दिया और दिशा-निर्देशक सिद्धान्त दिया जिससे हम अपनी पहिचान को तलाश कर सकते हैं, और उन्होंने कभी राजनीति को दूषित नहीं होने दिया। हमारे सपनों में कुछ ताकतों ने खटास पैदा की है जो अनेक दशकों के बाद हमारे अद्भुत दस्तावेज़ को धुँधला कर रही हैं और कुछ समुदायों को बदनाम कर रही हैं। हमें ऐसा नहीं होने देना चाहिए। नफ़रत दिलों के बीच दीवारें खड़ी करती है और इसका परिणाम गलियों के युद्ध के रूप में सामने आता है। यह केवल एक छोटे भाषण की आग जलाने की प्रतीक्षा करता है जो देश के सामने दुर्भाग्यपूर्ण परिणामों के रूप में विस्फोटित होता है। इसे हम केवल अपने लिए एक घातक कदम के रूप में ही बर्दाश्त कर सकते हैं।

जो ताकतें उन मुसलमानों के विरुद्ध पूर्वाग्रह उत्पन्न करती हैं जिनकी जनसंख्या हमारी आबादी की 13 प्रतिशत है, वे निश्चित रूप से देश की शुभचिन्तक नहीं हैं। हमारी नियति साझेदारी वाले भारतीय समाज में निहित है। अलगाव का आरम्भ मानसिक कैनवॉस पर होता है और इसकी छाया फैलकर राजनीति तक जाती है। अतीत में हम हिंसक आपदाओं को देख चुके हैं। इसलिए समझदारी यह होगी कि हम पूर्वाग्रहों को उनकी शैशवावस्था में ही मिटा दें और उन्हें अपने इतिहास की पाठ्यपुस्तकों, साहित्य, पत्रकारिता, मीडिया और राजनीतिक वार्त्ताओं में प्रवेश न होने दें।

पिछले वर्षों के दौरान मुसलमानों के बारे में जनता में बहुत सी ग़लतफ़हमियाँ पैदा हो गयी हैं। सलाम सेन्टर के संस्थापक और अध्यक्ष श्री हामिद मोहसिन ने उन्हें बहुत परिश्रम के साथ प्रस्तुत पुस्तक में एकत्र किया है और तथ्यों और मिथकों को आमने-सामने रख दिया है। तथ्यों के ऊपर से धोखे के पर्दे को उन्होंने सावधानीपूर्वक फाड़कर ऐसे आरोपों के अन्तर्गत ढकी हुई सच्चाई को उजागर किया है जो जेहाद को आतंकवाद के समान बताती हैं। यह किताब अपनी आलोचना में उन मुसलमानों को भी नहीं छोड़ती जो इस्लाम की वरीयता का दावा करने के शौक में मुस्लिम समुदाय को मुख्य धारा से अलग कर रहे हों और चरमपंथी दक्षिणपंथी ताकतों के हाथों में खेल रहे हों। आत्मनिरीक्षण का यही पहलू इस किताब की पहिचान है। मैं अनुशंसा करता हूँ कि ***''ग़लतफ़हमियाँ:*** *इस्लाम के बारे में गलतफ़हमियों का पर्दाफाश''*को सभी भारतीय पढ़ें ताकि वह हर तरह की नफ़रतों और गर्व की भावनाओं से अपने आप को मुक्त कर सकें। अन्ततः हम सब भारतीय हैं, न इससे कुछ अधिक हैं और न इससे कुछ कम, और हमारी नियति एक साथ मिलकर खेने और तैरने में निहित है अन्यथा हम इस तरह डूब जाएँगें कि हमारा निशान तक न बचेगा।

बंगलौर
फरवरी, 15, 2013

डा0 यू.आर. अनन्तमूर्ति

This document was created with the Win2PDF “Print to PDF” printer available at

https://www.win2pdf.com

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.
Visit https://www.win2pdf.com/trial/ for a 30 day trial license.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

https://www.win2pdf.com/purchase/

मिथक और यथार्थ

हम ऐसे युग में जीवन व्यापन कर रहे हैं जिसमें लोगों, व्यक्तियों, राष्ट्रों और धर्मों के बीच के समीकरण लगातार बदल रहे हैं और ये जनता के मनोविज्ञान पर प्रभाव डालते रहते हैं। यह युग हम सबका आह्वान करता है कि हम अपने आप और अपने कर्मों को बदलें और विश्वासों, सिद्धान्तों और रीतियों पर बार-बार जमने वाली धूल और मिट्टी को झाड़ते रहें।

इस्लाम भारतीय परिदृश्य पर 1000 वर्षों से भी अधिक समय से मौजूद है फिर भी आज इसके ऊपर बहुत से प्रश्न चिन्ह लगाये जा रहे हैं। इस उपमहाद्वीप में हिन्दू और मुसलमान जमी हुई वर्फ की तरह नहीं रहे हैं। उन्होंने एक ही ज़मीन पर साझेदारी की है और गंगा और सिन्ध जैसी पवित्र नदियों से दोनों ने पानी पीया है और कला, हस्तकला, संस्कृति और परम्परा में एक-दूसरे से मेल-जोल रखा है। इसके बावजूद मीडिया, विघटनकारी राजनीति और उपमहाद्वीप में राष्ट्रों के रणनीतिक हितों की भिन्नता के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सम्बन्धों के ऊपर सन्देहों की काली छाया फैल गयी है। पड़ोसियों के बीच दूरियाँ बढ़ गयी हैं और बिल्कुल सामान्य लोग सामान्य गतिविधियों के उल्टे ही राजनीतिक अर्थ निकालते हैं हालाँकि उतने ही सामान्य लोगों ने इससे पहले कभी एक-दूसरे पर त्यौरियाँ नहीं चढ़ाई थीं।

अरब के रेगिस्तान में अपने उदय होने के 100 वर्ष व्यतीत होने से पहले ही इस्लाम ने सिन्ध के दरवाज़ों पर दस्तक दे दिया था लेकिन दिल्ली में पहली मुस्लिम सल्तनत 1191 ई0 के बाद ही स्थापित हुई। जब भारत के मामलों का प्रशासन ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों ने आरम्भ किया उससे बहुत पहले मुस्लिम सूफियों और सन्तों के समूहों ने यहाँ सभी धर्मों के लोगों के बीच आध्यात्मिकता, शान्ति और ज्ञान का प्रकाश बिखेरने के लिए ख़ानकाहें स्थापित कर ली थीं।

महाद्वीप में सूफियों की एक लम्बी श्रृंखला ने शान्ति प्रेम और सद्भाव का सन्देश फैलाया और इस धरती के सभी धर्मों के हजारों लोगों के प्रेम और श्रद्धा को प्राप्त किया।

हिन्दू और इस्लामी संस्कृति, भाषा और निर्माणकला, भारतीय संगीत, कव्वाली,

ग़जल, उर्दू, मुग़लई व्यंजन, मुग़ल चित्रकला, सिख धर्म, कबीरपंथ, आर्य समाज और इस तरह की अन्य साझा समृद्ध प्रवृत्तियाँ इसी मेल-जोल का परिणाम थीं।

राज परिवार आते और जाते रहे। युद्ध देशों की सीमाओं को लगातार बदलते रहे और राजनीतिक परिवर्तन नए समीकरण बनाते रहे। विकसित होने वाले आन्दोलन और राजवंशों के पतन की विरासतें, इन सम्बन्धों पर अपना अलग प्रभाव छोड़ती रहीं। मुग़ल साम्राज्य का सूरज 1857 में डूब गया और ब्रिटिश इस धरती के नये मालिक बन गए। काफी दूर से राज करने वाले इस उपनिवेशवादी साम्राज्य के लिए ऐसी विरासत की आवश्यकता थी जिसमें भारतीय कौमों के अन्दर एकता बढ़ाने वाली परम्पराओं के बजाए उनको तोड़ने की ताक़त हो। एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था लागू कर दी गई जो उनकी शासन व्यवस्था के लिए क्लर्कों की आवश्यकता पूरी करती और जनता के बीच अलगाव पैदा करती हो। ऐसे लोग जिन्होंने कभी धर्म पर आधारित नफ़रत नहीं देखी थी वह एक-दूसरे को 'हम' और 'वे' की शब्दावली में सम्बोधित करने लगे।

शैक्षिक पिछड़ेपन और स्थानीय भाषाओं को लिखने और बोलने में निपुणता न होने के कारण आज मुसलमान अपने देशवासियों के सामने अपनी बात कह पाने में असमर्थ हैं। इसके कारण उनकी छवि धूमिल हो रही है। उनके बारे में आसानी से मिथक गढ़ लिए जाते हैं और सफलतापूर्वक फैला दिए जाते हैं। तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया हुआ इतिहास निर्दोष नागरिकों के मन को विषैला बना रहा है। उनकी कमियों को नमक-मिर्च लगाकर फैलाया जाता है और उनकी उपलब्धियों को या तो कम करके प्रस्तुत किया जाता है या उनकी अनदेखी की जाती है। सामान्य जनता के बीच विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम छीन लिया गया है। अतः इनके बीच विचारों के आदान-प्रदान के माध्यमों को बहाल करने की आवश्यकता है अन्यथा ग़लत जानकारियों और ग़लत फ़हमियों के अँधेरे में भटकने से संकट और गहरा हो जाएगा।

प्रेम हमें जोड़ता है

हथियारबद्ध लड़ाकों और अपराधियों द्वारा भारत के धार्मिक तनाव को अपनी साज़िशों से मनचाहा मोड़ दिया जाता है और राजनीतिज्ञ अपने कौशल द्वारा इसे इस सीमा तक बढ़ा देते हैं कि भारत की धार्मिक भावनाएँ शोषण की वस्तु बन जाती हैं और भारत की हिन्दू और मुस्लिम आबादी के बीच यही तनाव दूरियों को बढ़ाने का कारण बनते हैं।

भारत के एक वयोवृद्ध राजनेता कहते हैं कि भारत में अक्सर यह प्रवृत्ति पायी जाती

है कि मुसलमानों को 'हमारे' कहने के बजाए 'वे' कहा जाता है और इस प्रवृत्ति के भयानक नतीजे सामने आ रहे हैं। आज भी मुसलमानों को लगभग उस धारा से अलग रखा गया है जिसे हम राष्ट्रीय मुख्यधारा कहते हैं?

आपसी विश्वास की कमी से साम्प्रदायिकता को पोषण मिलता है और इससे गढ़ी हुई बातों से अर्धसत्य और असत्य को बढ़ावा मिलता है। साम्प्रदायिक शक्तियाँ हर उस चीज़ का अपने हित में प्रयोग करती हैं जो नफ़रत को बढ़ाती हो और धार्मिक भावनाओं को भड़काती हो। वह बिना वजह दूसरों के विरुद्ध नफ़रत भड़काती हैं और लोगों के अन्दर अनावश्यक गर्व पैदा करती हैं। दूसरों का उपहास करना और अपने आपको, अपनी ताक़त को और अपनी ख्याति को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करना उनका पसन्दीदा शौक होता है। इस उद्देश्य के लिए तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया हुआ इतिहास, दूसरों की छवि बिगाड़ने का प्रयास, और समझ का प्रयोग न करने की आदत को बढ़ावा देने जैसे साधनों का प्रयोग चलन में है।

भारत में 200 मिलियन से अधिक मुसलमान आलोचना और अपमानजनक अभियान का शिकार बनाए जाते हैं। लगभग सभी सम्प्रदायों की यही नियति होती है जिसके नतीजे में साम्प्रदायिक इर्ष्या बढ़ती है। उनके लिए, हिंसा भड़काने के लिए एक छोटी सी घटना की आवश्यकता होती है। हम धर्म-निरपेक्ष और विविधतावादी लोकतन्त्र के नागरिक जैसा व्यवहार कम ही करते हैं, जहाँ धर्म हमें बन्धुत्व, प्रेम और आपसी सम्मान के बन्धन में बाँधने के लिए एक सकारात्मक शक्ति का काम करता हो। ऐसे सवाल कि इसे किसने और क्यों किया, इतने स्पष्ट होते हैं कि उनके उत्तर की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन वास्तविकता यह है कि पहले ही जितना कीचड़ उछाला जा चुका है और वह जितना जम चुका है उसे भी बहुत अधिक रगड़ कर छुड़ाने की आवश्यकता है।

यह तभी संभव है जब भारत की दो मुख्य क़ौमों के बीच बातचीत के दरवाज़े खोले जाएँ और वह एक-दूसरे को सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सन्दर्भ में समझने का प्रयास करें। उन्हें एक-दूसरे के धर्मों को समझना और सम्मान करना होगा और साम्प्रदायिक सद्भाव और बन्धुत्व की भावना पैदा करना होगा। घृणा हमें बाँटती है और प्रेम हमें जोड़ता है, दोस्ती बढ़ाने के लिए हमें इसी लक्ष्य को अपनाना चाहिए और अपने लोगों के विकास के लिए हमें मिलकर काम करना चाहिए।

सतही धारणाओं का चलन

समाज में मुसलमानों की छवि और व्यवहार के बारे में बहुत सी ग़लत धारणाएँ पायी जाती हैं। उदाहरण के लिए सामान्य व्यक्ति की जानकारी के अनुसार मुस्लिम पर्सनल लॉ, चार पत्नियाँ रखने की अनुमति देने और अनचाही पत्नी को छोड़ने के लिए तीन तलाक़ देने की सुविधा तक सीमित है। इसी तरह सभी मुसलमानों को सामान्य रूप से परिवार नियोजन के सम्बन्ध में उदासीन समझा जाता है। इन धारणाओं के कारण मुस्लिम समुदाय की आबादी में तीव्र वृद्धि का आरोप आसानी से हाथ आ जाता है। इसके बारे में कहा जाता है कि यह वृद्धि बहुसंख्यकों को जल्द ही अल्पसंख्यक बना देगी। इतिहास में किए गए तोड़-मरोड़ ने आग में घी डालने का काम किया है। उदाहरण के लिए मुसलमानों की संख्या बढ़ाने के लिए बलात धर्म परिवर्तन का झूठा आरोप, मन्दिरों को तोड़ना और उनके स्थान पर मस्जिद का निर्माण, मूर्तियों को तोड़ना, आदि फैलायी गयी भ्राँतियाँ मुसलमानों को खलनायक के रूप में प्रस्तुत करती हैं। और इस आधार पर यदि बदला लेने की माँग नहीं की जाती तो कम से कम बदला लेने को उचित अवश्य ठहराया जाता है। यह ग़लत धारणा कि मुसलमान एक साथ किसी पार्टी को वोट देते हैं और मुस्लिम दलों का चुनाव क्षेत्र में अलग अलग उतरने को अल्पसंख्यकों की राजनीतिक रणनीति के रूप में देखा जाता है। जब कुछ राजनैतिक दल पैग़म्बर के जन्म दिन को राष्ट्रीय अवकाश घोषित करने की चुनावी चाल चलते हैं या मुसलमानों की दशा को सुधारने के लिए कोई कदम उठाते हैं तो इसे तुष्टिकरण और अल्पसंख्यकवाद का नाम दिया जाता है और फिर दिलों की खाई बढ़ाने और टकराव के लिए मंच तैयार हो जाता है।

भेदभावपूर्ण इतिहास

मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच खाई को चौड़ा करने के लिए और निहित राजनीतिक स्वार्थों को पूरा करने के लिए औरंगज़ेब और टीपू सुल्तान जैसी ऐतिहासिक हस्तियों की छवि को भेदभाव के साथ प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए औरंगज़ेब द्वारा बनारस के मन्दिर को ध्वस्त करने की घटना को चुनकर प्रचारित किया जाता है। औरंगज़ेब द्वारा गोलकुण्डा की जामा मस्जिद को ध्वस्त करने की घटना का कोई उल्लेख नहीं किया जाता। इस मस्जिद को इसलिए गिराया गया था कि कुतुबशाही राजा अबुल

हसन तानाशाह द्वारा इस मस्जिद के परिसर को अपनी ग़लत ढंग से एकत्र की हुई पूँजी को रखने के लिए प्रयोग किया जा रहा था। इन दोनों घटनाओं में औरंगजेब ने पूजाघरों का ग़लत प्रयोग होते हुए पाया था। दूसरी तरफ कुछ मुस्लिम इतिहासकारों ने औरंगज़ेब के कामों का उल्लेख पवित्र शब्दों के साथ और प्रशंसा के साथ किया है। जो कि उचित नहीं है क्योंकि इस राजा ने अपने बीमार पिता शाहजहाँ को लगभग सत्रह वर्षों के लिए क़ैद कर दिया और अपने तीन भाईयों की निर्मम हत्या कर दी। यदि तथ्यों के आधार पर देखा जाए तो उसका प्रत्येक कदम मात्र अपनी सत्ता को बरकरार रखने की रणनीति के रूप में उठाया गया था। उसके ये कदम न कुछ इससे अधिक थे और न इससे कम। न तो उसको शेर के रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है और न उसके अस्तित्व को कम करने की आवश्यकता है।

पाकिस्तान और भारतीय मुसलमान

यह एक बहुत बड़ा मिथक है और इसे चरम पंथी समूह प्रचारित करते हैं कि पाकिस्तान मुसलमानों के लिए पवित्र भूमि है। वास्तविकता यह है कि इस्लामी मान्यता के अनुसार मुसलमानों के लिए कोई भूमि पवित्र नहीं है। किसी भी भू-भाग के साथ पवित्रता बँधी हुई नहीं है। इससे बढ़कर पाकिस्तान के साथ कोई इस्लामी महत्व नहीं जुड़ा है जिस तरह मक्का से जुड़ा है, जहाँ काबा स्थित है, और मदीना से जुड़ा है जहाँ पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की मस्जिद ''मस्जिद-ए नबवी'' स्थित है। पाकिस्तान, मलेशिया, चाड और उज़्बेकिस्तान की तरह दुनिया में फैले हुए 57 मुस्लिम देशों में से एक है। इसी तरह पाकिस्तान के झण्डे से भी कोई इस्लामी महत्व जुड़ा हुआ नहीं है। भारतीय मुसलमान न तो उस झण्डे की पूजा करते हैं ओर न तो इसके फहराने को कोई नेकी समझते हैं। अन्य देशों के झण्डों की तरह वह भी एक देश का झण्डा है। भारत के किसी धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक नेता ने कभी क्रिकेट या हॉकी के मैच में पाकिस्तान के जीतने पर उत्सव मनाने का न तो परामर्श दिया और न इसका उत्साह बढ़ाया। जबकि इसकी बजाए उन्होंने इससे बचने का परामर्श दिया। पाकिस्तान में कोई ऐसा धर्म स्थल नहीं जिसकी भारतीय मुसलमान यात्रा करते हैं। बल्कि पाकिस्तान के लाहौर में स्थित गुरुद्वारा की यात्रा भारतीय सिख समुदाय के लोग करते हैं।

786

ईसाई धर्म का प्रतीक क्रॉस या सलीब है। ओम या स्वास्तिक हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। जो लोग धर्म को उनके प्रतीकों द्वारा पहिचानने के आदी हैं वह लोग अक्सर 786 की संख्या अथवा चाँद और तारे को इस्लाम का प्रतीक मान लेते हैं। समाज के लोगों के मन में यह विचार इतना बैठ गया है कि धार्मिक समूहों से जो अपीलें की जाती हैं वह इन प्रतीकों पर आधारित होती हैं। इस्लाम ने अपनी पहिचान के लिए कोई मान्य प्रतीक निर्धारित नहीं किया है।

786 की संख्या अरबी भाषा में *बिस्मिल्लाहि रहमानि रहीम* का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रयोग की जाती है। यह एक छोटी सी दुआ है जो क़ुरआन के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में लिखी जाती है। यह आदेश दिया गया है कि मुसलमानों को अपना प्रत्येक काम इसी दुआ से आरम्भ करना चाहिए। जिसका अर्थ है ''शुरु करता हूँ अल्लाह के नाम से जो बड़ा दयावान और अत्यन्त कृपाशील है''। यह परम्परा है कि अरबी में प्रत्येक अक्षर को एक संख्या का मूल्य प्रदान कर दिया गया है। जिसे गणित की 'अबजद' व्यवस्था के रूप में जाना जाता है। *बिस्मिल्लाहि रहमानि रहीम* लिखने में इसमें जो अक्षर आते हैं उनका अंकीय मूल्य कुल मिलाकर 786 होता है। कुछ लोग जब कोई चीज़ रिकार्ड करते हैं अथवा पत्र में बिस्मिल्लाह लिखना चाहते हैं तो वह पूरी दुआ लिखने की बजाए केवल 786 लिख देते हैं। इस्लाम में इसे कोई धार्मिक महत्व प्राप्त नहीं है। यह मात्र एक साहित्यिक परम्परा है जो अरबी साहित्य में जारी है। अतः इसके साथ कोई धार्मिक महत्व नहीं जुड़ा है।

कुछ अंधविश्वासों ने आधुनिक रूप अपना लिया है। इसी तरह 786 भी एक आधुनिक हथियार बन गया है। कुछ धनवान मुसलमान यह चाहते हैं कि उनकी कारों के लिए एक ऐसा रजिस्ट्रेशन नम्बर मिल जाए जिसके आखिरी अंक 786 हों। कुछ लोग चाहते हैं कि उनके मोबाईल फोन के अन्तिम अंक 786 हों। वे इसके लिए अच्छा-खासा धन खर्च करने के लिए तैयार होते हैं। इसके बावजूद कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो यह अंक इसलिए प्राप्त करना चाहते हैं कि इनको याद करना भी आसान है और दूसरों को बताना भी आसान। सिनेमा उद्योग भी इस संख्या के भावनात्मक आकर्षकण का शोषण करना चाहता है जिसे बॉलीवूड की सफलतम फिल्म *वीर ज़ारा* में शाहरुख खान को लाहौर जेल में कैदी संख्या 786 के रोल में देखा जा सकता है।

चाँद और तारा

इस्लामी कैलेण्डर चन्द्रमा की गति का अनुकरण करता है। इस्लाम का हिजरी कैलेण्डर जो दूसरे ख़लीफा हज़रत उमर के शासनकाल में आरम्भ किया गया वह पुराने चन्द्रमा की तारीखों वाले कैलैण्डर पर आधारित था। इस्लाम के महत्वपूर्ण कर्म जैसे हज, रमज़ान के महीने का रोजा, इदुल फित्र और इदुल अज़हा चाँद के विभिन्न चरणों के अनुसार होते हैं। इसीलिए चाँद के निकलने की घटना को बारीकी से रिकार्ड किया जाता है क्योंकि इसी से इस्लामी महीने का आरम्भ होता है। तुर्की की उस्मानी ख़िलाफत जिसके शासन क्षेत्र में यूरोप और एशिया का बहुत बड़ा भू-भाग आता था, उन्होंने चाँद और तारे को अपनी ख़िलाफत के प्रतीक के रूप में अपनाया और इसे अपने झण्डे का अंग बना दिया। तब ही से मुस्लिम दुनिया ने उसी उस्मानी झण्डे को अपनाया। इसी को आज तक जारी रखा गया है। अनेक मुस्लिम देशों ने चाँद और तारे को अपने राष्ट्रीय प्रतीक का अंग बना दिया तथापि इसके लिए कोई धार्मिक आदेश नहीं है।

शरारतपूर्ण दुष्प्रचार

यह बात दिलचस्प है कि भारतीय जनता पार्टी और इसके सहयोगी संगठन चाँद और तारा वाले झण्डों को पाकिस्तानी झण्डा बताकर मामलों का घालमेल करके उससे सामान्य जनता को गुमराह करने का प्रयास करते हैं। जबकि मुसलमानों की पहिचान के रूप में लगाए गए झण्डों में चाँद और तारा देखा जा सकता है जो दरगाहों और कब्रिस्तानों में लगाए जाते हैं। पाकिस्तानी झण्डे में बायीं तरफ सफेद पट्टियाँ होती हैं जो बायीं ओर के लगभग एक चौथाई भाग पर होती हैं।

पाकिस्तानी झण्डा

यह बात भी सोचनीय है कि जो दक्षिणपंथी हिन्दुत्व संगठन मुसलमानों पर देशद्रोही होने का आरोप लगाते हैं। वह सामान्य जनता को मुसलमानों के चाँद और तारा वाले झण्डे को पाकिस्तानी झण्डा बताते हैं। लेकिन कोई व्यक्ति कल्पना नहीं कर सकता कि ये साम्प्रदायिक संगठन इससे एक कदम आगे जाकर स्वयं सरकारी कार्यालय पर पाकिस्तानी झण्डा फहराते हैं, ताकि इसके द्वारा वह साम्प्रदायिक तनाव पैदा कर सकें। जैसा कि कर्नाटक से यह रिपोर्ट आई है कि पुलिस ने जनवरी, 2012 में कर्नाटक के बेलगॉव जिले के सिन्दकी नामक स्थान से श्रीराम सेना के छः कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार

किया है। (देखिए, द हिन्दू जनवरी, 11, 12) उल्लेखनीय है कि श्रीराम सेना के युवकों ने स्वयं तहसीलदार कार्यालय पर पाकिस्तानी झण्डा फहराया और इस अपराध के लिए कस्बे के मुस्लिम समुदाय पर आरोप लगाया। जन भावनाओं को भड़काने वाली अपनी कार्यशैली में साम्प्रदायिक तत्वों के इतना अधिक कच्चा होने की आशा नहीं थी कि वह इस काम में आसानी से पकड़ लिए गए।

आपत्तिजनक माँस

इसके कुछ ही दिनों बाद चार हिन्दू युवक हैदराबाद के साम्प्रदायिक रूप से संवेदनशील शहर में अप्रैल 2012 के पहले सप्ताह में कई मंदिरों में गाय का माँस फेंकते हुए पकड़े गए। जिसके नतीजे में साम्प्रदायिक हिंसा भड़क उठी थी। पुलिस ने त्वरित कारवाई की और अगले ही हफ्ते साम्प्रदायिक हिंसा भड़काने की नीयत से मंदिर को अपवित्र करने के आरोप में चार हिन्दू युवकों को गिरफ्तार कर लिया।

ये घटनाएँ इस बात की ओर इशारा करती हैं कि लोगों को धार्मिक प्रतीकों या उनको अपवित्र किए जाने की घटनाओं में बहुत अधिक उत्तेजित नहीं हो जाना चाहिए। भारत जैसे बहुधार्मिक लोकतन्त्र में उपद्रव करने वालों की कमी नहीं है जो इस तरह की भावनाओं से राजनीतिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं और इसके लिए वह समाज को आग के हवाले कर सकते हैं। चरमपंथी संगठन चुनाव में लाभ प्राप्त करने के लिए भावनाओं को भड़काने और समाज के साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के लिए उपद्रव करने वाले एजेन्टों को नियुक्त कर सकते हैं, जैसा कि उपरोक्त दोनों घटनाओं से स्पष्ट होता है। जिनमें दक्षिण्पंथी हिन्दुत्व संगठनों ने स्वयं ऐसे कृत्यों के लिए मुसलमानों पर आरोप लगाने के लिए आपत्तिजनक वस्तुएँ रखी जिसको करने की मुसलमान कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

इससे यह भी इशारा मिलता है कि दक्षिणपंथी संगठनों को अपनी पुरानी रणनीतियों के घटते हुए नतीजों से निराशाजनक परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। अयोध्या जैसे दुधारु मामले अब दूह दूह कर सूख चुके हैं। इसलिए अब वे साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काने और अपने वोट बैंक को मजबूत करने के लिए कोई भी उपद्रव करने के लिए तैयार हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों पर आधारित सामान्य जनता को ऐसे मामलों में प्रतिक्रिया व्यक्त करने में बहुत अधिक सावधानी बरतनी चाहिए और अपने सद्भाव को नष्ट नहीं करना चाहिए। यदि जनता सचेत रहे, और क़ानून और व्यवस्था को लागू करने वाला प्रशासन भेदभाव करने से इन्कार कर दे तो इस तरह की उपद्रवी साजिशें करने वालों की योजनाए सफल नहीं होंगी जो समाज के स्थायित्व को हानि पहुँचाने पर तुली हुई हैं।

लव जेहाद

भ्रामक नारे से एक ख़तरनाक हथियार में बदल गया

शब्द ''लव जेहाद'' एक ऐसा शब्द है जिसने हिन्दू सम्प्रदाय को हिंसा के लिए प्रेरित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। 'लव जेहाद' का एक अनोखा इतिहास है। इस शब्द के दो भाग 'लव' और 'जेहाद' अर्थ के अनुसार एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। 11 सितम्बर के बाद से शब्द जेहाद मुख्य धारा की मीडिया और सामाजिक विचार-धारा का अंग बन गया है। पवित्र क़ुरआन में इसका अर्थ ''प्रयास और संघर्ष'' है। इसके विपरीत इसका अर्थ ग़ैर मुस्लिमों की हत्या करना बताया जाता है। शब्द लव जेहाद अवश्य एक शैतानी मानसिकता की उपज है जिसे मुसलमानों को बदनाम करने के उद्देश्य से प्रयोग में लाया जाता है। यह दुष्प्रचार किया जाता है कि कुछ मुस्लिम संगठन ग़ैर मुस्लिम लड़कियों को मुसलमानों से विवाह करने पर आमादा करने और मुसलमानों की आबादी को बढ़ाने के लिए मुस्लिम नौजवानों को रक़म उपलब्ध करा रहे हैं। उन नौजवानों को मोटर साईकिल, मोबाईल आदि खरीदने और ग़ैर मुस्लिम लड़कियों को बहलाने-फुसलाने के लिए रक़म दी जाती है।

महाराष्ट्र का एक समूह हिन्दू रक्षक समिति यह कहता फिर रहा है कि हिन्दू धर्म को बचाने के लिए उस जोड़े को तोड़ दो जिसमें लड़की हिन्दू हो। ऐसा नहीं कि ऐसे जोड़े बहुत अधिक हैं। लेकिन मामूली सन्देह पर भी हिन्दुओं के ये स्वयंभू संरक्षक उस जोड़े पर टूट पड़ते हैं। इस शब्द को इस तरह फैलाया गया है कि केरल राज्य में एक ईसाई समूह ने भी इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए संघ परिवार के संगठन विश्व हिन्दू परिषद के साथ हाथ मिला लिया।

भारत में इस शब्द के प्रयोग का आरम्भ तटीय कर्नाटक, मंग्लौर और केरल के कुछ भागों में हुआ। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ प्रशिक्षित स्वयं सेवक प्रमोद मुतालिक द्वारा गठित श्रीराम सेना नामक संगठन ने इसी शब्द का प्रयोग करते हुए ऐसे जोड़ों को निशाना बनाना शुरु किया जिसमें लड़की हिन्दू धर्म से हो और लड़का मुसलमान। ऐसे विवाहों को भी सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा जिसमें माता-पिता विवाह के विरुद्ध रहे हों।

यहाँ तक कि श्रीराम सेना ऐसे मामलों को न्यायालय ले जाने लगी। बहाना यह प्रस्तुत किया जाता था कि मुस्लिम लड़के ने जबरदस्ती हिन्दू लड़की से विवाह किया है। रोचक बात यह है कि सजल राज और असग़र मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने यह फ़ैसला सुनाया कि शब्द 'लव जेहाद' को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है क्योंकि इसका प्रभाव देश की सुरक्षा और महिलाओं के अवैध व्यापार से जुड़ा हुआ है। माननीय न्यायाधीश ने यह निर्देश दिया कि कर्नाटक के पुलिस महानिदेशक और पुलिस महानिरीक्षक इस शब्द से जुड़े मामलों की विस्तृत जाँच-पड़ताल करें और जब तक जाँच पूरी नहीं हो जाती, लड़की अपने माता-पिता के साथ रहेगी। हालाँकि यह मामला मात्र अन्तरधार्मिक विवाह से जुड़ा हुआ था। इसके बावजूद लड़की सारे राजनैतिक दबाब के बावजूद अपने दृष्टिकोण पर कायम रही और उसने अपने पति के साथ रहने का फ़ैसला किया।

जिस जाँच समिति का नेतृत्व पुलिस महानिरीक्षक और महानिदेशक कर रहे थे, उसने अपनी रिपोर्ट में उन अफवाहों को किसी शरारती मानसिकता की उपज बताया। रिपोर्ट में यह माना गया की अन्तरधार्मिक विवाह होते रहे हैं लेकिन उनमें किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती की भूमिका नहीं रही है और ऐसे विवाहों के पीछे किसी संगठित समूह और योजना की मौजूदगी का कोई प्रमाण नहीं है।

श्रीराम सेना द्वारा फैलाये जा रहे दुष्प्रचार के अनुसार केवल कर्नाटक में ही 4000 से भी अधिक हिन्दू लड़कियों को बहला-फुसलाकर धर्म परिवर्तन करा दिया गया है और उनका विवाह कराया गया है। यह अफवाह जंगल की आग की तरह फैलायी गयी जिससे माता-पिता घबराने लगे। इन मामलों में कई लड़कियों को जिन्हें जबरदस्ती माता-पिता के साथ रहने के लिए विवश किया गया था भावनात्मक रूप से ब्लैकमेल किया गया।

इसी तरह के दो मामलों में केरल उच्च न्यायालय ने भी दोनों पक्षों के माता-पिता की अपील सुनने के बाद लगभग ऐसा ही फ़ैसला सुनाया था। इन मामलों में दो हिन्दू लड़कियाँ घर से भाग गयी थीं और मुस्लिम लड़कों से विवाह के लिए उन्होंने इस्लाम क़बूल कर लिया था। केरल न्यायालय ने भी पुलिस को इस सारी घटना की विस्तृत जाँच का आदेश दिया। फिर पुलिस जाँच में यही बात सामने आयी कि लव जेहाद का इन घटनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं। इस तरह के विवाहों के बारे में विभिन्न संगठनों के माध्यम से जो बातें भी फैलायी गयी थीं उन सब की हैसियत अफवाहों और दुष्प्रचार

से अधिक कुछ नहीं। लेकिन इसके बावजूद लव जेहाद सामाजिक सोच का अंग बन गया है।

उत्तर प्रदेश राज्य के ज़िले मुजफ्फरनगर और उससे मिले हुए क्षेत्रों में लड़कियों के साथ जानबूझ कर छेड़छाड़ की योजना बनायी गयी। अफवाहें फैलायी गयीं और लव जेहाद का दुष्प्रचार किया गया। ''सामाजिक संगठन अनहद की मुजफ्फर नगर दंगों से सम्बन्धित रिपोर्ट में भी यह बात कही गयी है''। मुस्लिम नौजवानों के माध्यम से हिन्दू लड़कियों को फुसलाकर ज़बरदस्ती विवाह करने, उन्हें धर्म बदलने के लिए मज़बूर करने जैसी बातों को बहुत अधिक उछाला गया है और उन्हें फैलाया गया है। दंगों के लिए भी मनगढंत कहानियाँ बनायी गयीं कि मुस्लिम लड़कों ने हिन्दू लड़कियों से छेड़छाड़ की थी।

गुजरात में दंगों के दौरान भी हम ऐसे दुष्प्रचार का सामना कर चुके है, जब कहा गया कि मुस्लिम लड़के आदिवासी लड़कियों को बहला-फुसलाकर न केवल उनसे विवाह कर रहे हैं बल्कि उनका धर्म भी बदलवा रहे हैं। दंगों में सक्रिय भूमिका निभाने वाला बाबू बजरंगी ऐसी अफवाहों का विशेष योजनाकार था। इसका भी उसी तरह का एक गैंग है जिसके लोग ऐसे जोड़ों को निशाना बनाकर एक-दूसरे से अलग होने के लिए मज़बूर करते हैं। यह सभी हरकतें धर्म की रक्षा के नाम पर की जाती हैं। किसी भी बहुमुखी समाज में अन्तरर्धार्मिक और अन्तर्जातीय विवाह सामान्य रूप से होते हैं लेकिन देश में साम्प्रदायिक राजनीति के विकास के कारण अन्तरर्धामिक विवाहों का ख़तरनाक हद तक विरोध किया जाने लगा है।

वास्तव में इन अफवाहों और घटनाओं के पीछे भी राजनीतिक हित छिपे हुए हैं। हिन्दू संगठन अपने आप को हिन्दुओं का रक्षक और हिन्दू मूल्यों का रक्षक सिद्ध करने के संघर्ष में लगे होते हैं। दूसरा कारण मनोवैज्ञानिक है। अधिकतर किसी सम्प्रदाय या धर्म से सम्बन्धित महिला का धर्म से बाहर विवाह करना पराजय की भावना में गिना जाता है। जबकि दूसरे सम्प्रदाय वाले इसमें अपनी शान समझते हैं। यह वास्तव में सदियों से चली आ रही पुरुष प्रधानता की भावना का द्योतक है। अधिकतर लोग यह भी महसूस करते हैं कि महिलाएँ क़ौमी प्रतिष्ठा का प्रतीक होती हैं और उनका सम्प्रदाय से बाहर विवाह करना सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाता है और इसे अपमान समझा जाता है।

पिछली कुछ अवधि में एक ऐसी अभियान्त्रिकी तैयार की गयी है जिसमें हिन्दू

लड़कियों और हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर वास्तव में लड़कियों को उस स्वतन्त्रता से वंचित किया जा रहा है कि वह अपने जीवनसाथी का चुनाव स्वयं करें। मुजफ्फर नगर में इस शब्द के ग़लत प्रयोग से परिस्थितियों को उग्र बनाया गया और साम्प्रदायिक दंगे फैलाने के लिए काल्पनिक कहानियाँ बनायी गयीं। अब लव जेहाद मात्र एक नारा नहीं बल्कि ख़तरनाक हथियार बन चुका है। एक तरफ उसका प्रयोग मुसलमानों की नकारात्मक छवि बनाने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। तो दूसरी तरफ महिलाओं की स्वतन्त्रता को कुचलने के लिए। धर्म के नाम पर भारत में जो राजनीति चल रही है, विशेष रूप से संघ परिवार की जो राजनीति है वह अफगानिस्तान में तालिबान की नीतियों से अलग नहीं है। अनेक रुढ़िवादी समूह भी धर्म के नाम पर कुछ ऐसा ही अभियान चलाते हैं जो वास्तव में महिला अधिकारों को दबाने के लिए प्रयोग किये जाते हैं। श्रीराम सेना से लेकर बाबू बजरंगी की कारवाईयों और उसके बाद मुजफ्फर नगर के दंगों में जो कुछ भी सामने आया, यह सारी चीज़ें लगभग उसी सिद्धान्त पर आधारित अभियान हैं जिनमें महिलाओं को मर्दों की सम्पत्ति के रूप में रहने को मज़बूर किया जाना और उनके जीवन और विचारधारा पर पूरी तरह नियन्त्रण रखना महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

इस सम्बन्ध में एक तरफ जेहाद को हिंसा से जोड़ा जाना और दूसरी तरफ रोमांस और दीवानगी की कारवाईयों के लिए निन्दित किया जाना परस्पर विरोधी काम हैं और ऐसे किसी संगठन की मौजूदगी जो ज़ोर-ज़बरदस्ती से दीवानगी की कारवाईयों को बढ़ावा दे, बुद्धि और विवेक से परे मालूम होता है। प्यार दो भिन्न लिंगों के बीच स्वयं विकसित होने वाली उत्तेजना है। जिसका सम्बन्ध भावनाओं से है। यह किसी पर थोपी नहीं जा सकती। इसके लिए बाहरी दबाब और सहारों की आवश्यकता नहीं। दीवानगी कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसके बारे में कोई बहाना बना सकता है और न व्यावहारिक जीवन में सिनेमा की तरह उसे मंचित किया जा सकता है। इसका स्रोत मानव हृदय होते हैं और बाहरी गतिविधियाँ उसे मात्र हवा देती हैं। यह कोई ऐसा मामला भी नहीं कि बुद्धि और विवेक रखने वाले लोगों को इतने विस्तार और परिभाषा के साथ वर्णन किया जाए। यदि बाहरी दबाब के अन्तर्गत दीवानगी की कारवाईयों का उत्साहवर्द्धन किया जाए तो यह कोई स्थायी प्यार नहीं हो सकता और जल्द ही उसकी कलई खुल सकती है।

राज परिवारों का प्रेम

साधारण मूल की हिन्दू राजकुमारियों और लड़कियों के मुस्लिम राजाओं और सम्राटों से विवाह करने के बहुत से उदाहरण मौजूद हैं। निम्न में उन हिन्दू राजकुमारियों की सूची प्रस्तुत की जा रही है जिन्होंने राज परिवारों के प्रेम के माध्यम से मुसलमानों से विवाह किए। यह सारे ऐतिहासिक तथ्य इतिहास की किताबों में मौजूद हैं :

1. गुजरात की राजकुमारी कमला देवी ने भारत के सम्राट अलाउद्दीन ख़िलजी से विवाह किया। (वी.डी. महाजन, एस.चाँद एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड़, नई दिल्ली, 1975, पृ0 131)
2. एक अन्य राजकुमारी दावल देवी ने अलाउद्दीन ख़िलजी के बेटे खिज्र खाँ से विवाह किया। (वही, पृ0 138)
3. ग़यासुद्दीन तुग़लक के पिता ने एक जाट महिला से उस समय विवाह किया था जब वह एक मामूली सैनिक था और उस महिला का बेटा ग़यासुद्दीन तुग़लक भारत का सम्राट बना। (वही, पृ0 166)
4. मुहम्मद बिन तुग़लक का विवाह भी एक हिन्दू महिला से हुआ था जिसका बेटा फिरोज़शाह तुग़लक, भारत का सम्राट बना। (वही, पृ0 201)
5. अबोहर के सरदार और एक भट्टी राजपूत रणमल की बेटी ने फ़िरोजशाह तुग़लक के पिता रजब से विवाह किया उसका नाम बीबी नायला रखा गया और उसका बेटा फ़िरोजशाह सन् 1351 में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। (वही, पृ0 201)
   और उसका पोता सन् 1374 में ग़यासुद्दीन तुग़लक द्वितीय के रूप में राजगद्दी पर बैठा। अनेक इतिहासकार फ़िरोजशाह की नरमी का कारण बीबी नायला के उसके ऊपर प्रभाव को बताते हैं।
6. एक साधारण मूल की लड़की जिसका सम्बन्ध सुनार (स्वर्णकार) जाति से था, उसने लोदी वंश के संस्थापक बहलोल लोदी से विवाह किया और उसका बेटा सिकन्दर शाह सन् 1489 ई0 सम्राट बना। (वही, पृ0 251)
7. मुगल शासन के दौरान भारत पर लव जेहाद के बहुत अधिक प्रभाव पड़े। सम्राट अकबर ने सन् 1562 ई0 में जोधाबाई से विवाह किया जो जयपुर के कुशवाहा राजा बहारमल की बेटी थी। उन्होंने अपने पति को अन्य चार राजपूत राजकुमारियों से

विवाह करने के लिए प्रेरित किया और अपनी सौतनों के रूप में उन्हें शाही महल में लायी। जिनके साथ वह पूरे सद्भाव और प्यार के साथ अन्य मुस्लिम सौतनों के साथ जीवन व्यतीत करती रही। (वही, अध्याय 3, पृ0 74)

8. राजा भगवानदास की बेटी जोध बाई (जोधाबाई से ग़लतफ़हमी न हो) ने अकबर और जोधाबाई के बेटे राजकुमार सलीम से विवाह किया। राजकुमार सलीम और जोध बाई का बेटा जहाँगीर भारत का सम्राट बना। (वही, पृ0 74)

बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध मामले

एक मराठा दलित महिला लक्खीबाई का विवाह शाह नबाज भुट्टो से हुआ था जिसने जुल्फिकार अली भुट्टो को जन्म दिया जो पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति बने। लक्खीबाई को इस्लामी नाम खुर्शीद बेगम दिया गया था। (वीकीपीडिया)
भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश और भारत के उपराष्ट्रपति दिवंगत मुहम्मद हिदायतुल्लाह का विवाह भी एक हिन्दू महिला पुष्पा शाह से हुआ था।

कपटाचार

दक्षिणपंथी झूठी कहानी गढ़ने वाले उद्योग बुरी और धोखापूर्ण कहानियाँ गढ़ने में कभी नहीं थकते। प्रत्येक सभ्य और शहरीकृत समाज में प्रेम के मामले और विवाह विभिन्न सम्प्रदायों में सामान्य हैं।

एक सरसरी नज़र डालने से भी पता चल जाता है कि विभिन्न धर्मों के मानने वाले व्यक्तियों के बीच आपस में विवाह होते रहते हैं। हालाँकि साधारण परिस्थितियों में भारत में अधिकतर विवाह रिश्ता तलाशने के एक विस्तृत अभ्यास के बाद सम्पन्न होते हैं लेकिन यह मानना सामान्य बात है कि विभिन्न सम्प्रदायों के बीच होने वाले विवाह प्रेम सम्बन्धों और व्यक्तियों के व्यक्तिगत चुनाव का नतीजा होते हैं। संयोगवश ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जिनमें तथाकथित हिन्दू चरमपंथियों के महत्वपूर्ण नेताओं के घरों में ऐसे विवाह सम्पन्न हो रहे हैं।

जाँच करने से इस आश्चर्यजनक बात का पता चला है कि भारतीय जनता पार्टी के मुस्लिम ध्वजावाहक नेता मुख्तार अब्बास नकवी का विवाह विश्व हिन्दू परिषद के अध्यक्ष अशोक सिंघल की बेटी से हुआ है। भारतीय जनता पाटी के मुख्य मुस्लिम चेहरे

शाह नबाज हुसैन ने रेनू से विवाह किया है जो दिल्ली में एक शिक्षिका है और बिहार के किशनगंज की रहने वाली हैं। दिवंगत केन्द्रीय मन्त्री सिकन्दर बख्त का विवाह राज शर्मा से हुआ था जो जीवन भर हिन्दू रहीं। पूर्व भा.ज.पा. अध्यक्ष मुरली मनोहर जोशी की बेटी ने भी एक मुसलमान से विवाह किया। सबसे ऊँचे कद के भा.ज.पा नेता लाल कृष्ण आडवाणी की बेटी ने विवाह के लिए एक मुसलमान युवक का चुनाव किया। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी की भतीजी ने भी एक मुसलमान युवक से विवाह किया है। दिवंगत शिव सेना प्रमुख बाला साहब ठाकरे की पोती नेहा ठाकरे ने भी एक मुसलमान युवक से विवाह किया। सुब्रमणियम स्वामी का दामाद नदीम हैदर एक मुसलमान है। रोचक बात यह है कि इन सभी जोड़ों का विवाह सार्वजनिक रूप से हिन्दुत्ववादी नेताओं के आर्शीवाद के साथ हुआ है। क्या उन्होंने ऐसे विवाहों के पीछे लव जेहाद का षड़यन्त्र नहीं महसूस किया था? यदि नहीं तो सामान्य व्यक्तियों द्वारा अपने सम्प्रदाय से बाहर किए जाने वाले विवाहों पर आपत्ति क्यों हैं? अपने दक्षिणपंथी समूह के अन्दर इतनी बड़ी संख्या में दो धर्म वाले जोड़ों की मौजूदगी के साथ यह बात अवश्य कपटाचार मालूम होती है कि सामान्य लोगों को लव जेहाद के षड़यन्त्र का शिकार बताया जाए।

अपवाद नहीं, यह परम्परा है

यही नहीं, इस तरह के जोड़े भारतीय सिनेमा जगत में अपवाद नहीं बल्कि एक सामान्य परम्परा हैं। आमिर खान ने अपनी पहली पत्नी के रूप में रीना दत्त को चुना और बाद में इस विवाह में तलाक़ होने के बाद किरण राव से विवाह किया। महानायक शाहरुख खान की पत्नी दिल्ली की गौरी खान हैं। सलमान खान के पिता सलीम खान ने अतीत में प्रसिद्ध नायिका हेलेन से विवाह किया था। अरबाज़ खाँ की पत्नी मलाइका अरोड़ा है। संजय दत्त की दूसरी पत्नी दिलनबाज़ शेख इस प्रसिद्ध नायक से विवाह के बाद मान्यता दत्त बन गयीं। भारत की पहली मुस्लिम महिला जो मिस इण्डिया स्पर्धा में अन्तिम दौर तक पहुँचने वाली नैयर मिर्ज़ा धर्म-परिवर्तन करके हिन्दू हो गयीं और अपना नया नाम नलिनी पटेल रखा। मधुबाला (मुमताज़ बेगम) जो एक मुसलमान थीं, उसने गायक किशोर कुमार से विवाह किया। प्रसिद्ध अभिनेत्री नफीसा अली ने आर. एस. सोढ़ी से विवाह करने से पहले हिन्दू धर्म स्वीकार किया। तमिल फिल्म की अभिनेत्री खुशबू (जो नकहत खाँ के नाम से पैदा हुई थी) उसने भी एक के बाद एक

हिन्दू अभिनेताओ के साथ विवाह किया। आरम्भ में प्रभु से और बाद में सुन्दर से। शर्मिला टैगोर ने पटौदी के नबाब मंसूर अली खान से विवाह किया और प्रसिद्ध अभिनेता सैफ अली खान और प्रसिद्ध अभिनेत्री सोहा खान को जन्म दिया। सैफ अली खान का विवाह करीना कपूर से हुआ और कुनाल खेमू का विवाह सोहा अली खान से हुआ।

मुम्बई के पूर्व अन्डरवर्ल्ड डॉन अरुन गवली का विवाह आयशा से हुआ जिनका नया नाम आशा हो गया। मुम्बई की गायिका रोशन आरा खान विवाह करने के लिए अन्नपूर्णा देवी बन गयी और अपने पति से तलाक के बाद भी हिन्दू बनी रही। इससे भी अधिक आश्चर्यजनक मामला भारतीय जनता पार्टी की सांसद और फिल्म अभिनेत्री हेमा मालिनी और उसके अभिनेता पति धर्मेन्द्र का है। चूँकि धर्मेन्द्र पहले ही हिन्दू की हैसियत से प्रकाश कौर से विवाह कर चुके थे इसलिए दोनों ने सन् 1979 में मुस्लिम जोड़े के रूप में विवाह के लिए प्रार्थना-पत्र दिया, हेमा मालिनी ने आयशा बी के नाम से और धर्मेन्द्र ने दिलावर खाँ के नाम से। ऐसा ही मामला हरियाणा के पूर्व उपमुख्यमन्त्री चन्द्रमोहन का है जिन्होंने दूसरी पत्नी से विवाह करने के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार करके नया नाम चाँद मुहम्मद रखा, उनकी दूसरी पत्नी ने भी इस्लाम धर्म स्वीकार करके नया नाम फिज़ा परवीन रखा।

व्यक्तिगत चुनाव की स्वतन्त्रता

बहुत से ऐसे मामले 'सुविधा के लिए धर्म परिवर्तन' की तरह नजर आ सकते हैं और प्यार के लिए भी नज़र आ सकते हैं। लेकिन इस बिन्दु की अनदेखी करने की आवश्यकता नहीं कि प्रसिद्ध व्यक्ति भी प्यार में गिरफ्तार हो जाते हैं और दूसरे धर्म में जाने के लिए धर्म परिवर्तन करने में कोई परेशानी महसूस नहीं करते क्योंकि दो विवाह करने पर उनके अपने धर्म में प्रतिबन्ध होता है। इससे जो बात स्पष्ट होती है वह यह है कि किसी भी मानव समाज को व्यक्तिगत चुनाव के मामले में स्वतन्त्रता आवश्यक है और इसका किसी भी क़ीमत पर सम्मान होना चाहिए। यह अन्तरधार्मिक विवाहों के कुछ प्रसिद्ध मामले कहे जा सकते हैं लेकिन आज के शहरों और कस्बों में हमारे अपार्टमेन्ट, कोठी या झुग्गी के आस-पास ऐसे विवाहों के उदाहरण बहुत मिल जाते हैं जिनमें दो अलग-अलग धर्मों के जोड़े विवाह करते हैं - मुस्लिम पत्नी और हिन्दू पति और हिन्दू पत्नी और मुस्लिम पति। ऐसे विवाहों में षड़यन्त्र की बू सूँघना प्यार की मौलिक प्रवृत्ति का अपमान करना है जो अपनी प्रकृत्ति के अनुसार धर्म, सम्प्रदाय, राष्ट्र और यहाँ तक कि वर्ग के बन्धनों को तोड़ता है।

जिज़िया

महत्व और पृष्ठभूमि

पश्चिमी देशों के पूर्ववेत्ता और इस्लाम विरोधी लेखक इस्लाम को बदनाम करने के लिए विभिन्न इस्लामी शब्दावलियों को ग़लत ढंग से प्रस्तुत करते रहे हैं; उनमें से एक जिज़िया भी है। जिज़िया को ग़लत ढंग से परिभाषित किया गया और सन्दर्भ से हटकर इसकी व्याख्या की गयी। इसको समझने का सही तरीक़ा यह है कि इसे मूल स्रोतों से समझा जाए और इसके सन्दर्भ और इतिहास को जाना जाए।

इस्लामी राज्य की वित्तीय व्यवस्था ज़कात, उश्र, सदक़ा और जिज़िया पर आधारित है। जिज़िया इन सभी स्रोतों का एक छोटा सा भाग है। जिज़िया के बारे में सच्चाई को समझने में निम्नलिखित अनुच्छेद पाठकों की सहायता करता है।

जक़ात - ग़रीबों का अधिकार

जक़ात निर्धनों और जरूरतमंदों के लिए है - इसका आदेश अल्लाह ने दिया है। (क़ुरआन, 9:60)

जक़ात अमीरों की सम्पत्ति में ग़रीबों का अधिकार है। इस्लाम ने मुसलमानों को आदेश दिया है कि वह वार्षिक जक़ात अदा करें अर्थात यदि उनकी कुल बचत 88 ग्राम सोने के मूल्य से अधिक हो जाए तो अपनी बचत का 2.5 प्रतिशत समाज के ग़रीबों और जरूरतमंदों के लिए अलग कर दें। यदि वह इस्लामी राज्य में रहते हों तो यह इस्लामी राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह मुसलमानों से जक़ात एकत्र करे। इसके अतिरिक्त मुसलमानों को स्वयं दान देने के लिए प्रेरित किया गया है ताकि निर्धन और जरूरतमंद की और समाज कल्याण के उद्देश्यों में मदद की जा सके। इस ऐच्छिक दान को सद्का कहा जाता है। उश्र सरकार को दिया जाने वाला अनिवार्य कर है। यह कृषि उत्पाद का 5-10 प्रतिशत, प्राकृतिक संसाधनों जैसे पैट्रोलियम, गैस, खानों, कोयला, सोना, चाँदी, हीरा पर 20 प्रतिशत लिया जाता है; सदकतुल फित्र ईद के अवसर पर दिया जाता है। इनमें से कोई भी कर इस्लामी राज्य द्वारा किसी ग़ैर मुस्लिम से नहीं लिया जाता।

जिज़िया - सुरक्षा कर

मुसलमानों की जक़ात के बदले में ग़ैर मुस्लिमों से जिज़िया देने के लिए कहा गया है। यह संभ्रान्त और सम्पन्न सदस्यों पर 48 दिरहम की दर से, मध्यम वर्ग के सदस्यों से 24 दिरहम की दर से और समाज के निम्न वर्ग के लोगों से 12 दिरहम वार्षिक लिया जाता है। किसी भी पैमाने से यह उन करों की तुलना में बहुत मामूली रक़म है जो मुस्लिम नागरिकों से जक़ात और उश्र के रुप में से लिया जाता है। उन्हें सेना में भर्ती से छूठ रहती है और वह कोई भी धार्मिक दान देने के लिए मज़बूर नहीं होते। समाज में उन्हें विशेष स्थान प्राप्त होता है जिसमें रक्षा, सुरक्षा और सम्मान की गारण्टी दी जाती है। वह अपनी जानकारी के अनुसार इस बात के लिए सुनिश्चित होते थे कि जिज़िया ग़ैर मुस्लिमों के लिए मुसलमानों द्वारा अदा की जाने वाली जक़ात और उश्र का विकल्प था।

जिज़िया हर ग़ैर मुस्लिम पर अनिवार्य नहीं था

जिज़िया सभी ग़ैर मुस्लिम नागरिकों पर लागू नहीं होता था। यह केवल प्रौढ़ और शारीरिक रूप से सक्षम मर्दों से लिया जाता था। औरतें और बच्चे जिज़िया देने से मुक्त रखे गए थे। यह विकलांग, बूढ़े, मरीज़ कमज़ोर आदि से भी नहीं लिया जाता था। भिक्षु, साधु, पुजारी, विशप, पादरी और धार्मिक कर्त्तव्य पूरे करने वाले व्यक्ति भी जिज़िया से मुक्त थे। यदि इस्लामी राज्य ग़ैर मुस्लिम जनता को रक्षा और सुरक्षा की गारंटी देने में विफल हो जाता था तो उनकी जिज़िया की रक़म वापस कर दी जाती थी। पैग़म्बर (सल्ल0) ने उन ग़ैर मुस्लिम नागरिकों की सुरक्षा का आदेश दिया है जो जिज़िया के प्रावधानों का पालन करते थे।

सैनिक सेवा से छूट

यदि हम जिज़िया की परिभाषा और उसके दायरे पर पहले नजर डालें तो यह पहली नज़र में अपनी जगह पर उपयुक्त दिखायी देगा। जिज़िया इस्लाम में दण्डात्मक कर नहीं माना जाता है, इसकी बजाए यह कुछ लोगों के सेना में भर्ती न होने के अधिकार को मान्यता देता है, इसके बावजूद इस्लामी राज्य उनकी रक्षा करता है। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने उन ग़ैर मुस्लिमों पर भी जिज़िया लगाया जो इस्लामी राज्य के अन्तर्गत रहते हैं और उन्हें लिखित रूप से पूरी गारंटियाँ दी। इस सम्बन्ध में लिखित समझौते किए गए

जिसमें निम्नलिखित ज़मानतें दी जाती थीं।

1. उनके जीवन की रक्षा की जाएगी। यदि उनपर दुश्मनों का आक्रमण होता है तो ऐसे आक्रमणकारियों से इस्लामी राज्य युद्ध करेगा और उनकी किसी भी तरह की शारीरिक क्षति से रक्षा की जाएगी।
2. उनकी सम्पत्तियों, घरों, खेतों और उनकी हर चीज़ की रक्षा की जाएगी।
3. जिज़िया एकत्र करने के लिए संग्राहक स्वयं उनसे सम्पर्क करेंगे। उन्हें जिज़िया जमा करने के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं होगी।
4. उनके व्यापार, व्यापारिक कारवाँ और जिविका के अन्य साधनों को इस्लामी राज्य द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाएगी।
5. उनके धर्म से उनको धर्मान्तरित करने की कोशिश नहीं की जाएगी और न तो उनके धर्म को अपमानित किया जाएगा।
6. उनके पुजारी, भिक्षु और पादरियों को उनके पदों से नहीं हटाया जाएगा।
7. उनकी मूर्तियों, चित्रों, सलीबों और पूजास्थलों और अन्य धार्मिक प्रतीकों की रक्षा की जाएगी।
8. उनकी आबादियों पर कोई सैनिक कारवाई नहीं की जाएगी।
9. उनसे उश्र (पहले जो उनसे कर के रूप में कृषि उत्पाद का दसवाँ भाग लिया जाता था) नहीं लिया जाएगा।
10. पारम्परिक रूप से उन्हें जो अधिकार प्राप्त थे, उनमें से किसी अधिकार में कमी नहीं की जाएगी।
11. ये नियम उन ग़ैर मुस्लिम सम्प्रदायों पर भी लागू होंगे जो भविष्य में अस्तित्व में आयेंगे। (इस्लाम-धर्म हिन्दी में, लेखक ईश्वर नाथ टोपा)

इस्लामी राज्य इन प्रावधानों का पूर्णतः पालन करेगा। सन्मार्ग पर चलने वाले चौथे ख़लीफ़ा हज़रत अली (रज़ि0) ने स्पष्ट शब्दों में फ़रमाया कि वह सभी लोग जो ग़ैर मुस्लिम रहना चाहेंगे, और उन्होंने जिज़िया देना स्वीकार किया होगा, उनकी रक्षा की जाएगी। उनका खून हमारे खून की तरह है और उनकी जान हमारी जान की तरह सम्मानित है। वह ग़ैर मुस्लिम जो सैनिक सेवा के लिए अपने आप को प्रस्तुत करते थे, उन्हें भी जिज़िया अदा करने से मुक्त रखा जाता था।

ग़ैर मुस्लिमों का दिल जीतने के लिए नहीं

जिज़िया का उद्देश्य ग़ैर मुस्लिमों को इस्लाम क़बूल करने के लिए दबाब डालना नहीं है। जिस दर से यह लिया जाता था। वह इतनी मात्रा में अधिक नहीं था जिसे दण्ड समझा जाए, और इतिहास गवाह है कि कहीं भी जिज़िया लगाने का उद्देश्य लोगों को मुसलमान बनाना नहीं था।

अधीन बनाने के लिए नहीं

उस ज़माने में इसे ग़ैर मुस्लिम जनता की अधीनता की घोषणा के रूप में भी नहीं देखा जाता था। जैसा कि इतिहास से विदित है कि औरंगजेब ने बहुत से हिन्दू जनरलों जैसे जसवन्त सिंह (जो उनके प्रशासन में रक्षामन्त्री थे), राजा राजरूप, कबीर सिंह, अग्रनाथ सिंह, प्रेमदेव सिंह, दिलीप राय और रसिक लाल करोड़ी को अपनी सेना में भर्ती किया। यदि यह लोग वास्तव में जिज़िया अदा करने को कोई दण्ड समझते तो वह ऐसे पदों को अपने सम्मान की क़ीमत पर स्वीकार नहीं करते। वास्तव में जबकि सम्राट अकबर के 14 हिन्दू मनसबदार थे, औरंगजेब के में दरबार में वास्तव में 148 हिन्दू मनसबदार थे। (श्रीराम शर्मा, मुग़ल गवर्मेन्ट एण्ड एडिमिनिस्ट्रेशन, 1961)

कहा जाता है कि अलाउद्दीन ख़िलजी वह पहला मुस्लिम शासक था जिसने ग़ैर मुस्लिमों पर कर की हैसियत से जिज़िया शुरु किया। मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल में ही जिज़िया समाप्त किया गया। लेकिन इसे औरंगजेब ने फिर लागू कर दिया जिसने 1658 से 1707 ई. तक राज किया। आश्चर्यजनक बात यह है कि यह आरोप कि औरंगजेब ने जिज़िया हिन्दुओं पर दण्ड के रूप में लागू किया, बहुत अधिक महत्वपूर्ण नहीं लगती क्योंकि जब हमें पता चलता है कि उसने इसी के साथ 65 क़िस्म के करों को समाप्त भी किया जिन्हें अकबर और जहाँगीर ने लागू किया था। जिसके कारण औरंगजेब के शासन में सरकारी राजस्व में 50 मिलियन रुपये का घाटा हुआ। (यदुनाथ सरकार, मुग़ल ऐडमिनिस्ट्रेशन)

मध्यपूर्व में कर नहीं हैं

अन्त में हमें आधुनिक इस्लामी विश्व पर नज़र डालना चाहिए। आज के मध्य पूर्व में लगभग 7 मिलियन भारतीय कर्मचारी और पेशेवर या तो काम कर रहे हैं या व्यापार कर रहे हैं जिनमें से बड़ी संख्या ग़ैर मुस्लिमों की है। उनके ऊपर किसी तरह का कोई

कर नहीं लगाया जाता। यहाँ तक कि उन्हें वह कर भी नहीं देना पड़ता जिसे यदि वह भारत में इतना बड़ा वेतन पाते तो आयकर के रूप में देना पड़ता। उन्हें उन देशों में प्रयोग के साधारण सामानों पर सेवा कर और विक्रय कर भी अदा नहीं करना होता। हालाँकि उनमें से कुछ राज्य अर्द्धधार्मिक राज्य हैं। वहाँ के प्रवासी मजदूर किसी भी तरह के अन्य कर, उपकर या चुंगी से बच जाते हैं। वास्तव में उसमें से कुछ देश अपने कर्मचारियों को रोकने के लिए निःशुल्क स्वास्थ सुरक्षा, यात्रा भत्ता और बीमा की सुविधा उपलब्ध कराते हैं। इस वार्त्ता से जो नतीजे निकलते हैं वह ये हैं कि मुस्लिम शासकों को अपने धर्म से मार्गदर्शन मिलता है और उन्होंने विभिन्न परिस्थितियों में लोगों को संरक्षण देने में अपनी रूचि का प्रदर्शन किया है।

वन्दे मातरम्
राष्ट्रवाद से बढ़कर राजनीति

इस गीत का इतिहास जटिल है। यह बंकिम चन्द्र चटर्जी द्वारा लिखा गया था और बाद में उनके उपन्यास आनन्द मठ में इसे सम्मिलित कर दिया गया। इस उपन्यास में कठोर मुस्लिम विरोधी सामग्री है। यह गीत समाज के एक वर्ग में बहुत लोकप्रिय था लेकिन मुसलमान इस गीत पर कठोर आपत्ति करते थे। क्योंकि इस गीत में भारत की तुलना देवी दुर्गा से की गयी है। चूँकि इस्लाम एकेश्वरवादी धर्म है इसलिए वह अल्लाह के अतिरिक्त किसी अन्य देवी-देवता को मान्यता नहीं देता। इस्लाम अल्लाह के अतिरिक्त किसी अन्य की इबादत की अनुमति नहीं देता। लेकिन दक्षिणपंथी तत्व इस गीत को गाने से इन्कार करने में मुस्लिम समुदाय पर निशाना साधने का अवसर देखते हैं और जो कोई इसको गाने से इन्कार करता है उसे देशद्रोही घोषित करते हैं।

राष्ट्रवाद और देशप्रेम मुसलमानों को पसन्द है लेकिन इसका क्षेत्र देश पूजा तक विस्तृत नहीं है। राष्ट्र-भक्ति और देश-प्रेम में एक अन्तर रखा जाता है। चाहे सऊदी अरब हो या ईरान हो वहाँ नागरिकों से अपने राष्ट्र की इबादत करने के लिए नहीं कहा जाता। राष्ट्र की वफादारी राष्ट्र को ईश्वरत्व के स्थान पर नहीं पहुँचा सकती। रविन्द्र नाथ टैगोर द्वारा लिखित जन-गण-मन कविता को राष्ट्र-गान के रूप में चुना गया है क्योंकि यह देश की अनेकता और बहुलता की प्रशंसा करता है। यह याद करना लाभदायक है कि वन्दे मातरम् के केवल दो छन्दों को राष्ट्र-गीत के रूप में अपनाया गया है। इस गीत के बाद के हिस्से को राष्ट्र-गीत के रूप में नहीं लिया गया है जिसमें हिन्दू देवियों की तुलना मातृ-भूमि से की गयी है।

कुछ तत्व जन-गण-मन का महत्व कम करने में आगे-आगे रहे हैं और वह कहते हैं कि यह गीत ब्रिटेन के सम्राट जार्ज पंचम के भारत आने पर उनकी प्रशंसा में लिखा गया था। यह मिथक जल्द ही गढ़ा गया है ताकि नोबेल पुरस्कार विजेता की छवि को धूमिल किया जाए जिनकी साम्राज्यवाद विरोधी प्रवृत्ति जग-जाहिर है।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की आज़ाद हिन्द फौज ने जन-गण-मन को राष्ट्र-गान

के रूप में अपनाया था और गाँधी जी कहा करते थे कि ''जन-गण-मन ने हमारे राष्ट्रीय जीवन में एक जगह बना ली है''। यही एक कारण है कि कुछ तत्व कि जन-गण-मन को हटाकर बंकिम चन्द्र चटर्जी के वन्दे मातरम् को उसके स्थान पर लाना चाहते हैं।

वन्दे मातरम् गाने के प्रति मुसलमानों का विरोध जन-गण-मन का महत्व घटाने के भारत के कुछ तत्वों द्वारा किए जाने वाले प्रयासों की तुलना में कम महत्वपूर्ण है। यह प्रकरण साम्प्रदायिक राजनीति का पहलू रखता है जो एक समुदाय को राष्ट्र-गौरव को मनाने या उसका सम्मान करने के तरीक़े को चुनने से ज्यादा एक समुदाय को कोने में ढकेलने का प्रयास है।

इस प्रकरण पर सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया 'जेहवा बिटनेस फेथ' के कुछ स्कूली बच्चों ने राष्ट्र-गीत गाने से मना कर दिया था क्योंकि उनका धर्म इसको गाने से मना करता है। स्कूल ने इन बच्चों को स्कूल से निकाल दिया। यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय में गया जिसने यह व्यवस्था दी कि कोई धर्म-निरपेक्ष न्यायालय किसी धार्मिक आस्था के सही होने या न होने की जाँच नहीं कर सकता। जिस आधार पर न्यायालय ने यह फैसला लिया था वह यह अनुमान था कि क्या यह विश्वास वास्तव में किसी समुदाय के एक महत्वपूर्ण वर्ग द्वारा धार्मिक उद्देश्य से किया जाता है और यह कि यह विश्वास सामाजिक शान्ति व्यवस्था और नैतिकता के विरुद्ध तो नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने छात्रों के निष्कासन को रद्द कर दिया और कहा कि यह निष्कासन संविधान की धारा 25 द्वारा दी हुई धार्मिक स्वतन्त्रता की गारंटी के विरुद्ध है और उन छात्रों को पुनः स्कूल में वापस ले लिया गया।

हमारे एक जाने-माने क़ानूनविद् श्री सोली सोराबजी ने न्यायमूर्ति चिनप्पा रेड्डी के निर्णय के आधार पर इस फैसले की तार्किकता की व्याख्या की है, ''हमारी परम्परा सहनशीलता की शिक्षा देती है, हमारा दर्शन सहनशीलता की शिक्षा देता है, हमारा संविधान सहनशीलता के आधार पर काम करता है, हमें इस सहनशीलता को घटाना नहीं चाहिए।''

तलाक़
(विवाह-विच्छेद)

धर्मों में इस्लाम सबसे पहला धर्म है जिसने विवाह और विवाह-विच्छेद का आसान और विस्तृत तरीक़ा प्रस्तुत किया। क़ुरआन के अनुसार, विवाह एक पुरुष और स्त्री के बीच एक सामाजिक समझौते के द्वारा सम्पन्न होता है। स्त्री और पुरुष कुछ व्यक्तियों अर्थात गवाहों और क़ाज़ी के सामने एक प्रण लेते हैं। दोनों पक्षों की ओर से एक-एक व्यक्ति विवाह का प्रस्ताव करता है। दो व्यक्ति गवाह बनते हैं और समझौते को एक क़ाज़ी लिखता है, पवित्र क़ुरआन से कुछ आयतें पढ़ता है जिसे निकाह का ख़ुत्बा कहा जाता है। फिर क़ाज़ी दुल्हा और दुल्हन दोनों के हस्ताक्षर लेता है। इस प्रकार इस समझौते को दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार किया जाता है और समारोह समाप्त हो जाता है।

परन्तु यदि दोनों पक्ष यह देखें कि उन दोनों की प्रवृत्ति एक-दूसरे के प्रतिकूल है और साथ में प्यारे बच्चे होने के बावजूद वे एक साथ नहीं रह सकते तो इस्लाम ने इसमें निहित तथ्यों और मानव प्रकृत्ति के स्वभाव को समझा और अलगाव का प्रावधान रखा। अलगाव के लिए अधिक विस्तृत प्रक्रिया अपनायी जाती है। इस प्रक्रिया को तलाक़ कहा जाता है। किसी तरह इस सोच ने जड़ पकड़ लिया है कि एक मुस्लिम पुरुष अपनी पत्नी को केवल तीन बार तलाक़ कहकर ही तलाक़ दे सकता है। अब इस प्रक्रिया के साथ बहुत सा मज़ाक सम्मिलित हो गया है। तलाक़ के सम्बन्ध में कुछ कम समझ मौलवियों ने कुछ फ़तवे दिए हैं कि यदि कोई फोन, मोबाइल या एस.एम. एस सन्देश या ई-मेल भेजकर तलाक़ देता है तो वह तलाक़ भी मान्य होता है। इसमें और मसाला लगाने के लिए कुछ मौलवियों को उद्धृत किया जाता है कि वह इसकी वैधता की अनुमति देते हैं चाहे किसी ने नशे की हालत में या स्वप्न में भी तलाक़ शब्द कह दिया हो। यह कुछ वॉलीवुड फिल्मों के लिए भी एक रोचक सामग्री बन गया।

इसी तरह यह भी सोचने योग्य है कि इस्लाम किस तरह एक ऐसे तलाक़ को वैध करार देगा जो नशे की हालत में दिया गया हो हालाँकि नशे की हालत में पढ़ी गयी नमाज़ स्वीकार्य नहीं होती। इसलिए इसमें सन्देह करना उपयुक्त होगा कि कुछ निहित

स्वार्थ रखने वाले वर्ग इस्लाम और इसके पारिवारिक क़ानून के विरुद्ध इस तरह की भ्राँन्तियाँ फैला रहे हैं। कोई भी समझदार व्यक्ति ऐसी मान्यता को स्वीकार नहीं कर सकता।

इस सिलसिले में कम से कम यह कहा जा सकता है कि मीडिया द्वारा यह खिलवाड़ पूर्ण रूप से शरारतपूर्ण है। पहली बात तो यह है कि मीडिया और समाचार-पत्रों में तलाक़ के जो समाचार प्रकाशित होते हैं उस सिलसिले में सच्चाई यह है कि मुस्लिम विवाह का परिणाम तलाक़ के रूप में कम ही होता है। दूसरे यह बिल्कुल संभव है कि इस तरह के कुछ मामले मंचित किए जाते हों ताकि टेलीविज़न रेटिंग प्वाइन्ट को बढ़ाया जा सके और इसके लिए शरीअत और इसके प्रावधानों को बदनाम करने के लिए कुछ कम समझ मौलवियों से फ़तवा प्राप्त कर लिया जाए। तीसरे हमारे लिए दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि कुछ मुसलमान ग़ैर ज़िम्मेदाराना व्यवहार अपनाते हुए कम जानकारी के कारण या क्रोध के आवेश में तीन तलाक़ दे देते हैं और मुस्लिम महिला का जीवन बर्बाद कर देते हैं। इससे इस्लाम की छवि को अत्यधिक क्षति पहुँचती है और इससे इस्लाम में तलाक़ की धारणा की आलोचना करने और इस्लाम को बुरा-भला कहने के लिए एक अच्छा बहाना मिल जाता है।

इस्लाम पुरुषों और स्त्रियों की व्यक्तिगत प्रवृत्ति की विविधता को स्वीकार करता है। यद्यपि निकाह उनको पति और पत्नी के रूप में जोड़ देता है लेकिन उस सर्वशक्तिमान अल्लाह ने उनके अलगाव के लिए भी प्रावधान रखा है जो कि मानवता का रचयिता है। यदि यह प्रावधान न दिया गया होता तो ऐसे अनेक जोड़ों के लिए जीवन नरक बन जाता जो साधारण रूप से जीवन की गाड़ी एक साथ नहीं खींच सकते। पुरुष महिलाओं की हत्या करते या महिलाएँ विवाह में अनुकूलता न होने के कारण आत्महत्या कर लेतीं। इस्लाम निश्चित रूप से एक ऐसे पुरुष और एक स्त्री को एक साथ बाँधना नहीं चाहता जो एक साथ रहने से घृणा करते हैं और अपनी पसन्द, स्वभाव और प्रकृत्ति के बीच अनुकूलता लाने में असफल हो जाते हैं। यही कारण है कि इस सम्बन्ध से बाहर निकालने का एक सम्मानजनक रास्ता उपलब्ध कराया गया है। इसी को तलाक़ कहा जाता है। जो समुदाय अपने वैवाहिक बन्धन को किसी भी कीमत पर तोड़ने की अनुमति नहीं देते उनमें महिलाओं को डराया जाता है, प्रताड़ित किया जाता है और यहाँ तक कि उन्हें जला दिया जाता है।

अब तलाक़ के प्रावधान का कुछ मुस्लिम पुरुषों द्वारा बुरी तरह प्रयोग किया जाता है और पिछले वर्षों में इस्लामी क़ानून की ग़लत व्याख्या ने इसके ग़लत ढंग से लागू करने और इसको वैध ठहराने को संभव बनाया है।

लेकिन सच्चाई यह है कि इस्लाम में तलाक़ अत्यन्त घृणित प्रावधान है हालाँकि यह केवल प्रतिकूल विवाहों को समाप्त करने के लिए ही इस्लामी क़ानून में एक वैध प्रावधान है।

क़ुरआन तलाक़ की अनुमति देता है हालाँकि पैग़म्बर (सल्ल0) ने कहा है कि "सभी वैध कर्मों में अल्लाह तलाक़ से अधिक किसी चीज़ को नापसंद नहीं करता।"

कोई पति अपनी पत्नी को किस प्रकार तलाक़ दे इसका वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार किया गया हैः

> "यदि तुम औरतों को तलाक़ दो और वह अपनी इद्दत पूरी कर ले तो; फिर या तो तुम अपनी पत्नी को सम्मानपूर्वक विदा कर दो या तुम उसे सम्मानपूर्वक रख लो।" (क़ुरआन, 2:231)

एक बार फिर यह आदेश दिया गया है किः

> तलाक़ दो बार है। फिर सामान्य नियम के अनुसार (स्त्री को) रोक लिया जाए या भले तरीक़े से विदा कर दिया जाए। और तुम्हारे लिए वैध नहीं है कि जो कुछ तुम उन्हें दे चुके हो, उसमें से कुछ ले लो, सिवाय इस स्थिति के कि दोनों को डर हो कि वे अल्लाह की (निर्धारित) सीमाओं पर क़ायम न रह सकेंगे"। (क़ुरआन, 2:229)

यदि उपरोक्त आयतों को सूरः निसा की 34वीं और 35वीं आयत के साथ मिलाकर पढ़ा जाए तो इससे सात चरणों पर आधारित तलाक़ की प्रक्रिया का पता चलता है। लेकिन किसी तरह इस प्रक्रिया को भुला दिया गया है और क़ाज़ियों ने पति द्वारा अपने मुँह से कहे गए शब्द 'तलाक़' द्वारा विवाह को समाप्त करने को वैध कर लिया है।

जो लोग इस तरह तलाक़ देते हैं उनके बारे में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने घोषणा की कि यह लोग अल्लाह के आदेशों के साथ खिलवाड़ करते हैं। जिस व्यक्ति ने इस तरह तलाक़ दिया था उसको पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के साथी हज़रत उमर (रज़ि0) ने दण्ड दिया था।

खुलअ

महिलाओं का तलाक़ लेने का अधिकार

यदि पति-पत्नी ऐसी परिस्थिति तक पहुँच जाएँ कि दोनों अपने विवाह-बन्धन को जारी न रखना चाहते हों और पत्नी अपने पति से तलाक़ लेना चाहती हो तो इस्लाम उसे भी इसका अधिकार देता है। यदि पति तलाक़ देने से इन्कार कर रहा हो तो एक मुस्लिम

औरत तलाक़ लेने के लिए क़ाज़ी के पास जा सकती है :

"लेकिन यह तलाक़ अचानक नहीं हो सकती; इसमें एक इद्दत (समयान्तराल) या प्रतीक्षा का समय होना चाहिए, जैसा कि प्रोफेसर कूलजन कहते हैं कि यह क़ुरआन की सर्वश्रेष्ठ खोज है। यह समयान्तराल उस समय तक रहता है जब पत्नी तीन मासिक धर्म पूरा कर लेती है, और यदि वह गर्भवती है तो प्रतीक्षा का यह समय प्रसव तक रहता है।

इस समय के दौरान उसे अपने पति से आर्थिक सहयोग प्राप्त करने का अधिकार है। प्रतीक्षा के इस समय को एक-दूसरे के बीच मेल-मिलाप के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। क़ुरआन में पैग़म्बर (सल्ल0) ने स्पष्ट रूप से कहा है:

> ऐ हमारे रब! "उनमें उन्हीं में से एक ऐसा रसूल उठा जो उन्हें तेरी आयतें सुनाए और उनको किताब और तत्वदर्शिता की शिक्षा दे और उनकी (आत्मा) को विकसित करे। निःसन्देह तू प्रभुत्वशाली, तत्वदर्शी है।" (क़ुरआन, 65:1)

क़ुरआन पतियों को चेतावनी देता है

पति को एक अन्य चेतावनी यह दी गयी है कि उसे अपनी तलाक़ दी हुई पत्नी को किसी अन्य से विवाह करने में रुकावट नहीं बनना चाहिए:

> यही तुम्हारे लिए ज़्यादा बरकत वाला और सुथरा तरीक़ा है। और अल्लाह जानता है, तुम नहीं जानते। (क़ुरआन, 2:232)

फ़तवा

फ़तवा इस्लामिक धर्मशास्त्र का एक धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण है। लेकिन कुछ लोग इसे धार्मिक न्यायालय का आदेश समझते हैं। जिसका कारण यह है कि कुछ हास्यास्पद फ़तवों को प्रचारित किया जाता है। इसके कारण सामान्य जनता में यह विश्वास पैदा हो गया कि अधिकतर मुसलमान इस तरह के फ़तवे को मानते हैं और उनका पालन करते हैं। हालाँकि सामान्य मुसलमानों में से बहुत कम लोग हें जो मुफ्ती के पास किसी मामले में क़ानूनी सलाह लेने के लिए जाते हैं।

यद्यपि कोई फ़तवा विषम दिखाई दे रहा हो और वह न्याय और सन्तुलन के सिद्धान्तों के अनुरूप न प्रतीत हो रहा हो। लेकिन उससे वैसा विवाद नहीं पैदा होना चाहिए जैसा विवाद आज देखा जा रहा है। मीडिया विषम और अहमकाना चीज़ों की तलाश में रहता है और वह इस्लामी धार्मिक संस्थाओं की छवि खराब करना चाहता है

इसलिए वह इस तरह के दस्तावेज़ों पर हाथ डालता है और इसका शोर मचाता है। देश में हज़ारों मदरसे हैं और इन मदरसों के अन्दर विवाद सुलझाने वाली कमेटियाँ भी हैं। अतः वहाँ किसी विशेष मामले में कई तरह के धार्मिक दृष्टिकोण आ सकते हैं। यह विचित्र बात है कि मीडिया कुछ फ़तवों को पकड़ लेती है और उसे फैसले का रूप दे देती है और फिर उसे रुढ़िवाद के नमूने के रूप में प्रस्तुत करती है। यह बात और अधिक कष्टप्रद है कि लोग समझते हैं कि अधिकतर मुसलमान ऐसे धार्मिक परामर्शों से गहरा लगाव रखते हैं।

बात को उचित पृष्ठभूमि में समझने के लिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि फ़तवा कोई न्यायाधीश का निर्णय नहीं है। यह मात्र धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण है। अंग्रेजी के एक महाकोश ए शार्टर एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम फ़तवा की परिभाषा इस तरह करता हैः (अनुवाद) ''यह मुफ्ती द्वारा दिया हुआ एक औपचारिक क़ानूनी दृष्टिकोण है जो किसी न्यायाधीश अथवा किसी व्यक्ति द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर में दिया जाता है''।

फ़तवे मात्र दृष्टिकोण होते हैं और ये किसी पर बाध्य नहीं होते, इनको स्वीकार भी किया जा सकता है और अस्वीकार भी किया जा सकता है। जिन लोगों से यह दृष्टिकोण पूछा जाता है वह भी उसे मानने या पालन करने पर ज़ोर नहीं देते। वह स्वयं कहते हैं कि आप जैसा चाहे इसे स्वीकार भी कर सकते हैं और अस्वीकार भी। जो लोग जटिल प्रश्नों का सामना करते हैं वह धार्मिक संस्थाओं से धर्मशास्त्रीय परामर्श लेते हैं और जब वह इन्हें प्रकृत्ति में परस्पर विरोधी पाते हैं तो उन्हें आश्चर्य नहीं होता।

ग़ैर ज़िम्मेदाराना फ़तवे अधिक लोकप्रियता प्राप्त करते हैं और ऐसे फ़तवों पर मुसलमानों की निन्दा अखबारों में कम ही छपती है। सन् 1989 में सलमान रुश्दी के विरुद्ध ईरान के इमाम आयतुल्लाह खुमैनी के फ़तवे पर इस्लामी दुनिया के प्रसिद्ध फ़क़ीहों ने तुरन्त प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। सऊदी अरब के प्रामाणिक उलमा और काहिरा के अल-अजहर की प्रतिष्ठित अल-अजहर मस्जिद के शेखों ने इमाम खुमैनी के फ़तवे को ग़ैर क़ानूनी और ग़ैर इस्लामी घोषित किया था। इस्लामी क़ानून बिना मुकद्दमा चलाए किसी को मौत की सज़ा देने की अनुमति नहीं देता और इसका कोई फैसला इस्लामी दुनिया के बाहर लागू नहीं होता। मार्च, 1989 के एक इस्लामी सम्मेलन के अवसर पर 45 देशों में से 44 देशों ने एक मत होकर इमाम खुमैनी के फ़तवे को निरस्त कर दिया था। लेकिन इस निरस्तीकरण को अन्तर्राष्ट्रीय मीडिया में बहुत कम महत्व दिया गया। इससे बहुत से लोगों को यह ग़लत जानकारी मिली कि पूरी मुस्लिम दुनिया रुश्दी के खून के लिए शोर मचा रही थी।

कुफ़्र और काफ़िर

काफ़िर शब्द के विरुद्ध आपत्तियाँ उठायी गयी हैं। मीडिया के कुछ वर्गों ने इसे विवादास्पद रूप में प्रस्तुत किया है मानो इसे मुसलमानों द्वारा ग़ैर मुस्लिमों को गाली देने या उन्हें अपमानित करने के लिए प्रयोग किया जाता हो। इस शब्द और इसके निहितार्थों को ग़लत समझा गया है।

काफ़िर या कुफ़्र शब्द इसके धातु शब्द कुफ़्र से लिए गए हैं। कुफ़्र का अर्थ कुछ ढकना या छिपाना होता है। रात को काफ़िर कहा जाता है क्योंकि यह रोशनी को छिपाती है। घने बादलों को भी काफ़िर कहा जाता है, क्योंकि वे चमकते हुए आसमान को और सूरज को छिपाते हैं। यहाँ तक कि किसान को भी काफ़िर कहा गया है क्योंकि वह खेत में बीज को छिपाता है।

काफ़िर या कुफ़्र शब्द से नकारात्मक अर्थ जुड़े हुए नहीं हैं। अतः इससे किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। कुफ़्र शब्द ग़ैर मुस्लिम शब्द का विकल्प नहीं है और न तो सभी ग़ैर मुस्लिम काफ़िर है। धार्मिक शब्दावली में काफ़िर वह है जो किसी चीज़ को निरस्त करता है या स्वीकार करने से मना करता है। इस तरह एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के लोगों के लिए काफ़िर होते हैं। साम्यवादी और पूँजीवादी दोनों एक-दूसरे के काफ़िर हैं। तथापि इस्लामी शब्दावली में जो कोई अल्लाह के अतिरिक्त किसी और उपास्य को मानने से इन्कार करता है वह ईमानवाला है। वास्तव में क़ाफिर वह है जो इन्कार करता है लेकिन इसमें गाली देने का भाव नहीं है।

यह समझ लेना चाहिए कि अल्लाह ने धर्म के मामले में चुनाव की स्वतन्त्रता प्रदान की है। क़ुरआन कहता हैः

> ''धर्म के विषय में कोई ज़बरदस्ती नहीं। सही बात नासमझी की बात से अलग होकर स्पष्ट हो गई है। तो अब जो कोई बढ़े हुए सरकश को ठुकरा दे और अल्लाह पर ईमान लाए, उसने ऐसा मज़बूत सहारा थाम लिया जो कभी टूटनेवाला नहीं। अल्लाह सब कुछ सुननेवाला, जाननेवाला है।''
>
> (क़ुरआन, 2:256)

अतः इस्लाम और मुसलमानों को यह अधिकार नहीं है कि उनको अपमानित करें जो एक अल्लाह और पैग़म्बरों में विश्वास नहीं रखते।

मुसलमान माँसाहारी क्यों होते हैं?

परम्परागत रूप से मानवता दो स्रोतों से प्राप्त होने वाले भोजन पर आधारित रही है। 1. एक तरफ खेत और बाग़ बग़ीचे से और दूसरी तरफ 2. पशुओं से, जो मूल रूप से मवेशियों से प्राप्त किया जाता है और पानी में रहने वाले कुछ अन्य जीवधारियों से भी। जो लोग केवल पौधों से अपना भोजन प्राप्त करके जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें शाकाहारी कहा जाता है, जबकि वह लोग अपना पोषण पौधों के अतिरिक्त जानवरों से भी प्राप्त करते हैं उन्हें माँसाहारी कहा जाता है। भोजन करने के आधार पर एक अन्य संवर्ग है जिसे अंग्रेजी में वेगन (Vegan) कहा जाता है। यह लोग प्रत्येक उस भोजन से परहेज करते हैं जो पशुओं से प्राप्त होते हैं जैसे दूध, शहद, अण्डे और दूध के अन्य उत्पाद।

पिछले वर्षों में शाकाहार और अंग्रेजी शब्द वेगनिज्म विश्वव्यापी आन्दोलन बन गए हैं। इनका आधार पशु अधिकारों के सम्मान के सिद्धान्त पर आधारित है और यह लोग प्रत्येक उस चीज़ से परहेज करते हैं जिसके परिणामस्वरूप पशुओं की हत्या होती है। इसलिए वह उनसे किसी तरह लाभ प्राप्त करने से बचते हैं।

ईसाई धर्म और यहूदी धर्म की तरह इस्लाम ऐसे भू भाग पर पैदा हुआ और ऐसे समाज में पैदा हुआ जो मौलिक रूप से खेती करता था या देहाती था। इन तीनों धर्मों के पैग़म्बरों की लम्बी क़तार है जो फिलीस्तीन जैसी भूमि के आसपास आए और ऐसी ज़मीन पर विकसित हुए जो अधिकतर सूखी हुई थी और जहाँ पशु चराना और उनका पालन-पोषण करना लोगों का मुख्य व्यवसाय था। इन तीनों धर्मों के अनुयायियों को विरासत में ऐसी पोषण परम्परा मिली जो लोग अधिकतर पशु प्रोटीन पर आधारित थे। ऐसा नहीं था कि इन धर्मों ने पशुओं का शिकार करना और उनकी हत्या करना अनिवार्य कर दिया था और माँस को उनके भोजन का मुख्य अंग बनाया था।

दूसरे, अधिकतर धर्मों में पशुओं को खाने के लिए ज़बहः करना पूर्णतः स्वीकार्य माना जाता है। फिर भी कुछ धर्म ऐसे हैं जो इसे यदि क्रूरता नहीं तो अनैतिक अवश्य समझते हैं। भोजन की आदतों का सम्बन्ध दयालुता और सहानुभूति से नहीं है। कोई व्यक्ति माँसाहारी होने के बावजूद दयालु और सहानुभूति रखने वाला हो सकता है और इसके विपरीत एक व्यक्ति पूर्ण रूप से शाकाहारी होकर भी निर्दयी हो सकता है।

तीसरे, आधुनिक शोधों से सिद्ध हो गया है कि पौधों में भी जीवन होता है और वह दर्द महसूस करते हैं और वह संगीत और इस तरह के अन्य वाह्य प्रभावों के प्रति प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते हैं और वह सुख और दुख का अनुभव करते हैं और पानी

के लिए रोते हैं। अमेरिकी किसानों ने ऐसी मशीनों का आविष्कार किया है जो पौधों के उस समय रोने की आवाज को बढ़ाते हैं जब उन्हें पानी की आवश्यकता होती है और वे सिंचाई के ऐसे यन्त्र का निर्माण करने का प्रयास कर रहे हैं जो इस तरह पौधों के रोने से सक्रिय हो जाए।

इस्लामी सिद्धान्त इस दर्शन पर आधारित है कि मनुष्य धरती पर सर्वोच्च प्राणी है जिसे धरती के सभी स्रोतों से लाभ उठाने और उनका उपयोग करने की क्षमता और अनुमति दी गयी है। यह ठीक है कि उसे यह आदेश दिया गया है कि उन स्रोतों का इस प्रकार उपयोग करे कि वह नष्ट न हों। आधुनिक कथन के अनुसार स्रोतों के इस प्रकार उपयोग को संरक्षित उपयोग (Sustainable use) कहा जाता है अर्थात स्रोतों का इस प्रकार प्रयोग करना कि प्रकृति, प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा उन स्रोतों की परिपूर्ति कर सके।

इस्लामी दर्शन मनुष्य से यह चाहता है कि वह धरती की सभी चीज़ों का संरक्षक बने जो धरती में हैं और जिन्हें धरती पैदा करती है। वह इनके स्वामी न बनें। इनका स्वामी केवल अल्लाह है और मनुष्य इनका संरक्षक मात्र है। अतः संरक्षक को पूरी ईमानदारी से काम करना चाहिए और इन स्रोतों का केवल आवश्यकता पड़ने पर ही प्रयोग करना चाहिए। अपनी लालच की पूर्ति करने के लिए उनको एकत्र नहीं करना चाहिए।

क़ुरआन कहता हैः

> ''ऐ ईमान लानेवालो! प्रतिबन्धों (प्रतिज्ञाओं समझौतों) आदि का पूर्णरूप से पालन करो। तुम्हारे लिए चौपायों की जाति के जानवर हलाल हैं सिवाय उनके जो तुम्हें बताए जा रहे हैं।'' (क़ुरआन, 5:1)

एक दूसरी जगह पर क़ुरआन कहता हैः

> ''और निश्चय ही तुम्हारे लिए चौपायों में भी एक शिक्षा है। उनके पेटों में जो कुछ है उसमें से हम तुम्हें पिलाते हैं। और तुम्हारे लिए उनमें बहुत-से फ़ायदे हैं और उन्हें तुम खाते भी हो।'' (क़ुरआन, 23:21)

पोषण के विशेषज्ञ इस बात से सहमत हैं कि माँस या जन्तु प्रोटीन पूर्ण पोषक होता है और यह उन आठ आवश्यक अमीनो अम्लों की पूर्ति करता है जिनका शरीर में संश्लेषण किया जाता है और जिनका भोजन में होना आवश्यक है। माँस में आयरन, विटामिन बी-1 और नियासिन भी होते हैं। मात्र पौधों पर आधारित भोजन प्रोटीन की गंभीर कमी पैदा करता है और जिससे एनेमिया हो सकती है जिससे भारत की सामान्य आबादी ग्रसित है। इस आबादी को प्रोटीन पर आधारित पोषक तत्व पर्याप्त रूप मे नहीं मिलते।

अपने मुँह की अंदरूनी बनावट पर एक दृष्टि डालने से भी मालूम हो जाता है कि मनुष्य को ऐसे दाँत दिए गए हैं जो काटने और चबाने दोनों के लिए उपयुक्त हैं। अतः एक मनुष्य प्रकृत्ति द्वारा माँसाहारी और शाकाहारी दोनों बनाया गया है। लेकिन इसी तरह यदि पशुओं का अवलोकन किया जाए तो पता चलेगा कि मवेशियों के पास केवल चपटे दाँत होते हैं, जो चबाने के लिए ही उपयुक्त होते हैं। जंगली जानवरों के पास केवल नुकीले काटने वाले दाँत होते हैं। जो शिकार को फाड़ने और काटने के लिए उपयुक्त होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मनुष्य से दोनों तरह के आहार खाने की आशा की जा सकती है अर्थात; पौधों पर आधारित और मवेशियों पर आधारित। इसी तरह मानव पाचन तन्त्र भी शाकाहारी और माँसाहारी दोनों प्रकार के भोजन को पचाने की क्षमता रखता है।

क्या माँसाहारी भोजन लोगों को हिंसक बनाता है?

इस्लाम भोजन और आहार के लिए कुछ नियम देता है। वह शाकाहारी पशुओं का माँस खाने की अनुमति देता है, विशेष रूप से आठ वर्गों के चौपायों (वह पशु जो दूध देने वाला और चार पैर वाला होता है) को- और माँसाहारी जानवरों को खाने से मना करता है। इस्लाम जिन पशुओं को खाने की अनुमति देता है उनमें गाय, बकरी, भेड़, मेंढ़ा, ऊँट, भैंस इत्यादि सम्मिलित हैं। यही नहीं, बल्कि इन हलाल जानवरों को हलाल तरीक़े से ज़बहः भी किया जाना चाहिए। वह दरिन्दे जो खाने के लिए दूसरे जानवरों का शिकार करते हैं वह हलाल नहीं है। यहाँ तक कि शाकाहारी पशुओं में से कुछ पशु जैसे सुअर मुसलमानों और यहूदियों के लिए हराम हैं।

इस बात के लिए कोई वैज्ञानिक साक्ष्य नहीं है कि माँसाहार लोगों को अधिक हिंसक बनाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है किसी मनुष्य का पालन-पोषण और संसार के बारे में उसका दृष्टिकोण उसे हिंसक अथवा शान्तिप्रिय बनाता है। उदाहरण के लिए जर्मन नेता अडोल्फ हिटलर शाकाहारी था। परन्तु वह अपने अन्दर कुत्सित और बुरी महत्वाकांक्षाएँ, अर्थात पड़ोसी राष्ट्रों को अधीन करना, पाले हुए था और वास्तव में वह लाखों लोगों की हत्या के लिए ज़िम्मेदार था। अतः इस तरह की मनगढ़त बातों को घृणापूर्वक रद्द् करने की आवश्यकता है। क्योंकि ये मिथक इसी के अधिकारी हैं। प्रेम और सहानुभूति तथा घृणा और शत्रुता को खाने की आदतों से जोड़ने की आवश्यकता नहीं। भारत के आदिवासी अनेक प्रकार के जानवरों के माँस खाते हैं लेकिन उनके बारे में क्रूरता का रिकार्ड नहीं मिलता।

हलाल और हराम
(वैध और अवैध)

इस्लाम अपने अनुयायियों को, अपने जीवन में पालन करने के लिए, विस्तृत दिशा-निर्देश के साथ आचार संहिता प्रदान करता है। जिन चीज़ों को करने, खाने या सम्पन्न करने की अनुमति दी गयी है उन्हें हलाल कहा जाता है। जबकि वह चीज़ें जिन्हें इस्लाम की आचार संहिता के अन्दर निषेध किया गया है उन्हें हराम या अवैध के नाम से जानते हैं। हराम चीज़ें खाने और हराम कर्म करने से अल्लाह नाराज़ होता है और ऐसे लोगों को क़ुरआन में बहुत अधिक फटकारा गया है। इन चीज़ों को गुनाह कहा जाता है, मुसलमानों को इन गुनाहों से दूर रहना चाहिए। उदाहरण के लिए मुसलमान को सूअर खाने या शराब पीने अथवा और किसी नशीले पदार्थ का सेवन करने से रोका गया है। पहनावे के मामले में मुस्लिम पुरुषों से कहा गया है कि वह सोना और रेशम न पहनें। यद्यपि सोना किसी भी तरह नहीं पहना जा सकता, हाँ, रेशम यदि अन्य धागों, जैसे सूत या ऊन मिलाकर बुना गया हो तो ऐसे कपड़े पहनने की अनुमति है।

हराम और हलाल व्यवहार और कमाई के मामले तक भी विस्तृत है। एक मुसलमान को अपनी जीविका अवैध साधनों जैसे चोरी, धोखा, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, अवैध वसूली, दूसरों के संसाधनों का प्रयोग और जूआ के माध्यम से नहीं कमाना चाहिए। कोई भी ईमानवाला जो हराम माध्यमों से कमाई हुई दौलत से लाभ उठाता है या उसपर जीवन व्यतीत करता है वह गुनहगार है। इसी तरह एक ईमानवाले व्यक्ति को व्यभिचार में नहीं पड़ना चाहिए। पीठ पीछे बुराई करना, झूठ बोलना, समलैंगिक सम्बन्ध, दूसरों की जासूसी करना, व्यंग करना, दूसरों का मज़ाक उड़ाना आदि व्यवहार की ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो नापसंदीदा से लेकर हराम कर्मों के बीच में आती हैं।

जानवरों को ज़बह : करने का इस्लामी तरीक़ा

मुसलमान और यहूदी हलाल जानवरों को गर्दन के निचले हिस्से की ओर से धार्मिक रूप से ज़बहः करने पर ज़ोर देते हैं। यह तरीक़ा ज़बहः किए हुए जानवर से पूरा खून बाहर निकालने में मददगार है। इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि मृत जानवर की खून की नलियों में खून जम नहीं पाता और इस तरह यह धार्मिक रूप से शुद्ध हो जाता है। जब यह ज़बीहा मुसलमान करता है तो इसे हलाल कहा जाता है और यह स्वीकार्य भोजन का अंग है जिसे यहूदी भी खाते हैं।

इस्लाम और यहूदी धर्म जानवरों की गर्दन नीचे की ओर से काटने को कहते हैं और ऊपर से काटने को अवैध बताते हैं। इस तरीक़े से शरीर का सम्बन्ध जानवर के दिमाग़ से अचानक ही नहीं कट जाता। अतः दिमाग़ खून को बहने देता है और जानवर का शव खून-रहित हो जाता है। खून रहित माँस स्वास्थ्यवर्धक है और अधिक समय तक ताज़ा रहता है। इस तरीक़े में साँस की नली और खून की नलियाँ काटी जाती है लेकिन पीछे की तन्त्रिका अन्तिम क्षण तक काम करती रहती है और खून की आखिरी बूँद शरीर से निकाल देती है। जब जानवर पूरी तरह मर जाता है और शरीर शिथिल हो जाता है तब सिर उसके शरीर से अलग किया जाता है और माँस काटने की आगे की प्रक्रिया पूरी की जाती है।

खून को कीटाणुओं, जीवाणुओं और अन्य ज़हरीले तत्वों के पनपने का माध्यम माना जाता है। अतः ज़बहः करने का मुसलमानों का तरीक़ा ज़बहः के अन्य तरीक़ों की तुलना में अधिक स्वस्थ, साफ सुथरा और जीवाणु मुक्त होता है।

शराब और जूआ पर प्रतिबन्ध

क़ुरआन विशेष रूप से ईमानवालों को नशीले पदार्थों के सेवन और जूआ में लिप्त होने से रोकता है। शराब को इसलिए मना किया गया है कि यह बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है और सामाजिक व्यवहार पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। नशीले पदार्थों, विशेष रूप से शराब को व्यापक रूप से अनेक सामाजिक बुराईयों का मूल कारण माना जाता है। शराब के नशे में गाड़ी चलाने से यातायात में दुर्घटनाएँ अधिक होती हैं। गलियों के झगड़े और महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध घरेलू हिंसा सामान्य रूप से शराब के नशे

के प्रभाव में होती है, इसलिए कि शराब पीने वाले अपना सामाजिक आचरण और व्यवहार को खो देते हैं। शराब के नशे के प्रभाव में अमेरिका के शराबखानों में गोलीबारी सामान्य होती जा रही है। क़ुरआन निम्नलिखित शब्दों में ईमानवालों को आदेश देता है कि वह नशा और जूआ और अन्य ऐसी बुराईयों से दूर रहें:

> "ऐ ईमान लानेवालो! ये शराब और जूआ और देवस्थान और पाँसे तो गंदे शैतानी काम हैं। अतः तुम इनसे अलग रहो, ताकि तुम सफल हो।"
>
> (क़ुरआन, 5:90)

शराब की लत स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होने के अलावा आर्थिक रूप से भी व्यक्ति को विनष्ट करती है। जो लोग शराब के नशे में होते हैं वह कामुक व्यवहार में वशीभूत होते हैं और आसानी से दुराचार, बलात्कार और यहाँ तक कि अपने क़रीबी रिश्तों की महिलाओं के साथ यौन सम्बन्ध बनाने की बुराई के शिकार हो जाते हैं।

इस्लाम में जूआ को हराम ठहराया गया है क्योंकि इसकी लत पड़ जाती है और यह लाभ की तुलना में हानि अधिक पहुँचाता है। यह घरेलू अर्थव्यवस्था को नष्ट कर देता है। चाहे यह लाटरी द्वारा खेला जाए या घुड़-दौड़ में पैसा दाव पर लगाया जाए, जूआ संभावना का खेल है जिसमे बहुत से लोगों के हारने की संभावना रहती है और कुछ लोगों के सौभाग्य की संभावना संदिग्ध होती है। जो लोग इन चीज़ों के आदी हो जाते हैं वह उत्पादकता के कामों में रुचि खो देते हैं और संभावना से लाभ उठाने का माध्यम तलाश करते हैं। उनके लिए भाग्य कम ही खुलता है जबकि जूआ से उनकी आर्थिक स्थिति धीरे-धीरे कमज़ोर हो जाती है और उन्हें कंगाल बना देती है या वे बहुत जल्दी कर्ज़ और तंगहाली के शिकार हो जाते हैं।

अमेरिका के न्याय विभाग के अन्तर्गत नेशनल क्राइम विक्टीमाइज़ेशन सर्वे ब्यूरो ऑफ जस्टिस के अनुसार केवल 1996 में ही औसतन प्रतिदिन 2,713 बलात्कार हुए। आँकड़े हमें बताते हैं कि अधिकतर बलात्कारी अपराध के समय नशे में थे। छेड़-छाड़ के मामले भी नशे की हालत में होते हैं।

बलात्कार : लैंगिक आतंकवाद

इस्लामी शरीअत क़ानून में बलात्कार को अलग से अपराध के संवर्ग में वर्गीकृत नहीं किया गया है। जिसके कारण इसपर दण्ड के सम्बन्ध में कुछ संशय पैदा हुआ है। कुछ लोगों ने ग़लती से यह समझ लिया कि बलात्कार का व्यभिचार के शीर्षक के अन्तर्गत मूल्याकंन करने की आवश्यकता है। जबकि वास्तव में बलात्कार आतंकवादी अपराधों (हिराबा) की श्रेणी में आता है।

हिराबा का अर्थ लोगों पर हथियारों द्वारा हमला करके या ताक़त से धमकाकर भयभीत करना, हत्या करना, उन्हें आतंकित करना और ताक़त से खुले तौर पर उनकी सम्पत्ति हथियाना है। सम्पत्ति का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है क्योंकि हिराबा डकैती से जुड़ा हुआ है परन्तु यह आदेश समान रूप से उन लोगों पर लागू होता है जो बलात्कार के उद्देश्य से दूसरों को आतंकित करें।

इस्लाम धर्म में हिराबा बड़े अपराधों में सबसे गंभीर अपराध है और क़ुरआन और सुन्नत के अनुसार इसका कठोरता पूर्वक निषेध किया गया है। वास्तव में अल्लाह इस प्रकार के अपराधों के दण्ड का विवरण क़ुरआन में देता है:

> "जो लोग अल्लाह और उसके रसूल से लड़ते हैं और धरती में बिगाड़ पैदा करने के लिए दौड़-धूप करते हैं, उनका बदला तो बस यही है कि बुरी तरह क़त्ल किए जाएँ या सूली पर चढ़ाये जाएँ या उनके हाथ-पाँव विपरीत दिशाओं में काट डाले जाएँ या उन्हें देश से निष्कासित कर दिया जाये। यह अपमान और तिरस्कार उनके लिए दुनिया में है और आख़िरत में उनके लिए बड़ी यातना है। किन्तु जो लोग, इससे पहले कि तुम्हें उनपर अधिकार प्राप्त हो, पलट आएँ (अर्थात तौबा कर लें) तो ऐसी दशा में तुम्हें मालूम होना चाहिये कि अल्लाह बड़ा क्षमाशील, दयावान है।" (क़ुरआन, 5:33-34)

इस्लामी क़ानून में व्यभिचार और बलात्कार में अन्तर

आरम्भिक इस्लामी शोधकर्त्ता विशेष रूप से अल-दसूक़ी और और न्यायाधीश इब्नुल अरबी ने यह कारण स्पष्ट किया है कि बलात्कार को क्यों व्यभिचार के विपरीत हिराबा (आतंकवाद) के अपराधों में सम्मिलित करना चाहिए। इब्नुल अरबी एक घटना बयान करते हैं जिसमें एक समूह पर आक्रमण किया गया और उस समूह की एक महिला का बलात्कार किया गया। कुछ लोगों के इस तर्क का उत्तर देते हुए कि इस अपराध को हिराबा में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इसमें सम्पत्ति नहीं लूटी गयी और हथियारों का प्रयोग नहीं हुआ, इब्नुल अरबी ने उत्तर दिया कि गुप्तांगों का हिराबा डकैती के हिराबा से अधिक बुरा है और कोई व्यक्ति अपना बलात्कार किए जाने की तुलना में अपने ऊपर डाका डाले जाने को पसन्द करेगा। यह वर्गीकरण तर्कपूर्ण है क्योंकि इसमें जो चीज़ ली गयी वह शिकार व्यक्ति की सम्पत्ति है और यह सम्पत्ति उस व्यक्ति की सम्मान और सुरक्षा की भावना है।

इस प्रकार हिराबा के रूप में बलात्कार एक हिंसक अपराध है जिसमें बलात्कार को एक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार हिराबा का मुकद्दमा चलाने में ध्यान बलात्कार के आरोपी पर केन्द्रित होता है- विशेष रूप से उसकी नीयत और शारीरिक कृत्य- और मुकद्दमा का ध्यान बलात्कार के शिकार व्यक्ति पर नहीं होता क्योंकि इसमें उसकी रजामंदी नहीं ली गयी होती है। हिराबा का आरोप सिद्ध करने के लिए चार गवाहों की आवश्यकता नहीं होती जैसा कि आज-कल कुछ अप्रमाणिक शरीअत काउसिंल ग़लती से विश्वास करती हैं। इसके बजाए इसमें परिस्थितिगत सबूतों के आधार पर मेडिकल जानकारी और प्रमाणों के आधार पर चलाया जाता है।

परिणामस्वरूप, एक अपराधिक मामला एक अपराधिक मामले को बलात्कार सिद्ध करना पूर्ण रूप से नाजुक हो जाता है क्योंकि इस्लामी अदालत में इसका अर्थ अपराधी के जीवन और मृत्यु का अन्तर है। अतः इस बात को तय करने के लिए एक सरसरी मूल्याकंन किया जाता है कि आरोपी व्यक्ति ने क्या वास्तव में अपराध किया है। यदि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि लैंगिक सम्बन्ध रजामंदी से हुआ है और बलात्कार के आरोपी पर अनुचित आरोप लगाया गया है तो उन दोनों पर व्यभिचार करने का आरोप तय किया जाएगा और उन दोनों को इसी व्यभिचार के अपराध की सज़ा मिलेगी।

क्या इस्लामी राज्य और मुस्लिम देश में कोई अन्तर है?

पश्चिमी देशों के लोगों में आज जो बड़ी ग़लतफहमियाँ फैली हुई हैं उनमें से एक यह धारणा है कि मुस्लिम देश ऐसे स्थान हैं जहाँ व्यक्तिगत और सरकारी स्तर पर इस्लामी क़ानून ही लागू है। ऐसे मुस्लिम देशों में जो कुछ हो रहा है, लोग उसकी तुलना इस्लाम से करने लगते हैं जो ऐसी चीज है कि अधिकतर मामलों में उसे सच्चाई से दूर नहीं कहा जा सकता।

मुस्लिम देशों के स्वतन्त्र होने के तुरन्त बाद से ही पूरी दुनिया में इस्लामी आन्दोलन अपने-अपने देशों में इस्लामी राज्य की स्थापना के लिए काम करते रहे हैं। इस्लामी राज्य से तात्पर्य एक ऐसा राज्य है जहाँ शरीअत या इस्लामी क़ानून लागू हो और धार्मिक विद्वान या राष्ट्रीय इस्लामी आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले लोग या तो सरकार में कुछ प्रभाव रखते हों या राजनैतिक सत्ता पर उनका पूरा नियन्त्रण हो।

पिछले दिनों, कई मुस्लिम देशों ने अपने आप को इस्लामी राज्य घोषित किया और प्रत्यक्ष रूप से शरीअत का क़ानून भी लागू किया। लेकिन वास्तव में जिस चीज़ को व्यावहारिक रूप से लागू किया गया वह गिनती के कुछ परम्परागत न्यायिक आदेश हैं जिनका सम्बन्ध दण्ड, महिलाओं का सम्मान और फ़िक़्ह के अन्य विशेष पारम्परिक पहलू हैं। इस प्रकार इस्लामी दण्ड विधान या हुदूद क़ानून और कोड़े की सज़ा और हाथ काटने की सज़ा को बड़े पैमाने पर प्रचारित किया गया। ये वास्तव में क़ानून की "वाह्य सीमाएँ" हैं जिनको केवल ऐसी परिस्थितियों में लागू किया जाना चाहिए जब सामाजिक न्याय, पूँजी के बँटवारे, नागरिकों के प्रति राज्य के कर्त्तव्य, दया और सहानुभूति जैसे मौलिक कर्तव्यों को पूरा किया जा चुका हो। इन कर्त्तव्यों को पूरा किए बिना जब इस्लामी क़ानून लागू करते हैं तो हम एक ऐसे कठोर राज्य का निर्माण करते हैं जो रुढ़िवादी और चरमपंथी क़ानूनों के आधार पर काम करता है और जिसका व्यवहार पूर्ण रूप से क़ुरआन की शिक्षाओं और इस्लाम की भावना के विपरीत होता है। इसमें इस्लाम के नाम पर दमन को उपयुक्त घोषित किया जाता है। इस प्रकार स्वघोषित इस्लामी राज्य और कुछ नहीं बल्कि ऐसे दोषदर्शी यन्त्र बनते हैं जो विशेष वर्ग, परिवार या सेना की सत्ता को न्यायपूर्ण बताते हैं।

अनेक लोग इन मुस्लिम देशों में जो कुछ हो रहा है उसकी तुलना इस्लाम के व्यवहार से करते है। हालाँकि अधिकतर मामलों में उनकी यह धारणा सच्चाई से काफी दूर है। इसके कारण पश्चिम के अनेक लोगों को यह आश्चर्य भी होता है कि इतने अधिक मुसलमान पश्चिमी देशों में, नागरिकता प्राप्त करने की लालसा क्यों रखते हैं जबकि उनके अपने देश में इस्लाम मौजूद है। इसका उत्तर इस तथ्य में निहित है कि अधिकतर मुस्लिम देशों में मुसलमान मात्र आबादी के अनुसार ही अधिक हैं जबकि वहाँ इस्लाम धरती का बुनियादी क़ानून नहीं है।

वास्तव में अधिकतर मुस्लिम देशों पर बहुत ही क्रूर, दमनकारी और निरंकुश शासकों का शासन हैं और बहुत से मामलों में ये सरकारें इराक में सद्दाम हुसैन के शासन से भी अधिक बुरी हैं। मिस्र, अल्जीरिया, सीरिया, जार्डन और पाकिस्तान जैसे देशों की नीतियों और व्यवहार पर सरसरी नज़र डालें तो यह पता चलेगा कि इन देशों में मानवाधिकारों का उल्लघंन किया जाता है और नागरिक स्वतन्त्रता पर रोक लगायी जाती है। इन देशों के तानाशाह लगातार चुनावों में धाँधली करते हैं, विपक्षी नेताओं को जेल में डाल देते हैं या उनकी हत्या करा देते हैं, उनके परिवारों को गिरफ्तार कर लेते हैं और बिना अदालत में मुकद्दमा चलाये लम्बे समय तक उन्हें जेल में रखते हैं और वहाँ क़ैदियों को अन्य गंभीर अन्याय और मानवाधिकारों के उल्लघंन के साथ-साथ भावनात्मक और शारीरिक यातनाएँ भी दी जाती हैं।

लेकिन यह सोचने की ग़लती मत कीजिए कि यह लोग जिन परिस्थितियों में अपना वतन छोड़ने पर मजबूर हुए उन परिस्थितियों का इस्लाम से कोई सम्बन्ध है। इस्लामी क़ानून की बुनियादी समझ से पता चलेगा कि इन देशों में जो कुछ हो रहा है इस्लाम उसका विरोधी है और इसीलिए आप उन देशों से लोगों को अपना देश छोड़ते हुए नहीं देखेंगे जहाँ किसी भी स्तर पर अपनी सरकारों में इस्लाम पर अमल होता है।

मुसलमान या मुहम्मडन

मुसलमान किसी भी तरह पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) की इबादत नहीं करते। मुसलमानों का विश्वास है कि वह सर्वशक्तिमान अल्लाह द्वारा भेजे हुए अन्तिम पैग़म्बर थे और अन्य पैग़म्बरों की तरह वह भी मनुष्य थे। तथापि कुछ लोग ग़लती से यह मानते हैं कि मुसलमान(अल्लाह की पनाह) मुहम्मद की इबादत करते हैं और यही कारण है कि मुसलमानों को ग़लती से मुहम्मडन कहा जाता है।

ईसा मसीह की तरह पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) ने भी अपने लिए दैवीय स्थान का दावा नहीं किया। उन्होंने लोगों को केवल एक अल्लाह की इबादत की ओर बुलाया और वह लगातार अपने मनुष्य होने पर ज़ोर देते रहे। अपने आप को देवता बनाने से बचने के लिए पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) ने कहा कि उन्हें सदैव ''अल्लाह का बन्दा और पैग़म्बर कहकर पुकारा जाए।'' आपने कहाः ''मेरी प्रशंसा इस तरह न करो जिस तरह ईसाइयों ने ईसा बिन मरियम की प्रशंसा की (और उन्होंने उन्हें अल्लाह का बेटा बना दिया)। मैं अल्लाह का बन्दा और उसका पैग़म्बर हूँ।''

मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) को अल्लाह के अन्तिम पैग़म्बर के रूप में अल्लाह के सन्देश को पूरी मानवता तक पहुँचाने के लिए चुना गया था। आपको केवल शब्द पहुँचाने के लिए नहीं कहा गया था, बल्कि उन शब्दों के व्यवहारिक प्रयोग का जीवन्त उदाहरण बनने के लिए भी भेजा गया था। मुसलमान उनके महान नैतिक चरित्र के कारण उनसे प्यार करते और उनका सम्मान करते हैं और इसलिए भी कि उन्होंने अल्लाह द्वारा दी गयी सच्चाई को हम तक पहुँचा दिया जो इस्लाम का विशुद्ध एकत्ववाद (तौहीद) है।

मुसलमान पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) का महान आदर्श अपनाने का प्रयास करते हैं। परन्तु वह किसी तरह उनकी पूजा नहीं करते। इस्लाम मुसलमानों को शिक्षा देता है कि वह सभी पैग़म्बरों का सम्मान करें। तथापि उनका सम्मान करने और उनसे प्रेम करने का अर्थ उनकी पूजा करना नहीं है। मुसलमान जानते हैं कि सभी इबादतें केवल अल्लाह के लिए ही होती हैं।

इस्लाम धर्म में अल्लाह के साथ या अल्लाह के अतिरिक्त पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) की इबादत भी वास्तव में अक्षम्य पाप है। यद्यपि कोई मुसलमान, मुसलमान होने का दावा करता हो परन्तु वह अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की इबादत करता हो तो इससे उसके इस्लाम का दावा अवैध हो जाता है। ईमान लाने की घोषणा करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मुसलमानों को केवल एक अल्लाह की इबादत करनी चाहिए।

इस्लाम और मुस्लिम ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग क़ुरआन में किया गया है। अल्लाह तआला फ़रमाता है, ''निश्चय ही अल्लाह के लिए स्वीकार्य जीवन पद्धति इस्लाम है'' (क़ुरआन, 3:19) ''उसने तुम्हारा नाम मुस्लिम रखा था और इस क़ुरआन में भी मुस्लिम ही रखा है।'' (क़ुरआन, 22:78)। आदम से लेकर मुहम्मद तक सभी पैग़म्बरों का सन्देश एक ही रहा हैः अल्लाह का आज्ञापालन करो और किसी अन्य का नहीं। पैग़म्बरों द्वारा भेजा गया यह सन्देश पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) पर पूरा हुआ जो पैग़म्बरों की श्रृंखला के अन्तिम पैग़म्बर थे। यह बात क़ुरआन में लिखी हुई हैः ''आज के दिन मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारे धर्म को पूरा कर दिया, मैंने तुम्हारे ऊपर अपना उपकार पूरा कर दिया। और इस्लाम को तुम्हारी जीवन व्यवस्था के रूप में चुन लिया।'' (क़ुरआन, 5:3) अतः इस्लाम को मुहम्मदवाद (मुहम्मडनिज्म) और मुसलमानों को मुहम्मडन कहना ग़लत है और मुहम्मद को इस्लाम का संस्थापक कहने के बजाए मुहम्मद को इस्लाम के अन्तिम पैग़म्बर के रूप में देखना चाहिए।

शीया और सुन्नी मुसलमान

मुसलमानों के बीच शीया और सुन्नी मतभेद के सम्बन्ध में भी ग़ैर मुस्लिम ग़लतफहमियों का शिकार पाए जाते हैं। सामान्य मुसलमान चूँकि स्वयं इस्लामी इतिहास से अपरिचित है। इस सिलसिले में किसी स्पष्ट और संतोषजनक उत्तर देने में अपने आप को असमर्थ पाता है।

शीया और सुन्नी समुदाय मुसलमानों के दो सबसे महत्वपूर्ण समुदाय हैं। इस्लाम के मौलिक विश्वासों पर दोनों सहमत हैं। इसी तरह इस्लाम की मौलिक विचार-धाराएँ समान हैं। वास्तव में मुसलमानों में राजनैतिक मतभेद के आधार पर पहला महत्वपूर्ण बँटवारा हुआ। यह पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) की मृत्यु के बाद हुआ। लेकिन सदियों पर आधारित इन मतभेदों में धीरे-धीरे वृद्धि होती रही। और दोनों के विश्वासों और विचारों से ऐसे कर्म जुड़ गए जिन्हें उनको पूर्णतः दो भिन्न वर्गों में बाँट डाला। अब इन कर्मों में इनके अनुयायियों का विश्वास इतना गहरा हो चुका है कि वह उनको अपना आध्यात्मिक आधार समझने लगे हैं।

मतभेदों का आरम्भ

मतभेदों की शुरुआत इस बात पर हुई कि पैग़म्बर (सल्ल0) की मृत्यु के बाद उनका आध्यात्मिक और राजनैतिक उत्तराधिकारी कौन होगा और किसको यह अधिकार पहुँचता है कि वह उस कर्त्तव्य के योग्य हो? सुन्नी समुदाय के मुसलमान पैग़म्बर के बड़े सहाबियों के उस निर्णय से सहमत हैं कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के बाद खलीफा उन साथियों में से चुना जाना चाहिए जो उस पद के लिए योग्य हों जैसा कि इतिहास से प्रमाणित है कि ऐसा ही किया गया। और हज़रत अबू बक्र (रज़ि0) को पहला खलीफा बनाया गया। उनको अमीरुल मोमिनीन या पहला खलीफा का नाम दिया गया। सुन्नी की शब्दावली ''मुहम्मद (सल्ल0) की सुन्नत अर्थात आदर्श का अनुसरण करने वाले' से ली गयी है।

दूसरी तरफ शीया मुसलमानों का कहना है कि नबियों और उनके उत्तराधिकारियों का चुनाव अल्लाह की ओर से होता है। इस चुनाव में स्वयं नबियों को भी अपना उत्तराधिकारी बनाने का अधिकार नहीं होता जैसा कि हज़रत आदम (अलै0) से अन्तिम पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) तक हुआ है। उनके विश्वास के अनुसार हज़ररत मुहम्मद (सल्ल0) के उत्तराधिकारी का चुनाव भी अल्लाह की ओर से हुआ और इसकी घोषणा पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने अपने जीवन में ही अन्तिम हज से वापसी के समय 18 ज़िलहिज्जा को गदीर के मैदान में यह कहते हुए कीः लोगों वह समय निकट है जब मेरा बुलावा आ जाए और मैं अल्लाह का निमन्त्रण स्वीकार करुँ ''क्या मैं ईमानवालों पर स्वयं उनसे अधिक अधिकार नहीं रखता?'' लोगों ने कहा, जी हाँ, तो आप (सल्ल0) ने फ़रमाया, ''मैं जिस-जिस का मौला था अब यह अली उसके मौला हैं।'' शीया लोग उत्तराधिकार की इस घोषणा पर क़ुरआन की दो आयतों से भी तर्क देते हैं, उनके अनुसार ''ऐ पैग़म्बर (सल्ल0) जो आपके पालनहार की ओर से उतर चुका है, उसे पहुँचा दीजिए। यदि आपने ऐसा न किया तो मानो आपने पैग़म्बरी का काम पूरा न किया। अल्लाह आपको लोगों की बुराईयों से सुरक्षित रखेगा।'' (सूरः माईदा, 66) इस आयत का सम्बन्ध उसी उत्तराधिकार से है जिसके अवतरित होने के बाद पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने हाजियों की सभा में ग़दीर के स्थान पर अली के उत्तराधिकार की घोषणा की, और जब घोषणा कर चुके तो फिर दूसरी आयत अवतरित हुई, ''आज मैंने आपके दीन अर्थात धर्म को पूरा कर दिया और आप पर अपने उपकार पूरे कर दिए और आपके लिए इस्लाम धर्म से सन्तुष्ट हुआ। (सूरः माईदा, 3) उनके विश्वास के अनुसार मुहम्मद (सल्ल0) के 12 उत्तराधिकारी हैं जो अल्लाह की ओर से नियुक्त हुए हैं जिनमें पहले हज़रत अली (रज़ि0) और अन्तिम हज़रत मेहदी हैं जो परोक्ष में छिपे हुए हैं और वह प्रकट होंगे।

इसलिए पूरे इस्लामी इतिहास के दौरान शीया भाईयों ने उस नेतृत्व को स्वीकार नहीं किया जो पैग़म्बर की मृत्यु के बाद तुरन्त अस्तित्व में आया। इसके बजाए वह उन्ही उपरोक्त इमामों के अनुयायी रहे हैं जो उनके विचार के अनुसार अल्लाह तआला की ओर से नियुक्त किए गए थे।

''शीया'' का अर्थ अरबी में अनुसरण करने वाला या समर्थक या ऐसा गिरोह

है जो हज़रत अली और उनके बाद उन्हीं की पीढ़ी के 11 इमामों को निरन्तर पैग़म्बर का उत्तराधिकारी मानता है। यह वास्तव में ''शीयान-ए अली'' का संक्षिप्त रूप है। अहल-ए बैत का अर्थ पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के घरवालों का अनुयायी है।

दुनिया में शीया और सुन्नी आबादी

सुन्नी मुसलमान संसार की कुल मुस्लिम आबादी का लगभग 85 प्रतिशत हैं जबकि शेष 15 प्रतिशत शीया मुसलमान हैं। दुनिया के 56 मुस्लिम बहुल देशों में से 4 अर्थात ईरान, इराक, बहरीन और अजरबैजान शीया बहुल देश हैं लेकिन हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, यमन, सीरिया और लेबनान में भी शीया आबादी अच्छे अनुपात में पायी जाती है।

धार्मिक मामलों में मतभेद

इस्लाम के आरम्भिक युग में उभरने वाले इन मतभेदों के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आए दो समुदायों के बीच विश्वासों में भी काफी मतभदे पैदा होते चले गए और उसके आधार पर कई रीतियों की बुनियाद पड़ी जो अब स्थायी रूप से दोनों समुदायों की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन का अंग बन चुकी हैं। लेकिन इन सबके बावजूद मौलिक कलिमा (मूल मन्त्र) और तीन मौलिक विश्वासों के मामले में उनमें समानता और एकरूपता पायी जाती है। बहुत से मुसलमान ऐसे भी हैं जो स्वयं को इन दोनों वर्गों से अलग रखकर मात्र मुसलमान कहलाना पसन्द करते हैं।

धार्मिक नेतृत्व

शीया मुसलमानों का मानना है कि इमाम निर्दोष होता है और उसकी सत्ता पापमुक्त होती है और यह सीधे अल्लाह के द्वारा नियुक्त होते हैं। इसलिए शीया मुसलमान इमामों को पाप और ग़लतियों से ऊपर और निर्दोष मानते हैं और उन इमामों की मज़ारों के दर्शन के लिए जाते हैं ताकि उनकी सिफारिश उनको प्राप्त हो सके।

इसके विपरीत सुन्नी मुसलमानों का मानना है कि इस्लाम में किसी विरासती

नेतृत्व की कोई धारणा नहीं और आध्यात्मिक नेता और इमामों की व्यवस्था को इस्लाम ने हतोत्साहित करते हुए उसके लिए वैधता नहीं रहने दिया। यही नहीं बल्कि मुसलमानों के नेता वह होंगे जो उसके लिए संघर्ष करेंगे और जिसपर मुसलमान भरोसा करेंगे और इन नेताओं को यद्यपि उनके सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक मामलों में निर्णय का अधिकार होगा लेकिन वह परलोक की सफलता के लिए किसी सिफारिश के हकदार नहीं समझे जायेंगे।

मतभेद और तनाव

मुसलमानों के बीच शीया-सुन्नी तनाव और मतभेद हमेशा से रहा है और इस आधार पर दोनों सम्प्रदायों के राजनैतिक और सामाजिक चिन्तन में काफी अन्तर रहा है। कुछ देश जैसे भारत, पाकिस्तान, सऊदी अरब आदि में यह मतभेद अधिकतर उभरकर सामने आते रहे हैं और अलग-अलग राजनैतिक दृष्टिकोण का कारण रहे हैं। सऊदी अरब और सीरिया में शासक, मसलक के आधार पर अपने राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय सम्बन्धों की योजना निर्धारित करते हैं जिसके कारण जनता में असंतोष और बेचैनी एक स्थायी समस्या रही है। अफगानिस्तान और इराक में जो पिछली दशक में अमेरिकी आक्रमण और अधीनता का शिकार रहे, इन दो समुदायों के बीच मतभेद भी देखने में आया है। अधिकतर सामाजिक उपद्रव फैलाने वाली ताकतें शीया-सुन्नी मतभेदों को भी अपनी रणनीति के रूप में उभारती और प्रयोग करती रही हैं। भारत में यद्यपि इस मसलकी मतभेद की सतह बहुत नीचे की सतह में रही है लेकिन मुहर्रम के जुलूस के रास्ते पर मतभेद या हिंसा के रूप में देखी जाती रही है।

क्या उर्दू विदेशी भाषा है?

उर्दू भाषा को विकसित करने के लिए जो कदम उठाये जाते हैं उन्हें अक्सर विदेशी भाषा को बढ़ावा देना कहा जाता है। यह आधुनिक मिथकों में से एक मिथक है। हो सकता है कि सिन्धु और गंगा के बीच के मैदानी क्षेत्र में उर्दू भारतीय मुसलमानों की पहिचान का आवश्यक घटक रहा हो। लेकिन यह पूर्ण रूप से भारतीय आर्य भाषा है जिसका व्याकरण संस्कृत की तरह है। उर्दू का विकास मुग़ल भारत के सैन्य छावनियों में हुआ जहाँ अनेक नस्लीय समूह आपस में मिलते-जुलते थे और वे आपस में हिन्दी, संस्कृत, बृजभाषा, प्राकृत और पाली की विभिन्न बोलियाँ बोलते थे।

न तो भारत के सभी मुसलमान उर्दू बोलते हैं और न ही इसका प्रयोग करने वाले (या जिन्होंने अतीत में इसमें योगदान किया है) सब मुसलमान हैं। उर्दू की साहित्यिक विरासत अपने साथ धर्म-निरपेक्ष पहिचान रखती है जिसमें अनेक हिन्दू कवियों, लेखकों, कहानीकारों और निबन्धकारों ने बहुत अधिक योगदान दिया है। भागवत गीता के उर्दू अनुवाद किसी भी भारतीय भाषा में इसके अनुवादों से अधिक हैं। अनेक बड़े उर्दू लेखक जैसे आनन्द नारायण मुल्ला, मालिक राम, कृष्णचन्द्र, विशेष्वर प्रदीप, मनोरमा दीवान, प्रेमचन्द्र, रघुपति सहाय फिराक़ गोरखपुरी, बृज नारायण चकबस्त और गोपीचन्द्र नारंग हिन्दू समुदाय से सम्बन्ध रखते हैं। उर्दू का मध्य पूर्व के देशों और अरबों से कोई सम्बन्ध नहीं है। पाकिस्तान ने अवश्य राष्ट्रीय स्तर पर इसे कार्यालय की भाषा के रूप में अपनाया है लेकिन पाकिस्तान के सभी चार राज्यों में रहने वाले लोग अपनी अपनी क्षेत्रीय भाषाएँ बोलते हैं अर्थात सिन्धी, बलूची, पंजाबी और पश्तूनी। इसी तरह पाकिस्तान की चार क्षेत्रीय भाषाओं में से एक भाषा सिन्धी, भारत की राष्ट्रीय भाषाओं में सम्मिलित है। यह एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखने का कारण होने की बजाए हमारी समान विरासत का आपसी विस्तार है। इसकी फारसी लिपि भी इसे विदेशी नहीं बनाती। तीन अन्य भारतीय भाषाएँ सिन्धी, पंजाबी और कश्मीरी भी फारसी लिपि प्रयोग करती हैं। यदि आपको इस सम्बन्ध में किसी प्रमाण की आवश्यकता है तो भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी किए गए सौ के नोट को उलट कर विभिन्न भाषाओं की लिपियों को देखिए।

सबसे पुरानी और बची हुई उर्दू पत्रिका जो 100 वर्ष से अधिक पुरानी है और ft l dkule *मस्ताना जोगी* है। इसका स्वामी एक हिन्दू है, और इस समय सबसे अधिक पढ़ा जाने वाला उर्दू दैनिक राष्ट्रीय सहारा एक ग़ैर मुस्लिम द्वारा संचालित प्रकाशन 'सहारा समूह' द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

मदरसा शिक्षा व्यवस्था

भारत में मदरसे उन लोगों की आलोचना का निशाना बने हैं, जो लोग राजनीतिक स्वार्थ रखते हैं और मीडिया के एक वर्ग की ओर से भी, जो भेद-भाव पूर्ण दृष्टिकोण रखता है। मदरसों के बारे में अपना दृष्टिकोण वह लोग व्यक्त करते हैं जिनको मुश्किल से ही मदरसा व्यवस्था के बारे में और जो कुछ वहाँ पढ़ाया जाता है, उसके बारे में स्वयं सीधी जानकारी रखते हैं। उन्होंने केवल यह मान लिया है कि चूँकि ये इस्लामी संस्थाएँ हैं इसलिए अवश्य जेहाद और युद्ध की शिक्षा देती होंगी। यहाँ तक कि जब एन.डी. ए. सत्ता में थी तो उसके जिम्मेदार मन्त्रियों ने भी ऐसे वक्तव्य दिए थे। अतः सही जानकारी और उपयुक्त अध्ययन के बाद ही अपना दृष्टिकोण प्रकट करना चाहिए।

इस्लाम अपने उदय के साथ ही भारत में प्रवेश कर चुका था, कुछ लोगों का मानना है कि इस्लाम, पैग़म्बर के जीवनकाल में ही केरल के रास्ते दक्षिण भारत में आ चुका था और एक सदी बाद उत्तर भारत में सिन्ध के रास्ते आया। उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओं में सैकड़ों लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया और इस तरह आरम्भ से ही यहाँ धर्म को पढ़ाने और उलमा तैयार करने के लिए मदरसों की आवश्यकता पड़ी ताकि वह दूसरों को पढ़ा सकें और नमाज़ पढ़ने और अन्य धार्मिक कर्त्तव्यों के निर्वाह में लोगों की मदद कर सकें।

शाब्दिक रूप से मदरसा उस स्थान को कहते हैं जहाँ पर शिक्षा और अध्ययन कार्य होता है। मदरसा हिन्दी के शब्द विद्यालय या अंग्रेजी के शब्द स्कूल की तरह है। अंग्रेजी और हिन्दी में स्कूल और विद्यालय प्राथमिक शिक्षा और पूर्व माध्यमिक स्तर के होते हैं लेकिन उर्दू में मदरसा का तात्पर्य प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा देने वाली संस्था से है। इस्लामी देशों में उच्च शिक्षा के केन्द्रों को भी मदरसा कहा जाता है। कोलकाता में एक मदरसा आलिया अर्थात उच्च शिक्षा विद्यालय है जिसे अब पश्चिम बंगाल सरकार ने विश्वविद्यालय का दर्जा दे दिया है। यह जानकारी उल्लेखनीय है कि ये मदरसे दूसरे सम्प्रदायों के छात्रों के लिए भी खुले हुए हैं। राजा राममोहन राय ने मरदसा आलिया में पढ़ा था और वह फारसी और अरबी के उसी तरह विद्वान थे जिस तरह वह संस्कृत और हिन्दू धर्म के विद्वान थे।

बहुत से मामलों में ये मदरसे धार्मिक और अधार्मिक दोनों ही आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे और ये सांसारिक और धार्मिक दोनो प्रकार के जीवन के लिए आवश्यक थे।

आज लगभग 20,000 मदरसे प्रतिवर्ष 1.5 मिलियन छात्रों को शिक्षा देते हैं। सच्चर कमेटी रिपोर्ट (2006) के अनुसार लगभग 4 प्रतिशत मुस्लिम बच्चे मदरसों में जाते हैं। जो बात महत्वपूर्ण है वह यह है कि मदरसा अब भी गरीब, देहाती और कुछ सीमा तक शहरी मुसलमानों के लिए महत्वपूर्ण संस्था है। हिन्दुस्तान में मुसलमानों की एक बड़ी संख्या निर्धन और अशिक्षित है। ये ग़रीब मुसलमान यदि चाहें भी तो अपने बच्चों को सेक्यूलर शिक्षा संस्थाओं में भेजने की क्षमता नहीं रखते।

इसके अतिरिक्त उनकी कुछ धार्मिक आवश्यकताएँ होती हैं और मदरसे केवल धार्मिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति नहीं करते, बल्कि वह निःशुल्क शिक्षा, खाना और छात्रावास की सुविधा प्रदान करते हैं और इससे बढ़कर ये ऐसे स्थान पर स्थित होते हैं जो बच्चों के लिए सुविधाजनक होते हैं। हमें सभी मदरसों को एक जैसा समझना भी नहीं चाहिए। उन्हें विभिन्न वर्गों में बाँटकर देखने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए प्रारम्भिक मदरसों में जिन्हें मकतब कहा जाता है मात्र प्रारम्भिक धार्मिक शिक्षाएँ ही दी जाती हैं। इसके बाद माध्यमिक स्तर के मदरसे आते हैं जहाँ अरबी भाषा, क़ुरआन, क़ुरआन की व्याख्या और हदीस आदि विषय पढ़ाए जाते हैं। इसके बाद उच्च स्तर के मदरसे आते हैं जिनकी तुलना स्नातक या स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई से की जा सकती है। कॉलेजों के उद्भव के साथ-साथ जामिया अथवा विश्वविद्यालयों का विकास हुआ। संसार का सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय मोरक्को के फेज़ नगर में स्थित कराविईन विश्वविद्यालय है जिसकी स्थापना 859 ई0 में हुई थी। फिर इसके बाद जल्द ही मिस्र की राजधानी काहिरा में अल-अजहर विश्वविद्यालय की स्थापना 970 ई0 में हुई। विश्वविद्यालय के छात्र धार्मिक विद्याओं के अतिरिक्त तर्कशास्त्र, आध्यात्म, दर्शन, गणित, भौतिक विज्ञान, खगोल विज्ञान, भाषण शैली और यन्त्र निर्माण की शिक्षा प्राप्त करते थे।

मदरसों के आधुनिकीकरण का एक आन्दोलन चल रहा है और बहुत से मदरसों ने अपने आधुनिकीकरण का का काम प्रारम्भ कर दिया है।

अभी पिछले दिनों एक मुख्य सरकारी संस्था एन.सी.ई.आर.टी. (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद) ने एक अध्ययन कराया जिससे पता चला कि अनेक राज्यों, विशेष रूप से केरल और पश्चिम बंगाल में मदरसों में शिक्षा सामग्री में सन्तुलन पैदा करने की प्रक्रिया जारी है। इस अध्ययन में मदरसा की पाठ्य सामग्री में कोई राष्ट्र

विरोधी तत्व नहीं मिल सका।

मुसलमानों द्वारा मदरसा शिक्षा को अधिक महत्व देने के कारण निम्नलिखित हैं:

1. मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में आधुनिक स्कूलों की कमी।
2. अलग बालिका विद्यालयों की कमी और यहाँ तक कि सह-शिक्षा वाले स्कूलों में महिला शिक्षकों की कमी।
3. आधुनिक शिक्षा का मँहगा होना और सरकारी स्कूलों की गुणवत्ता का निम्न होना।
4. सरकारी स्कूलों में पढ़ाई की खराब स्थिति।
5. "रिवायती मुसलमानों की उपयुक्त शिकायत यह है कि स्कूल की पाठ्य पुस्तकों की सामग्री में हिन्दू भेद-भाव मौजूद है।"

मदरसा और मकतब

इस ग़लतफहमी का कि अधिकतर मुस्लिम बच्चे मदरसों में जाते हैं एक कारण यह है कि लोग मदरसा और मकतब में भेद नहीं जानते। यद्यपि मदरसे नियमित शिक्षा देते हैं,मकतब महल्ले की मस्जिद से जुड़े स्कूल होते हैं जो अन्य स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों को धार्मिक शिक्षा देते है। इस तरह मकतब औपचारिक शिक्षा संस्थाओं में पढ़ने वाले बच्चों को धार्मिक शिक्षा देते हैं, इस तरह वे इन संस्थाओं के पूरक होते हैं।

मस्जिद

1. मस्जिद इस्लाम के अनुयायियों के लिए एक उपासना-स्थल है और यह वह स्थान है जहाँ कोई व्यक्ति अपना माथा अल्लाह के सामने टेकता है।

2. बहुत सी मस्जिदों में भव्य गुम्बदें, मीनारें और नमाज़ के लिए हॉल होते हैं।

3. मस्जिद में नमाज़ पढ़ते हुए सामने कोई मूर्ति, आकृति, ऐतिहासिक अवशेष (पैग़म्बर का) या कोई पवित्र पुस्तक नहीं रखी जाती।

4. न तो मस्जिद में कोई प्रवेश शुल्क लगता है और न ही मस्जिद में नमाज़ के लिए प्रवेश होने पर नारियल, मिठाइयाँ, अगरबत्तियाँ या चादर आदि चढ़ाने की आवश्यकता होती हैं।

5. मस्जिद एक ऐसा स्थान है जहाँ मुसलमान नमाज़ के लिए एकत्र होते हैं। इसके अतिरिक्त यह सूचना, शिक्षा और विवादों के निपटारे का एक केन्द्र होती है।

6. सभी मुसलमान एक पंक्ति में खड़े होकर नमाज़ पढ़ते हैं। मस्जिद में नमाज़ पढ़ते हुए किसी भी व्यक्ति के साथ विशेष वरीयतापूर्ण व्यवहार नहीं किया जाता और किसी को सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक पद के कारण विशेष स्थान नहीं आवंटित किया जाता है।

7. नमाज़ का समय आसमान में सूरज की स्थिति के अनुसार निर्धारित किया जाता है।

फज्र की नमाज़ सूरज निकलने से पहले होती है।

ज़ुहर की नमाज़ उस समय होती है जब सूरज ढलने लगता है।

अस्र की नमाज़ उस समय होती है जब चीज़ों की छाया अपनी लम्बाई की दो गुनी हो जाती है।

मग़रिब की नमाज़ सूरज डूबने के फौरन बाद पढ़ी जाती है।

दिन की पाचवीं और आखिरी नमाज पूरी तरह अँधेरा हो जाने के बाद या सूरज डूबने के 90 मिनट के बाद होती है। समय का सख्ती से पालन किया जाता है, किसी भी महत्वपूर्ण व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार समय नहीं बदला जा सकता।

8. मस्जिद में इमाम नमाज़ पढ़ाते हैं। यहाँ पंडितवाद नहीं है। एक विद्वान व्यक्ति या ऐसा व्यक्ति जो समाज में प्रामाणिक माना जाता हो वह नमाज़ पढ़ा सकता है।

9. ग़ैर मुस्लिमों को भी मस्जिद में प्रवेश करने की अनुमति होती है।

10. मस्जिद में कुर्बानी (पशु-बलि) करना नमाज़ का अंग नहीं है।

11. शराब पीने के बाद मस्जिद में प्रवेश वर्जित है और यहाँ तक कि कोई कच्ची प्याज

या लहसन चबाये तो मस्जिद में प्रवेश से पहले उसे अपना मुँह धोने का परामर्श दिया जाता है।

12. नमाज़ से पहले हाथ चेहरा और पैर धोना अनिवार्य है। इसे वज़ू कहते हैं।

मस्जिद के अन्दर की कुछ विशेषताएँ

नमाज़ का हॉलः

नमाज़ के लिए जो हॉल बनाया जाता है उसे मुसल्ला या कार्पेट एरिया कहते हैं। जहाँ लोग माथा टेकते हैं।

मेहराबः

मेहराब मस्जिद की दीवार में एक अर्द्ध-गोलाकार स्थान होता है जो किबला की दिशा की ओर संकेत करता है अर्थात मक्का में स्थित काबा की दिशा। इस प्रकार यह वह दिशा है जिसकी ओर नमाज़ पढ़ते समय मुसलमानों को अपना चेहरा रखना चाहिए। इस प्रकार जिस दीवार में मेहराब बना होता है वह किब्ले की दीवार होती है।

मिम्बरः

मिम्बर मस्जिद में एक ऊँचा उठाया हुआ प्लेटफार्म होता है जहाँ इमाम खड़े होकर उपदेश देते हैं या जमाअत की (सामूहिक) नमाज़ में लोगों को सम्बोधित करते हैं। यह उपदेश साधारणतः शुक्रवार को दोपहर की नमाज़ में दिया जाता है, जब बड़ी जमाअत होती है।

वज़ू की सुविधाएँः

मस्जिदों में अक्सर वज़ू के लिए हौज़ या फव्वारे लगे होते हैं या धोने के लिए नलों की श्रृंखला होती है। नमाज़ से पहले मुसलमानों के लिए अपने आप को स्वच्छ करना होता है। इस स्वच्छता प्राप्त करने की प्रक्रिया को वज़ू कहा जाता है। जिस हॉल में नमाज़ अदा की जाती है उसमें जूते पहनकर नहीं जाना चाहिए। नमाज़ पढ़ने वालों और मस्जिद का भ्रमण करने वालों से अपेक्षा की जाती है कि वह मस्जिद में पवित्र दशा में जायेंगे।

''पूरी धरती मस्जिद है''

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने फ़रमाया, पूरी धरती मस्जिद है। पैग़म्बर की इस हदीस का साधारण अर्थ यह है कि अल्लाह ने पैग़म्बर को धरती पर कहीं भी नमाज़ पढ़ने की अनुमति दी है। पृथ्वी का कोई भाग मौलिक रूप से अशुद्ध नहीं है। इसी प्रकार मुसलमान पैग़म्बर का अनुकरण करते हुए कहीं भी नमाज़ पढ़ सकते हैं। अतः सदैव यह देखा जा सकता है कि मुसलमान सार्वजनिक स्थलों जैसे पार्कों, सड़क के किनारे, रेलवे प्लेटफार्म और एयरपोर्ट के टर्मिनलों पर नमाज़ पढ़ते हैं। मुसलमानों के लिए पूरी धरती उपासना स्थल है। वह निर्धारित समय पर अल्लाह को याद करते हैं और नमाज़ पढ़ते हैं। चाहे वह कहीं भी हों।

इस साधारण अर्थ के अतिरिक्त पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की हदीस का एक अधिक महत्वपूर्ण अर्थ है। एक मुसलमान इस वास्तविकता को महसूस करता है कि मस्जिद एक शान्तिपूर्ण स्थान है; इसमें लोग शुद्ध स्थिति में प्रवेश करते हैं। उनके शरीर और उनके कपड़े स्वच्छ होते हैं। उनके मन और हृदय भी शुद्ध होते हैं; वह मस्जिद में अल्लाह के विनम्र उपासक के रूप में आते हैं। जब वह मस्जिद में प्रवेश करते हैं, तो मस्जिद में पहले से मौजूद लोगों को अस्सलामु अलैकुम कहते अथवा सलाम करते हैं। यह नये आने वालों की ओर से सलामती की घोषणा होती है। मस्जिद शान्ति और सौहार्द का प्रदर्शन करती है और यह एकत्ववाद (उपास्य की एकता) और मानव-बन्धुत्व का सन्देश देती है।

अतः जब पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने धरती की तुलना मस्जिद से की तो आप इस बात पर भी बल दे रहे थे कि धरती को शान्तिपूर्ण स्थान बनाया जाए। पैग़म्बर के दृष्टिकोण के अनुसार सभी लोग शान्ति का आनन्द धरती पर हर जगह ले सकें। शान्ति का आदर्श उसी समय प्राप्त किया जा सकेगा जब धरती वास्तव में मस्जिद तुल्य हो जाएगी और मस्जिद ही की तरह सौहार्द और मानव-बन्धुत्व का सन्देश फैलाएगी।

अज़ान

(नमाज़ के लिए पुकार)

पूरी धरती पर हर मस्जिद में प्रतिदिन पाँच बार नमाज़ या इस्लामी इबादत की जाती है। एक मुसलमान से यह आशा की जाती है कि वह प्रत्येक नमाज़ के समय मस्जिद में नमाज़ पढ़ने को वरीयता देगा। इसी तरह इस्लाम लोगों के बीच निकट सामाजिक सम्बन्ध बनाना चाहता है और ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है जहाँ लोग एक-दूसरे को जानते हों और सुख और दुख और एक दूसरे की समस्याओं और वचनों में साझीदार बनते हों।

इन्हीं नमाज़ों के लिए लोगों को आमन्त्रित करने के लिए मीनारों से अज़ान दी जाती है। कुछ ग़ैर मुस्लिम भाई-बहन नमाज़ के लिए पुकार (अज़ान) को ही नमाज़ समझते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि मुसलमानों की नमाज़ लाउड-स्पीकरों पर पढ़ी जाती है।

कुछ अन्य लोग यह जानने के लिए उत्सुक होते हैं कि मुसलमान क्यों सम्राट अकबर को पुकारते हैं जो न तो अब राज कर रहा है और न जीवित है।

अज़ान को माइक्रोफोन पर पुकारने में कुल दो या तीन मिनट लगते हैं।

इस्लाम के पैग़म्बर ने अज़ान के शब्दों को निर्धारित कर दिया है और जकार्ता से लेकर कासाब्लान्का तक मीनारों से अज़ान की एक ही आवाज़ सुनाई देती है। अज़ान उस समय प्रचलित गिरिजाघरों के घण्टों और मंदिरों में शंख बजाने से अलग हटकर एक अलग पुकारने की विधि अपनायी गयी थी। यदि अज़ान के अर्थ को भी जनता के सामने प्रस्तुत कर दिया जाए तो यह लाभदायक होगा।

1. अल्लाहु अकबर	अल्लाह सबसे बड़ा है। (चार बार)
2. अशहदु अल्ला इलाह इल्लल्लाह	मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के अतिरिक्तकोई उपास्य नहीं। (दो बार)
3. अशहदु अन्न मुहम्मद र्रसूलुल्लाह	मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल0) अल्लाह के पैग़म्बर हैं। (दो बार)
4. हय्य अलस्सलाह	आओ नमाज़ की ओर (दो बार)
5. हय्य अलल फलाह	आओ सफलता की ओर(दो बार)
6. अल्लाहु अकबर	अल्लाह सबसे बड़ा है। (दो बार)
7. ला इलाह इल्लल्लाह	अल्लाह के अतिरिक्त कोई उपास्य नहीं। (एक बार)

यह एक समान और कभी न परिवर्तित होने वाली पुकार जो अल्लाह की महानता की घोषणा (अल्लाहु अकबर), ईमान की घोषणा (मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई उपास्य नहीं, और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल0) अल्लाह के पैग़म्बर हैं।), और नमाज़ के लिए निमन्त्रण और संसार और परलोक में सफलता की पुकार लगभग 15 सदियों से दुनिया में जहाँ भी मुसलमान रहते हैं, हर जगह से गूँजती है। अपनी अलग-अलग बोली, लय और आवाज़ के साथ यह पुकार अल्लाह की अपनी संगीतमय प्रशंसा करती रही है और लोगों को आध्यात्मिकता की ओर आमन्त्रित करती रही है। यदि यह भोर में जगाने का काम करती है तो व्यस्त दिन के अन्त में सायंकाल स्मारिका का काम करती है और दिन के अन्त में जब रात हो जाती है तो यह पुकार दिन का अन्त करती है।

यह उस एक अल्लाह की याददिहानी कराती है जिसने अपने बन्दों को उनकी व्यस्त दिनचर्या से आध्यात्मिक रूप से जगाने के लिए यह व्यवस्था प्रदान की है ताकि उसको याद किया जा सके और लोग अपने कर्त्तव्य निर्वाह के लिए ईश-परायणता से प्रेरित होकर और अपने पालनहार से वचनबद्धता का नवीनीकरण करके मस्जिद से लौटें।

इस्लाम में पुरोहितवाद नहीं

कुछ लोगों की प्रवृत्ति है कि वह इमाम, मुफ्ती, क़ाज़ी या मौलवी के पद को पुरोहितवाद के रूप में देखते हैं। एक इमाम केवल नमाज़ का नेतृत्व करता है और मुफ्ती धार्मिक मामलों से सम्बन्धित किसी प्रश्न के सम्बन्ध में अपने धार्मिक ज्ञान के आधार पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। क़ाज़ी न्यायालय का मुखिया होता है और वह विवादों का निपटारा करता है। जबकि मौलवी एक धार्मिक विद्वान होता है जो क़ुरआन पढ़ता और पढ़ाता है। इनमें से किसी को कोई दैवीय स्थान प्राप्त नहीं है। इन्हें अल्लाह और मनुष्य के बीच का दलाल या मध्यस्थ नहीं समझा जाता। किसी इमाम के सामने अपना पाप स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं होती। व्यक्ति अल्लाह के सामने दुआ करके अपने पापों की क्षमा माँग सकता है। कोई भी व्यक्ति जिसने क़ुरआन का कुछ भाग याद कर लिया हो और व्यवहारिक रूप से इस्लाम का पालन करने वाला प्रतीत हो रहा हो वह मस्जिद में नमाज़ की इमामत कर सकता है। घरेलू कर्म-काण्डों और समारोहों जैसे सुन्नत, मकतब, फातिहा या घर या व्यवसाय के उद्घाटन के लिए किसी धार्मिक नेता को बुलाने की आवश्यकता नहीं होती। मस्जिद में किसी के लिए कोई स्थान सुरक्षित नहीं होता। मस्जिद में स्थान 'पहले आया पहले पाया' के आधार पर मिलते हैं। इस्लाम में कोई प्रतिष्ठावाद नहीं है। सभी लोग एक ही स्तर पर खड़े होते हैं, और एक ही थाली में खाते हैं। क़ुरआन का यह आदेश मन में रखना उपयोगी है: ''अल्लाह की दृष्टि में तुममें सर्वाधिक प्रतिष्ठित वह है जो सबसे अधिक अल्लाह से डरने वाला है।''

क्या मुसलमान काबा की पूजा करते हैं?

दुनिया की केन्द्रिय मस्जिद 'हरम' मक्का में स्थित है। 'काबा' जो एक घनाकार सन्दूक जैसा ढाँचा है, इसके बीच में स्थित है।

काबा एक अभयारण्य है जहाँ किसी जीव की हत्या नहीं की जा सकती। वहाँ मक्खी और मच्छर मारना भी मना है। यदि कोई वहाँ अपने बाप के हत्यारे को भी देखे तो उससे यह आशा की जाती है कि वह हत्यारे को हानि नहीं पहुँचायेगा।

ग़ैर मुस्लिम भाईयों की ओर से एक सामान्य प्रश्न यह पूछा जाता है कि मुसलमान क्यों अपनी नमाज़ों में काबा की ओर झुकते हैं और उसकी पूजा करते हैं।

इसका उत्तर बहुत साधारण है। काबा मक्का शहर में स्थित किबला है, किबले से तात्पर्य वह दिशा है जिसकी ओर अपनी नमाज़ों में मुसलमान अपना चेहरा करते हैं। यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि यद्यपि मुसलमान नमाज़ के दौरान अपना चेहरा काबे की ओर रखते हैं परन्तु वह काबा की पूजा नहीं करते। मुसलमान अल्लाह के अतिरिक्त न तो किसी की इबादत करते हैं और न किसी के समक्ष झुकते हैं। इस्लाम लोगों को एकता के बन्धन में बाँधने में विश्वास करता है।

क़ुरआन में यह कहा गया है कि:

> ''हम आकाश में तुम्हारे मुँह की गर्दिश देख रहे हैं, तो हम अवश्य ही तुम्हें उसी क़िबले का अधिकारी बना देंगे जिसे तुम पसन्द करते हो। अतः मस्जिदे हराम (काबा) की ओर अपना रुख़ करो।'' (क़ुरआन, 2:144)

1. इस्लाम एकता के बन्धन में विश्वास रखता है

यदि मुसमलानों को काबा की ओर मुँह करने का निर्देश न दिया गया होता तो मुसलमान सभी दिशाओं में चेहरा रखकर नमाज़ पढ़ा करते। मुसलमानों के बीच अपनी नमाज़ों के द्वारा एकता की भावना विकसित करने के लिए मुसलमान जहाँ कहीं भी हों उनको एक दिशा की ओर अपना चेहरा रखने का निर्देश दिया गया है और यह दिशा काबा

की ओर है। यदि कुछ मुसलमान काबा से पश्चिम दिशा की ओर रहते हैं तो नमाज़ में वह अपना चेहरा पूर्व की ओर रखते हैं। इसी प्रकार यदि वे काबा के पूर्व में रहते हैं तो वह अपना चेहरा पश्चिम की ओर करते हैं। यदि कोई व्यक्ति उन्हें अन्तरिक्ष से नमाज़ पढ़ते हुए देखेगा तो वह पाएगा कि सभी मुसलमान एक ही केन्द्र वाले वृत्तों में नमाज़ पढ़ रहे होंगे। जिन वृत्तों का केन्द्र काबा होगा।

2. काबा की परिक्रमा एक अल्लाह की ओर संकेत के लिए है

जब मुसलमान मक्का में मस्जिद-ए हराम जाते हैं तो वह काबा की परिक्रमा करते हैं। यह कर्म एक अल्लाह की उपासना और एक अल्लाह में विश्वास की ओर संकेत है जिस प्रकार प्रत्येक वृत्त का एक केन्द्र है उसी प्रकार केवल एक ही उपास्य उपासना का अधिकारी है।

4. लोगों ने काबा की छत पर खड़े होकर अज़ान दी

पैग़म्बर के युग में लोग काबा की छत पर खड़े होकर अज़ान दिया करते थे। इस रीति से प्रदर्शित होता है कि पैग़म्बर ने काबा की उपासना नहीं की है बल्कि काबा की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ी है।

काला पत्थर
(हजरुल-असवद)

हजरुल-असवद का महत्व क्या है? मुसलमान इसे क्यों चूमते हैं?

हजरुल असवद काबा की पूर्वी दीवार में लगा हुआ एक पत्थर है। मुसलमान इससे एक इस्लामी अवशेष के रूप में प्रेम करते हैं, मुस्लिम की एक हदीस के अनुसार इसका इतिहास हज़रत आदम (अलै0) और हौवा के जमाने से जुड़ा हुआ है। एक हदीस यह मानती है कि यह पत्थर आसमान से आदम और हौवा को यह दिखाने के लिए गिराया गया था कि अल्लाह का घर काबा कहाँ पर है।

एक और हदीस के अनुसार, काला पत्थर काबा के पत्थरों में से एक है। इसका महत्व यह है कि हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल (अलै0) ने काबा के जिस ढाँचे का निर्माण किया था, उसका यह एक मात्र बचा हुआ मूल पत्थर है। काबा अपने इतिहास में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के आने से पहले भी कई बार नष्ट हुआ और इसका पुनर्निमाण किया गया। हजरुल-असवद एक मात्र वह पत्थर है जो हज़रत इब्राहीम और इस्माईल के जमाने से लेकर अब तक अनेक विनाशों के बावजूद बचा हुआ है।

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने मक्का से हिजरत के बर्षों बाद हज किया। आपने हजरुल असवद को चूमकर काबा की परिक्रमा प्रारम्भ की। यह पैग़म्बर की, जबसे आपको अपने धर्म के कारण अपने प्यारे शहर से कई वर्षों पहले निकाला गया था, आपकी मार्मिक घर-वापसी थी।

काले पत्थर के बारे में, जिसको मुसलमान हज के दौरान चूमते हैं, पवित्र पैग़म्बर के एक प्रसिद्ध साथी के सम्बन्ध में एक रिवायत का उल्लेख किया गया है। हज़रत उमर ने हजर-ए असवद को सम्बोधित करते हुए कहा, "मैं जानता हूँ कि तुम एक पत्थर हो और तुम न किसी को लाभ पहुँचा सकते हो और न हानि पहुँचा सकते हो। यदि मैंने पवित्र पैग़म्बर को तुम्हें चूमते हुए नहीं देखा होता तो मैं तुम्हें कभी नहीं चूमता।

हजरुल-असवद के बारे में विशेष उल्लेख की आवश्यकता है क्योंकि इसके सम्बन्ध में अनेक ग़लतफहमियाँ फैली हुई हैं। यह कोई आसमानी पत्थर नहीं है बल्कि एक साधारण काला पत्थर है। इसका व्यावहारिक महत्व यह है कि यह काबा कि परिक्रमा के आरम्भ बिन्दु को दर्शाता है और यह अपने रंग के कारण उस ढाँचे में एक अलग पहिचान रखता है। दूसरे इस पत्थर की पूजा नहीं होती और न तो मुसलमान इसकी दिशा में सजदा करते हैं, सजदा केवल इस ढाँचे के किसी भी अंश की ओर किया जाता है और अक्सर लोग काले पत्थर (हजरुल-असवद) की ओर चेहरा नहीं करते। यह उल्लेखनीय है कि एक बार जब करमती शासकों ने मक्का को नष्ट कर दिया था और वह हजरुल असवद को एक युद्ध लूट के रूप में अपने देश ले गए थे और वह उनके पास कई वर्षों तक रहा। इसकी अनुपस्थिति के दौरान भी मुसलमान उस दिशा की ओर नहीं मुड़े जहाँ वह रखा हुआ था बल्कि वह लगातार मक्का में स्थित काबा की ओर ही मुँह करके नमाज़ पढ़ते रहे। काबा का ढाँचा भी महत्वपूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए जब यह मरम्मत के लिए या नये ढाँचे के निर्माण के लिए तोड़ा जाता है तब भी मुसलमान उसी स्थान की ओर मुँह करके नमाज़ पढते हैं चाहे वहाँ पर काबा का ढाँचा या काला पत्थर मौजूद हो या न हो। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि हजरुल असवद का व्यवहारिक महत्व यह है कि यह उस स्थान को इंगित करता है जहाँ से परिक्रमा प्रारम्भ की जाती है।

ग़ैर मुस्लिमों को मक्का में जाने की अनुमति क्यों नहीं है

कुछ ग़ैर मुस्लिम यह भी प्रश्न करते हैं कि दूसरे धर्मों के लोगों को इस्लामी तीर्थ-स्थलों मक्का और मदीना में जाने की अनुमति क्यों नहीं दी जाती। यह सही है कि ग़ैर-मुस्लिमों को मक्का और मदीना के पवित्र शहरों में जाने की क़ानूनी अनुमति नहीं है इस प्रतिबन्ध के संभावित कारणों को स्पष्ट करने में निम्न बिन्दु सहायक हो सकते हैं।

मक्का और मदीना इस्लाम के पवित्र शहर हैं। मुसलमान वहाँ हज करने के लिए जाते हैं। कोई भी व्यक्ति वहाँ मात्र भ्रमण या मनोरंजन के लिए नहीं जाता। अतः केवल इस्लामी सिद्धान्तों में आस्था रखने वाले लोगों को ही वहाँ जाने और प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दी जाती है। अन्य धर्मों के केन्द्र भी ऐसे नियम लागू करते हैं। यदि कोई तिरुपति तिरुमाला देवस्थानम् के पवित्र क्षेत्र का भ्रमण करना चाहे तो उसे हिन्दू धर्म में अपना विश्वास घोषित करना होगा। ग़ैर हिन्दुओं को यहाँ भ्रमण करने से रोका गया है क्योंकि यह मन्दिर कोई भ्रमण या मनोरंजन स्थल नहीं है।

बहुत से ऐसे धर्म-स्थल हैं जहाँ दलितों को जाने की अनुमति नहीं है और वहाँ महिलाओं का जाना भी प्रतिबंधित है और माँसाहारी व्यक्तियों पर कुछ पाबन्दियाँ हैं।

अपने ही देश में ऐसे क्षेत्र होते हैं जहाँ सामान्य नागरिकों का प्रवेश वर्जित होता है। जो व्यक्ति रक्षा विभाग से सम्बन्ध नहीं रखता वह छावनी क्षेत्र में नहीं जा सकता। नाभिकीय रिएक्टर, जो प्रयोगशालाएँ संवेदनशील क्षेत्रों में शोधकार्य में लगी हुई हैं और अभिसूचना के मुख्यालयों में सामान्य व्यक्तियों का प्रवेश वर्जित होता है। जिन व्यक्तियों को वहाँ जाने की अनिवार्य आवश्यकता होती है वह उपयुक्त अधिकारियों से पूर्व अनुमति लेकर ही जा सकते हैं। किसी छावनी क्षेत्र में प्रवेश पर प्रतिबन्ध के संबंध में सामान्य नागरिकों का आपत्ति करना तर्क विरोधी होगा। इसी तरह ग़ैर मुस्लिमों के लिए यह उपयुक्त नहीं है कि मक्का और मदीना में प्रवेश पर जो प्रतिबन्ध है उस पर आपत्ति उठाएँ।

सभी देश विदेशी नागरिकों को अपने देश में प्रवेश की अनुमति देने पर कुछ नियम और सिद्धान्त लागू करते हैं। वीज़ा उसी समय जारी किया जाता है जब वह उन नियमों का पालन करने के अनुबन्ध पर हस्ताक्षर कर दें। इसी तरह सऊदी अरब लोगों को हज के इन केन्द्रों की यात्रा करने की अनुमति उनके धर्म की पुष्टि करने के बाद ही देता है। जो लोग इस्लाम धर्म में विश्वास नहीं रखते, उन्हें पवित्र क्षेत्र से दूर रखा जाता है परन्तु वह अन्य शहरों में व्यापार, रोज़गार और पर्यटन के लिए जा सकते हैं।

दरगाहों का दर्शन

कुछ मुसलमान जो दरगाहों के दर्शन करने जाते हैं अधिकतर इस्लाम का ग़लत प्रतिनिधित्व करते हैं। इस्लाम, पूर्ण रूप से एकेश्वरवादी धर्म है, एकेश्वरवाद का अर्थ केवल एक सर्वोच्च प्रभु में विश्वास करना है। यह बिगाड़ मुसलमानों में दक्षिण एशियाई देशों में आया, जहाँ सूफियों, सन्तों और दरवेशों की कब्रों पर दरगाहें बनायी गयीं। इन सन्तों ने अपने जीवन के दौरान लाखों लोगों का प्यार और सम्मान अर्जित किया था क्योंकि वह लोग समाजसेवा के लिए समर्पित थे। वे लोग प्यार और सद्भाव के उपदेशक थे और पूर्ण रूप से निःस्वार्थ भावना से सेवा करते थे। लेकिन जनता का जो प्यार उन्होंने प्राप्त किया था वह धीरे-धीरे जल्द ही श्रद्धा और स्नेह में बदल गया। बाद में यह एक तरह से उनकी पूजा में परिवर्तित हो गया। मृतक कुछ समूहों के आराध्य बन गये। उनके व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द कथाएँ और लोक कथाएँ बनती चली गयीं और उनको महामानव की उपाधियों और दैवीय शक्तियों से अलंकृत कर दिया गया। लोगों का एक विशेष समूह- जिनको समान हित आपस में जोड़ते थे- उनकी छवि का लाभ उठाने लगे और लगभग उन्हें ऊपर उठाकर उपदेवता बना दिया। इस्लाम के साधारण विश्वास में जो ये परम्पराएँ पैदा हो गयीं वह स्वयं इस बात का प्रमाण हैं कि कुछ आस्थाएँ और विचारधाराएँ पहले की तरह शुद्ध रह सकती हैं। जबकि उनके संस्थापक बहुत पहले दुनिया से जा चुके हों। कब्रों की इबादत आज भारतीय उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक इस्लाम का अंग बन चुकी हैं, हालाँकि इस्लामी सिद्धान्तों से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

किसी पैग़म्बर ने अपने अनुयायियों से अपनी कब्रों के ऊपर दरगाहें बनाने, उन्हें प्रकाशित करने, अगरबत्तियाँ जलाने, चादर चढ़ाने, उर्स मनाने और मर्सीया और कव्वाली के साथ संगीत सभाएँ आयोजित करने के लिए नहीं कहा। इस्लाम इन सभी कुरीतियों का पूर्णतः विरोधी है और इन्हें बिगाड़ कहकर रद्द करता है।

पैग़म्बर मुहम्मद (आप पर अल्लाह की दया और कृपा हो) ने फ़रमायाः

''तबाही हो उन लोगों के लिए जिन्होंने पैग़म्बरों की कब्रों को पूजास्थल बना दिया; तुम मेरी कब्र को पूजा-स्थल न बनाना''।

दरगाह और मस्जिद में अन्तर

इस्लाम धर्म में मस्जिद इबादत का स्थान है। मुसलमान वहाँ दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ने के लिए एकत्र होते हैं। दरगाहें बुनियादी तौर पर मुस्लिम सूफियों और सन्तों की कब्रों की स्मृतियाँ हैं। इन सन्तों ने अपने जीवनकाल में सामान्य जनता का प्यार और सम्मान प्राप्त किया। लोग उनकी दुर्वेशी की ओर और उनके प्रेम, सहानुभूति और समाज सेवा के सन्देश की ओर आकर्षित हुए। जब उनकी मृत्यु हो जाती, तो उनके अनुयायी उनकी कब्रों के श्रद्धालु बन जाते और उनकी कब्रों पर वे भवन बना लिया करते जिनके नाम दरगाह या मकबरा रखे गये। वहाँ पर घटित होने वाले चमत्कारों और उनके द्वारा बीमारियों के ईलाज की लोक-कहानियाँ गढ़ी गयीं।

कुछ लोगों ने इन स्थलों में बीमारियों के ईलाज की क्षमताएँ होने के बारे में प्रचार भी शुरु कर दिया। इन गतिविधियों ने इन मकबरों को तीर्थ-यात्रा का केन्द्र बना लिया। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (1141-1230) की अजमेर में स्थित दरगाह भारत में एक बड़ी ज़ियारतगाह है। अनेक महान मुस्लिम सूफियों जैसे दिल्ली के ख्वाजा बख्तियार काकी, पंजाब के बाबा फरीदुद्दीन गंज शकर, दिल्ली के निज़ामुद्दीन औलिया, गुलबर्गा के ख्वाजा बन्दा नवाज़ और हैदराबाद में यूसुफैन की महत्वपूर्ण कब्रें हैं जिन्होंने भारत में शान्ति और प्यार का प्रचार किया। उनके मकबरे दरगाह बन गये और बड़ी संख्या में श्रद्धालु उनकी ओर आकर्षित होते हैं। यहाँ पर सभी धर्मों के लोग आते हैं और आने वालों में अधिकतर, मुसमलानों की तुलना में ग़ैर-मुस्लिम अधिक होते हैं। यद्यपि इस्लाम की मुख्य धारा इन्हें मान्यता नहीं देती फिर भी इन्हें भारतीय उपमहाद्वीप में इस्लाम की एक सांस्कृतिक शाखा कहा जा सकता है क्योंकि इनके गुम्बदों और मीनारों के निर्माण में इस्लामी निर्माणकला का प्रयोग हुआ है। यहाँ पर कव्वालियाँ और मुशायरे आयोजित होते हैं।

कब्रों की पूजा को न केवल इस्लाम में मान्यता नहीं दी जाती और इसे हतोत्साहित ही नहीं किया जाता बल्कि इसकी निंदा की जाती है क्योंकि इसे अल्लाह का साझीदार बनाना समझा जाता है और यह शिर्क का एक रूप है। इस्लामी विचारधारा पूर्णतः एकेश्वरवादी है और इसमें कोई कमी-बेशी और बिगाड़ को स्वीकार नहीं किया जाता।

इस्लाम ईश्वरत्व और सूफ़ीपन के बीच सीमाओं को अच्छी तरह परिभाषित करता है। ये दोनों विशेषताएँ आपस में मेल नहीं खातीं। यहाँ तक कि पैग़म्बर भी इबादत के योग्य नहीं। पैग़म्बरों ने स्वयं घोषणा की कि वह मनुष्य से अधिक कुछ नहीं हैं और अन्य मनुष्यों की तरह वह भी दोषक्षम हैं। क़ुरआन की पहली सूरः, सूरः फ़ातिहा इस्लाम के अनुयायियों को दुआ करने का ढंग निम्नलिखित शब्दों में सिखाती हैः

''हम केवल तेरी ही उपासना करते हैं और हम केवल तुझ ही से सहायता माँगते हैं।'' (क़ुरआन, 1:4) इस प्रकार दोनों की सीमायें स्पष्ट हैं इनमें कोई सन्देह नहीं है।

दूसरे, इस्लामी सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति को सीधे अल्लाह के सम्पर्क में ला देता है। एक व्यक्ति सीधे अल्लाह के सामने दुआ करता है और उसे बीच में किसी मध्यस्थ की चाह नहीं होनी चाहिए। मनुष्य और अल्लाह के बीच कोई दलाल स्वीकार्य नहीं है। कब्रों की इबादत में मनुष्य और अल्लाह के बीच में दिवंगत सूफी को रख दिया जाता है। इस्लाम इस रीति को बिल्कुल पसंद नहीं करता। यदि कोई जीवित पैग़म्बर या सूफी मनुष्य की ओर से कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता तो एक मृतक सन्त किस प्रकार मनुष्य और अल्लाह के बीच में दखल दे सकता है। क़ुरआन कहता हैः ''तुम उन लोगों को नहीं सुना सकते जो लोग अपनी कब्रों में हैं।'' (क़ुरआन, 35:22)

यह भी एक कारण है कि दरगाहें पूजास्थल बनाने योग्य क्यों नहीं हैं। कुछ वर्ग मकबरों को कुछ पवित्रता प्रदान करते हैं। इससे इस्लाम के मौलिक सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

अल्लाह और पैग़म्बर की मूर्तियाँ क्यों नहीं

विभिन्न धर्मों के अधिकतर अनुयायी अपने धर्मस्थलों और अपने घर के पवित्र कोनों में अपने देवताओं और पवित्र हस्तियों के चित्र या मूर्तियाँ सजाते हैं। मस्जिदों और मुसलमानों के घरों में अल्लाह और पैग़म्बर के चित्र नहीं होते। लोगों के मन में यह प्रश्न उत्पन्न करता है कि इस्लाम क्यों मूर्तियों या चित्रों की अनुमति नहीं देता।

पैग़म्बर मुहम्मद (आप पर अल्लाह की दया और कृपा हो) मानवता के मार्गदर्शन के लिए अल्लाह की ओर से भेजे गए अन्तिम पैग़म्बर थे। आपने इस्लाम धर्म का उपदेश तीन मौलिक विश्वासों के आधार पर दिया: 1. एक मात्र सर्वोच्च स्वामी पर विश्वास 2. पैग़म्बरी (अल्लाह द्वारा भेजे गए आदम से लेकर अपने आप तक के सभी पैग़म्बरों पर विश्वास) और 3. क़ियामत में फैसले के दिन उत्तरदायित्व पर विश्वास।

आपने लोगों के समक्ष यह स्पष्ट कर दिया था कि आप अन्य लोगों की तरह एक मनुष्य के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं और अपने लिए, किसी दैवीय व्यवस्था के तत्व प्रदान करने के विरुद्ध सचेत भी किया। अतः इस्लाम, अल्लाह और उसके पैग़म्बर के बीच भेद करने में विशेष ध्यान देता है। पैग़म्बरों को कुछ धर्मों में अवतार का जो सिद्धान्त है, उससे मिलाना नहीं चाहिए। पैग़म्बर और अवतार दोनों अलग-अलग हैं। इसी तरह अल्लाह शाश्वत और सदैव रहने वाला है जबकि पैग़म्बर अन्य मनुष्यों की तरह नाशवान होते हैं और लोगों के मार्गदर्शन के लिए आसमानी सन्देश के वाहक होते हैं। इसीलिए पैग़म्बर मुहम्मद (आप पर अल्लाह की दया और कृपा हो) ने अपने आप को अल्लाह के स्थान तक उठाने से मना किया। क़ुरआन ने घोषणा की कि पैग़म्बर की मृत्यु हो जाएगी और अल्लाह सदैव जीवित रहेगा। अल्लाह कभी सोता नहीं और उसे कभी ऊँघ भी नहीं आती।

अतः इस्लाम ने अल्लाह को हर तरह की इबादत और उपासना का एक मात्र केन्द्र बना दिया। दैवीय धारणा में किसी ऐसी चीज़ को स्वीकार नहीं किया अथवा उसकी अनुमति नहीं दी गयी जो, आसमानी उपास्य की धारणा को कमज़ोर करती हो। इसी भावना को ध्यान में रखते हुए इस्लाम में उपास्य और पैग़म्बर के चित्र और मूर्तियाँ बनाने

को सख्ती से रोका गया। इससे पहले ऐसा हो चुका था कि मूर्तियों ने समाज को मूर्ति-पूजा की ओर ढकेल दिया था और वास्तविक उपास्य को भुला दिया गया था। जिस काबा को पैग़म्बर इब्राहीम (अलै0) ने लगभग 4000 वर्ष पहले अल्लाह की उपासना के लिए बनाया था, इसी मूर्ति-पूजा के कारण वह पतन का शिकार हुआ था। यह विभिन्न देवताओं का एक पंथ बन गया था, जिसमें प्रत्येक देवता को एक विशेष काम दे दिया गया था। इस्लाम ने अल्लाह के दैवत्व को बहाल किया और मूर्ति-पूजा को पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया।

इसी प्रकार पैग़म्बर की मूर्ति और चित्र बनाने को भी प्रतिबन्धित किया गया। मानव प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए यह डर था कि मनुष्य पवित्र व्यक्तियों को उपास्य के स्थान पर पहुँचा देता है। जिन लोगों ने पैग़म्बर को देखा था और उनसे मिले थे उनके अन्दर जल्द ही उनकी मूर्ति बनाने की लालसा पैदा होती, वह उनकी उपासना करना शुरु कर देते और अल्लाह को छोड़ देते।

पूरी दुनिया में मस्जिदों के अन्दर तस्वीरें और मूर्तियाँ नहीं पायी जातीं। ये पूर्णतः साफ और सुथरे स्थान हैं जहाँ श्रद्धा एक मात्र सर्वोच्च अल्लाह के लिए होती है और उसी की ओर ध्यान केन्द्रित करके नमाज़ें पढ़ी जाती हैं और दुआएँ की जाती हैं और सभी इच्छाएँ और उमंगे उसी से माँगी जाती हैं। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) भी देवता के रूप में बीच में नहीं आते। आप अल्लाह से अलग एक अस्तित्व दिखाई देते हैं। उनका स्थान मार्गदर्शक, आध्यात्मिक नेता, एक आदर्श मनुष्य एक सुधारक और शुभ सूचना देने वाले और चेतावनी देने वाले का है। वह न तो अल्लाह के साझीदार हैं और न ही उसके अवतार हैं। उनकी मूर्ति नहीं बनायी जा सकती और न ही उनकी छवि को प्रतिमा, कलाकृति और चित्र अथवा तस्वीर में बदला जा सकता है। चित्र के बारे में इस्लाम के इसी दृष्टिकोण के कारण अल्लाह या पैग़म्बर की मूर्ति के रूप में प्रतिनिधित्व करने का प्रश्न ही नहीं उठता और इनका कार्टून बनाना और आकृति बनाना उनके प्रति अनादर और द्वेष का तत्व रखता है।

अक्सर पैग़म्बर के वीडियो चित्र भी विरोध प्रदर्शन की आँधी उठा देते हैं। पिछले दिनों उस समय बड़े पैमाने पर प्रदर्शन हुए जब पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) को कार्टून के रूप में दिखाने के लिए डच कार्टूनिस्ट ने कार्टून बनाया और इसे डच अखबार जीलैण्ड पोस्टेन ने प्रकाशित किया। मुसलमान इन कृत्यों को जान-बूझकर उकसाने वाले कृत्य के रूप में देखते हैं और मुसलमान चाहते हैं कि इन कृत्यों को उसी प्रकार ब्लैसफ़ेमी क़ानून के अन्तर्गत लाया जाए, जिस प्रकार पश्चिमी देशों में पवित्र हस्तियों,

जैसे ईसा मसीह के प्रति अनादर प्रदर्शित करना प्रतिबन्धित है। पश्चिमी देशों ने इस तरह के मामलों में दोहरी नीति अपना रखी है। पश्चिमी देशों में ऐसे अनेक ड्रामे प्रतिबन्धित हैं जिनमें ईसा मसीह का मजाक उड़ाया गया है। इसे विचार स्वतन्त्रता पर किसी प्रतिबन्ध के रूप में नहीं देखा जाता। पवित्र हस्तियों और धर्म के पवित्र प्रतीकों का सम्मान किया जाना चाहिए।

विचार स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं है और न होना चाहिए कि किसी का अपमान करने की स्वतन्त्रता हो। वास्तव में विचार स्वतन्त्रता अश्लीलता, मर्यादाहीनता, मिथ्यारोपण और विद्रोह का अधिकार नहीं देती। सभी देशों ने व्यक्ति की प्रतिष्ठा और निजीत्व के सम्मान के लिए क़ानून बनाए हैं। किसी डच कार्टूनिस्ट को पवित्र पैग़म्बर के अपमानजनक कार्टून बनाने की अनुमति कैसे दी जा सकती है?

मुस्लिम जगत में कोई भी व्यक्ति किसी भी पैग़म्बर की तस्वीर नहीं बना सकता। हास्यास्पद तस्वीर बनाना तो दूर की बात है। इस्लाम हज़रत मरियम, जो ईसा मसीह की पवित्र माँ थी, उनको अत्यन्त सम्मान प्रदान करता है हालाँकि वह बिना बाप के पैदा हुए थे। पवित्र क़ुरआन अपने अनुयायियों को अन्य धर्मों के उपास्यों, देवताओं और धर्म के प्रति अपमान प्रकट करने, बुरा-भला कहने और निन्दा करने से रोकता है क्योंकि इसके बदले में वह भी अल्लाह को बुरा-भला कह सकते हैं और परिस्थितियाँ पहले से विकट हो सकती हैं।

क्या पैग़म्बर मुहम्मद(सल्ल0) ने इस्लाम को तलवार से फैलाया

प्रत्येक पैग़म्बर का अपना एक अलग दृष्टिकोण और अलग कार्यवधि होती थी; प्रत्येक पैग़म्बर अलग-अलग समय में आये और उन्होंने भिन्न-भिन्न क़ौमों के बीच काम किया। एक पैग़म्बर की तुलना दूसरे से करना निरर्थक है और वास्तव में क़ुरआन विशेष रूप से इस तुलना से रोकता है। यह सत्य है कि पैग़म्बर ईसा (अलै0) ने कोई युद्ध नहीं किया, परन्तु उन्हें युद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। किन्तु जैसा कि हमने देखा, पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) को अपने आप को बचाने के लिए युद्ध करना पड़ा।

जब मुहम्मद (सल्ल0) को पैग़म्बरी के दायित्व पर प्रतिष्ठित किया गया तो आपने लोगों को शान्ति के मार्ग की ओर आमन्त्रित किया, परन्तु मक्का के क़ुरैश सरदारों ने आपका विरोध किया, आपको बुरा-भला कहा और वर्षों तक आपको और आपके साथियों को दमन का निशाना बनाया, उनकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया और उन्हें मक्का से बाहर निकाल दिया। उन्होंने मुसलमानों का पीछा उस समय भी किया जब वह प्रवास करके मदीना चले गये थे और उन्होंने मदीना के लोगों से आग्रह किया कि वह उनके शत्रु मुहम्मद (सल्ल0) को अपने शहर से निकाल दें अथवा उन्हें पूर्णतः मिटा दें। जब मदीना वालों ने उनकी माँगों को नहीं माना तो मदीना के लोगों को गम्भीर परिणामों की चेतावनी दी गयी। मक्का के सरदार ने एक कपटाचारी मुसलमान अब्दुल्लाह बिन उबई को यह सन्देश भेजा कि उसने उनके अपराधी को शरण दे रखी है उसे हमारे अपराधी की हत्या कर देनी चाहिए अन्यथा हम मक्का के लोग मदीना पर आक्रमण करेंगे और मुहम्मद (सल्ल0) के साथ-साथ उन्हें भी नष्ट कर देंगे। जब मुहम्मद (सल्ल0) के सामने मृत्यु अथवा संगठित संघर्ष के माध्यम से अपनी आस्था की रक्षा करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा तो मुहम्मद (सल्ल0) ने संघर्ष का चुनाव किया।

इस प्रकार युद्ध उनके शत्रुओं द्वारा थोप दिये गये थे, जबकि आपकी युद्ध करने की नीयत नहीं थी। अतः आपके युद्धों को व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह युद्ध धार्मिक युद्ध थे क्योंकि वह उनका धर्म इस्लाम ही था, जिस पर निरन्तर आक्रमण हो रहे थे।

सैनिक आक्रमण की चुनौती को पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) जैसे ज़िम्मेदार नायक हल्के से नहीं ले सकते थे जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक आदर्श स्थापित करना था और आपको आने वाली नस्लों के शासकों और सेनापतियों के लिए अपने पीछे एक आदर्श छोड़ना था। पैग़म्बर (सल्ल0) ने अल्लाह के इशारे पर युद्ध के नियमों को स्थापित करने का प्रयास किया जिससे युद्ध को जितना संभव हो सके मानवीय रूप दिया जा सके, शान्ति को प्रोत्साहित किया जाये और मानव जीवन के विनाश को कम से कम किया जा सके।

इस्लाम के दुश्मन और पूर्वाग्रह रखने वाले लोग पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) को इस प्रकार चित्रित करते हैं कि 'उन्होंने इस्लाम को तलवार के द्वारा फैलाया', मानो, युद्ध लड़ना उनका मुख्य व्यवसाय रहा हो। लेकिन वास्तविकता यह है कि मदीना में आपके दस वर्ष के जीवनकाल में केवल 95 दिन युद्ध अभियानों में खर्च हुए। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने अधिकतर युद्ध एक दिन से कम समय में जीते। शेष दस वर्ष अर्थात 3555 दिनों को आपने लोगों के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने और अधर्मी समाज का सुधार करने में व्यतीत किए और पूरे अरब प्रायद्वीप में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना की। बुराई और दमन की हुकूमत को समाप्त कर दिया गया और इसकी जगह पर सबके लिए भलाई, नेकी शान्ति और न्याय की स्थापना की गयी।

पैग़म्बर द्वारा लड़े हुए सभी युद्धों में दोनों पक्षों की ओर से जो लोग हताहत हुए उनकी कुल संख्या 1014 से अधिक नहीं थी। इन युद्धों में आपके कुल 255 व्यक्ति मारे गये जबकि शत्रु सेनाओं में से 759 व्यक्ति मारे गये। जिन लोगों ने इन युद्धों में भाग लिया उनकी तुलना में मरने वालों की संख्या 1.5 प्रतिशत थी। इन आँकड़ों की तुलना अन्य क्रान्तियों से कीजिए जो युद्ध द्वारा लाई गयीं थीं। जो विश्वयुद्ध वर्षों तक चलते रहे उनमें लाखों निर्दोष लोग मारे गए। इन क्रान्तियों में जान-हानि की सीमा बहुत अधिक थी। उदाहरण के लिए केवल द्वितीय विश्व युद्ध में ही जिन लोगों ने युद्ध में भाग लिया उनकी तुलना में युद्ध में मारे जाने वालों की संख्या 517 प्रतिशत थी। अर्थात एक करोड़ छः लाख लोगों ने युद्ध में भाग लिया था जबकि मारे जाने वाले लोगों की संख्या इससे कहीं अधिक 5 करोड़ 48 लाख थी।

जब हम युद्धों, हिंसा और पश्चिम के अपने इतिहास पर विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि पश्चिमी शोधकर्त्ता पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) पर आलोचना करने की स्थिति में कम ही दिखाई देते हैं। लेकिन इससे अधिक प्रासंगिक प्रश्न पूछा जा सकता हैः देशकाल की परिस्थितियों को देखते हुए क्या यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) का मिशन युद्धों के बिना पूरा हो सकता था? अपने मिशन

के प्रारम्भिक भाग में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने निश्चित रूप से जहाँ तक संभव हुआ टकराव से परहेज़ किया। उनका समुदाय इसके अतिरिक्त और किसी विकल्प की न तो क्षमता रखता था, न उसके पास उसके लिए संसाधन थे। स्पष्ट रूप से पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने हिजरत (मक्का से मदीना प्रवास) के बाद सैनिक विकल्प को अपनाया गया।

इस्लाम से पहले का अरब समाज एक ऐसा समाज था जो युद्ध की संस्कृति में गहराई तक रचा बसा था, जहाँ हमला, लूट और अपने दुश्मन का विनाश सामान्य सामाजिक रोग थे। अपनी जान बचाने के लिए मुसलमानों को रक्षात्मक युद्ध करना पड़ा। क़ुरआन में एक महत्वपूर्ण चेतावनी यह है जिसमें एक स्पष्ट नैतिक शिक्षा दी गयी है, न्यायपूर्ण युद्ध की एक ऐसी शिक्षा जो युद्ध के नियमों के सिलसिले में जेनेवा कन्वेंशन में सम्मिलित है। ये शिक्षाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि युद्धों को अपनी प्रकृति में रक्षात्मक होना चाहिए; नागरिकों, महिलाओं बच्चों और बूढ़ों पर हमला नहीं करना चाहिए; उपासना स्थल चाहे वह चर्च, साईनागाग, मन्दिर या मस्जिद किसी भी तरह के हों, उन्हें नष्ट नहीं किया जाना चाहिए; और जानवरों, जल-स्रोतों और फसलों को नष्ट नहीं करना चाहिए। बल्कि इससे बढ़कर यदि दुश्मन शान्ति का प्रस्ताव करे तो इस प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लेना चाहिए। यही कारण है कि अन्य धर्मों और संस्कृतियों से सम्बन्ध ा रखने वाले लोगों के साथ मिलकर शान्ति और सहनशीलता से रहने में मुसलमानों का व्यवहार अन्य समुदायों से बेहतर रहा है।

क्या इस्लाम ताक़त से फैला?

इसका दो टूक और ज़ोरदार उत्तर है 'नहीं' ।

क़ुरआन घोषणा करता हैः

> "धर्म के विषय में कोई ज़बरदस्ती नहीं। सही बात नासमझी की बात से अलग होकर स्पष्ट हो गई है।" (क़ुरआन, 2:256)

एक कल्पित कथन पूरी दुनिया में प्रचलित हो गया है जो इस्लाम के प्रसार को तलवार से जोड़ता है। राजनीति से प्रेरित इस दुष्प्रचार को इतिहास की पाठ्य पुस्तकें और मीडिया प्रमाणित करती हैं। भारत में दक्षिणपंक्षी तत्वों के लिए यह राजनीतिक आवश्यकता बन गया है क्योंकि वे साम्प्रदायिक आधार पर वोटों का धुव्रीकरण करना चाहते हैं। अतः घृणा की राजनीति को चारे की आवश्यकता होती है जिसे इतिहास से खँगाल कर निकाला जाता है।

ऐसा करने में ये लोग केवल ब्रिटिश उपनिवेशवादी इतिहासकारों के पदचिन्हों का अनुकरण कर रहे हैं। इन्होंने एक ऐसे देश में *"बाँटो और राज करो"* के सिद्धान्त को लागू किया था जिसकी विविधता हैरान करने वाली थी। यह एक वास्तविकता है कि मुसलमानों ने भारत पर लगभग 650 वर्ष शासन किया। अतः उनके पास इस बात की क्षमता थी कि वह भारत के प्रत्येक ग़ैर मुस्लिम नागरिक को धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर कर सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और इस तरह 80 प्रतिशत भारतीय आबादी हिन्दू बनी रही। यही तथ्य इस झूठ को निरस्त करने के लिए पर्याप्त है कि इस्लाम तलवार की नोक से फैला।

समसामयिक संसार और मुस्लिम बहुल राष्ट्रों की स्थिति पर सरसरी दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि कुल 7 बिलियन आबादी में से लगभग 1.6 बिलियन लोग इस्लाम धर्म को मानते हैं। इस्लाम धर्म के इन अनुयायियों में से मात्र 22 प्रतिशत अरब हैं। जिस देश में सबसे बड़ी मुस्लिम आबादी है वह इस्लाम के अरब केन्द्र से पूरी पृथ्वी की गोलाई की आधी दूरी पर स्थित है जिसका नाम इण्डोनेशिया है। दक्षिण एशियाई देशों में लगभग 400 मिलियन मुसलमान हैं। जिनमें से 150 मिलियन

मुसलमान भारत में रहते हैं। बँग्लादेश जैसे देश में जो हिन्दू परम्परा में रची बसी संस्कृति रखता है, 120 मिलियन मुसलमान रहते हैं।

मुसलमानों की कुल आबादी का 30 प्रतिशत मुसलमान दुनिया के बड़े लोकतन्त्रों में रहते हैं जैसे भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, यूरोपीय देशों और रूस में। अफ्रीकी देशों की एक बड़ी संख्या ऐसी है जहाँ मुसलमानों की आबादी है और वहाँ कभी मुस्लिम शासन नहीं रहा। इसी तरह कुछ देश जैसे स्पेन और फिलीपीन्स जहाँ मुसलमानों ने अतीत में शासन किया था, वहाँ आज उल्लेखनीय मुस्लिम आबादी नहीं है। इससे भी ज्यादा रुचिकर बात यह है कि पश्चिम के अनेक विकसित लोकतन्त्र जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन स्केन्डीनेवियन राष्ट्र और फ्राँस और जर्मनी में इस्लाम सबसे अधिक रफ्तार से बढ़ने वाला धर्म है। यद्यपि इससे कुछ मुसलमानों के हृदय खुश हो सकते हैं परन्तु इस्लाम के प्रति घृणा के लिए यन्त्र के रूप में इसकी ताक़त को कम नहीं समझना चाहिए।

इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि इण्डोनेशिया और मलेशिया जैसे क्षेत्रों में इस्लामी सेनाएँ कभी प्रवेश नहीं हुईं। इस्लाम वहाँ समुद्री रास्तों से पहुँचा। इसने वहाँ की स्थानीय सभ्यता और परम्पराओं में अपने लिए जगह बनाई और जनता के दिलों में अपने आप को बैठा लिया। इसने वहाँ की सांस्कृतिक परम्पराओं, पहनावा, भोजन और भाषा को परिवर्तित नहीं किया। इसके बजाए यहाँ एक सारगर्भित सांस्कृतिक एकता पैदा हुई जिसने इस्लाम का एक नया रूप प्रस्तुत किया जिसने पश्चिम एशिया के सिद्धान्तों और दक्षिण पूर्व एशिया के आचरणों और परम्पराओं का मिश्रण तैयार किया।

इस्लामी इतिहास इस बात का गवाह है कि ऐसे अधिकतर क्षेत्र जहाँ इस्लाम विजय के द्वारा पहुँचा। वहाँ की आबादियाँ इस्लाम की ओर झुक गयीं और वह आज भी उसी तरह इस्लाम को अपनाए हुए हैं। इस्लाम ने केवल उनकी भूमि पर ही विजय नहीं प्राप्त की, परन्तु इसने लोगों के दिलों पर भी विजय प्राप्त की। जो लोग अपने ग़ैर इस्लामी विश्वासों पर क़ायम रहना चाहते थे, इस्लाम ने उनके लिए धार्मिक स्वतन्त्रता सुनिश्चित की । जैसे मिस्र के किब्ती ईसाई और लेबनान के मेरोनाईट ईसाई। इसने विरासत के लिए महत्वपूर्ण और विरासत के हित में आने वाली सांस्कृतिक सम्पत्ति को नष्ट नहीं किया। स्फिंक्स, अबू सिम्बल के फ़िरऔनी मन्दिर और पिरामिड आज भी इतिहास की धरोहर के रूप में खड़े हैं। यह भी एक वास्तविकता है कि अफ़ग़ानिस्तान के बामियान में स्थित बुद्ध के स्तूपों (जिन्हें रुढ़िवादी तालिबानों द्वारा नष्ट कर दिया गया) को महमूद ग़जनवी ने भी नहीं छेड़ा था, जिसे मूर्ति भंजक के रूप में प्रचारित किया जाता है। ये तथ्य ग़ैर इस्लामी धरोहर के प्रति मुसलमानों के सम्मान की पुष्टि करते हैं। ईरान में स्थित

परसीपोलिस आज भी सुरक्षित है। इण्डोनेशिया के बारबुदर और बॉली में स्थित हिन्दू मन्दिर लगातार सैलानियों को आकर्षित कर रहे हैं। मुख्य रूप से पूर्व राजाओं के दमनकारी शासन ने ही इस्लाम को मुक्ति प्रदान करने वाली ताक़त बना दिया।

अब भारतीय उपमहाद्वीप पर विचार कीजिए जो ऐसा क्षेत्र है जिसकी उत्तर पश्चिमी सीमाएँ अरब आबादी वाले मध्य एशिया के क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं। यह सही है कि इस्लाम यहाँ आरम्भ में सिन्ध नदी के क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने वाली सेनाओं के माध्यम से आया। लेकिन केरल पर विचार कीजिए जहाँ इस्लाम प्रारम्भ में ही लगभग पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के जीवनकाल में ही आ गया था। भारतीय प्रायद्वीप के समुद्री तटों पर मुस्लिम क़ौमें 11वीं से 13वीं शताब्दी के दौरान आती रहीं। यह वही कालखण्ड है जब इब्ने बतूता ने भारत के इन क्षेत्रों का भ्रमण किया। दिल्ली के मुग़ल शासक भी इन मुसलमानों की मौजूदगी से भिज्ञ नहीं थे और उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन्होंने पुर्तगालियों को यह अधिकार दे दिया था कि वह समुद्री लुटेरों (मुसलमानों) से अपनी शर्तों के मुताबिक निपटें। केरल में जहाँ इस्लाम अरब सौदागरों के माध्यम से आया, वहाँ त्रावणकोर के राजाओं ने मुसलमानों की सहायता की, जो समुद्री व्यापार के लिए महामानव समझे जाते थे, जो भारत की जनता के परम्परागत विश्वास के अनुसार प्रतिबन्धित था। चूँकि इस साम्राज्य की सम्पन्नता समुद्री व्यापार पर आधारित थी इस लिए उन्होंने मल्लाहों को अनुमति दी। यहाँ तक कि उनकी सहायता की, उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया ताकि वहाँ के नागरिकों में से मल्लाहों की एक विशेषज्ञ टीम अस्तित्व में आ सके। उनको यह भी आदेश दिया गया कि सभी मल्लाह परिवारों में से कम से कम एक बेटे का पालन-पोषण मुसलमान के रूप में किया जाए। इस तरह जब इब्ने बतूता भारत आया और यहाँ से मालद्वीप की ओर गया तो उसने आठवीं शताब्दी में मालाबार के तटीय क्षेत्र में बहुत सी मुस्लिम कॉलोनियों को देखा था।

उत्तर भारत में भी जहाँ जनता की बड़ी आबादी इस्लाम के प्रभाव में आयी वहाँ बलात् धर्म परिवर्तन नहीं हुए। मुहम्मद बिन कासिम, जिसने सिन्ध पर विजय प्राप्त की थी, उससे सिन्ध के लोग प्यार करते थे। क्रूर राजा दाहिर के शासन में जो लोग जीवन व्यतीत कर चुके थे उन्होंने मुहम्मद बिन कासिम का स्वागत किया। जब मुहम्मद बिन कासिम को खलीफा सुलेमान बिन मरवान के आदेश पर मुआविया इब्ने मुहल्लव के साथ क़ैदी के रूप में दमिश्क भेजा गया तो सिन्ध के लोग मुहम्मद बिन कासिम के लिए रोए और उन्होने कीरज नामक स्थान पर उसकी मूर्ति रखकर उसकी यादगार सुरक्षित किया। (देखिए विलियम जैक्शन ए.वी., हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, खण्ड 5, ग्रोलिए सोसायटी, लन्दन, बडौदा संस्करण, 1907, पृ0 14) मुहम्मद बिन कासिम ने उन जाटों और मेदियों

को अपनी सेना में भर्ती किया जो राजा दाहिर के कुशासन से परेशान थे। जाटों और मेदियों ने एक विदेशी सेना में भर्ती होना पसन्द किया। दाहिर के शासनकाल में उनके साथ दुर्व्यवहार और उनका अपमान किया जाता था। उन्हें पगड़ी और अच्छे परिधान पहनकर घोड़ों पर सवार होने से रोका जाता था। उनको लकड़ी काटने वाला और पानी ढोने वाला बनाकर रख दिया गया था। *(देखिए प्रो0 ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ मेडिवल इण्डिया, पृ0 55-56)*

इस्लाम उन क्षेत्रों में तेज़ी से फैला जहाँ बौद्ध धर्म का प्रभुत्व था, हालाँकि वहाँ बौद्ध धर्म कमज़ोर होता जा रहा था। सिन्ध में भी अधिकतर लोग बौद्ध थे और वह ब्राह्मण राजा से बहुत अधिक पीड़ित थे। इसी तरह बंगाल, उत्तर पश्चिम सीमावर्त्ती राज्य और पंजाब बौद्ध बहुल क्षेत्र थे जो ब्राह्मण धर्म के उत्पीड़न का सामना कर रहे थे। बौद्ध धर्म भारत से रहस्यपूर्वक लुप्त नहीं हुआ बल्कि दमन और उत्पीड़न के सामने बौद्धों ने या तो देश छोड़ दिया अथवा जैसे ही उन्हें अवसर मिला उन्होंने इस्लाम के दामन में शरण ले ली। जब उमैय्या वंश के उमर बिन अब्दुल अजीज ख़लीफा बने तो उन्होंने सिन्ध के राजकुमारों और राजकुमारियों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने का निमन्त्रण देते हुए पत्र लिखा। राजा दाहिर के बेटे जयशिया ने इस्लाम की प्रकृति और उसके सिद्धान्तों के बारे में सुन रखा था अतः उसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। (देखिएः विलियम जैक्सन, ए.वी. भारत का इतिहास, खण्ड 5, ग्रोलिए सोसायटी, लन्दन, बड़ौदा संस्करण, 1907, पृ0 15)

दिल्ली के मुस्लिम सुल्तानों द्वारा हिन्दुओं के बलात् धर्म परिवर्तन कराने के आरोप के विपरीत अलाउद्दीन खिलजी ने धर्म परिवर्तन करके मुसलमान होने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उसने ऐसा इसलिए नहीं किया कि वह बहुत धर्म-निरपेक्ष शासक था। उसने देखा कि बनिया जाति के अधिकतर लोगों द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार करने के कारण जिज़िया के माध्यम से प्राप्त होने वाला राजस्व कम होने लगा है।

अकबर जैसे सम्राटों ने लोगों को इस्लाम धर्म में लाने की बजाए दमनकारी क़ानूनों को निरस्त करके हिन्दुओं में व्याप्त कुरीतियों को सुधारने का प्रयास किया। उसने अनेक सुधार किए जिन्हें हिन्दू रीतियों में हस्तक्षेप समझा जा सकता है। जिस चीज़ को वह अपनी मानवीय भावनाओं के लिए हानिकारक समझता था उसे उसने बदलने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए उसने बाल-विवाह, अग्नि परीक्षा, पशु बलि पर प्रतिबन्ध लगाया। उसने विधवाओं के पुनर्विवाह की अनुमति दी और सती प्रथा को ऐच्छिक बनाया। उसने सती प्रथा पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया क्योंकि वह समझता था कि इस पर प्रतिबन्ध लगाने से बड़े पैमाने पर विरोध होगा। उसने विवाह में दुल्हा और दुल्हन की

मर्ज़ी मालूम करना अनिवार्य कर दिया। (देखिएः विलियम जैक्सन, ए.वी. भारत का इतिहास, खण्ड 4, ग्रोलिए सोसायटी, लन्दन, बडौदा संस्करण, 1907, पृ0 15, 18)

सत्ता नियन्त्रण की कला शासकों को प्रजा का चहेता नहीं बनाती। इसलिए कोई भी मुस्लिम सम्राट इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए किसी का दिल नहीं जीत सकता था। अधिकतर लोग सूफियों और सन्तों द्वारा आकर्षित होते थे, जिनके लंगर और मज़ारें मरीज़ों को शरण देती थीं और वह ग़रीबों, वंचितों और बेसहारा लोगों का सहारा थीं। इन दरगाहों जैसे अजमेर, महरौली और बस्ती निज़ामुद्दीन ने बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं का प्रेम और सम्मान अर्जित किया। सन्त लोग सामान्य जीवन व्यतीत करते और ग़रीबों को इस तरह खिलाते कि भण्डार में सायं तक दूसरे दिन के लिए कुछ नहीं बचता और मरीज़ों के ईलाज के लिए हकीमों की नियुक्ति करते जो निःशुल्क ईलाज करते। ऐतिहासिक दस्तावेज़ बताते हैं कि सल्तनत के विरोधियों द्वारा दिल्ली की सत्ता से शासकों को हज़रत निजामुद्दीन औलिया के ज़माने में अनेक बार हटाया गया परन्तु किसी ने उनकी ख़ानकाह पर हाथ नहीं लगाया।

भारतीय संघ के अन्तर्गत शासित मुस्लिम बहुल राज्य जम्मू और कश्मीर मध्य एशिया के सूफियों द्वारा इस्लाम धर्म में लाया गया और सदियों तक वहाँ हिन्दू राजा राज करते रहे।

निज़ाम द्वारा शासित राज्य हैदराबाद का जब भारतीय संघ में विलय हुआ तो वहाँ मुसलमानों की आबादी केवल 12 प्रतिशत थी। हालाँकि उस समय तक मुसलमान वहाँ लगभग 4 सदियों तक शासन कर चुके थे।

जालन्धर में हिन्दू जाटों का एक समुदाय रहता है जिन्हें सुल्तानी जाट के नाम से जाना जाता है। उनको सुल्तानी जाट इसलिए कहा जाता है कि वे एक सूफी 'सुल्तान सखी सरवर' के श्रद्धालु हैं। जिनकी दरगाह शाहकोट में है, जो अब पाकिस्तान में है। वे आज भी केवल हलाल माँस खाते हैं। वे अधिकतर खेतिहर मज़दूर हैं। वे केवल हुक्का पीते हैं। वे अपने गाँव के बाहर सुल्तान ज़ियारत स्थापित करते हैं जिसकी वह प्रत्येक वृस्पतिवार सफाई करते हैं और वहाँ चिराग़ जलाते हैं। वे शाहकोट स्थित सुल्तान सखी सरवर की दरगाह पर जत्था ले जाया करते हैं।

सिक्खों के राज में मुल्तान के गवर्नर सावनमल ने इस जत्थे को रोकने का प्रयास किया। उसने प्रत्येक उस हिन्दू पर सौ रुपये का आर्थिक दण्ड लगाया जो सुल्तानी जत्थे में जाता। परन्तु वह 19वीं शताब्दी तक जाते रहे, जिस ज़माने में लुधियाना और जालन्धर के गज़टीयर संग्रह होना आरम्भ हुए थे। यह सब तो भारत के बारे में है।

कीनिया, तंजानिया और मेडागास्कर जैसे राज्य जहाँ मुस्लिम सेनाओं ने कभी आक्रमण नहीं किया। इसके बावजूद वहाँ बड़ी संख्या में मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग बसे हुए हैं।

1. तंजानिया के 70 प्रतिशत लोग मुसलमान हैं परन्तु वहाँ पर सदैव ईसाइयों का शासन रहा है।

2. इस्लाम ने यूरोप के दिल में भी गहरे रास्ते बनाए। पूर्वी यूरोप के बलकान राज्यों पर तुर्की के उस्मानी शासकों का राज 5 सदी से अधिक तक रहा है परन्तु अल्बानिया और बोस्निया और हर्जीगोबिना के लोगों के सिवाय वह कभी मुसलमान नहीं हुए, अल्बानिया में 90 प्रतिशत मुसलमान थे जबकि बोस्निया और हर्जीगोविना यूगोस्लावियाई संघ के अन्तर्गत अभी पिछले दिनों तक मुस्लिम बहुल राज्य थे। अब बोस्निया उससे अलग होकर एक अलग स्वतन्त्र देश बन गया है।

3. इसके विपरीत स्पेन जिसपर मुसलमान 8 सदी तक (712-1492 ई0) शासन कर चुके थे। वहाँ मुसलमान बहुसंख्यक नहीं रहे। उनके शासनकाल में ईसाइयों और यहूदियों को अपने-अपने धर्मों पर अमल करने की पूरी छूट प्राप्त थी और अब तक मौजूद ऐतिहासिक तथ्य इसकी पुष्टि करते हैं। 1480 में स्पेन ने एक ट्रिब्यून्ल के द्वारा इन्क्वीज़ीशन अभियान में, जो लोग ईसाई बनने के लिए तैयार न होते, उन्हें देश छोड़ने के लिए कहा जाता या उन्हें देश से निकाल दिया जाता। इस तरह वहाँ बसने वाले मुसलमानों और यहूदियों को ताक़त के बल पर ईसाई बना लिया गया।

इसी तरह अरब भूमि पर पर्याप्त संख्या में ईसाई सम्प्रदायों की मौजूदगी यह संकेत करती है कि इस्लाम लोगों पर थोपा नहीं गया था।

4. मिस्र में 10 प्रतिशत किब्ती ईसाई हैं।

5. इण्डोनेशिया ऐसा देश है जहाँ संसार में सबसे अधिक मुसलमान रहते हैं,बाली इण्डोनेशिया का हिन्दू बहुल द्वीप है और इण्डोनेशियाई भूमि पर हिन्दू मंदिर बड़ी संख्या में फैले हुए हैं।

6. मलेशिया की बहुसंख्यक आबादी भी मुसलमान है। लेकिन वहाँ कोई मुस्लिम सेना नहीं गयी। वहाँ इस्लाम युद्ध के द्वारा नहीं फैला बल्कि वहाँ यह अपने नैतिक संदेश के कारण फैला। मलेशिया के 45 प्रतिशत लोग मलय नहीं हैं और उनकी भूमिका व्यापार शिक्षा और प्रशासन में इतनी महत्वपूर्ण है कि वहाँ भूमि पुत्रों के लिए आरक्षण दिया गया है।

7. लेबनान जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक हैं, क़ानून के अनुसार सदैव वहाँ का राष्ट्रपति एक मेनोराइट ईसाई होता है। प्रधानमन्त्री मुसलमान होता है। संसद का अध्यक्ष शीया

होता है और अन्य पद देश के बहुनस्लीय क़ौमों को उनकी संख्या के आधार पर दिए जाते हैं।

8. ईसाइयों के पुरातन सम्प्रदाय आज भी सीरिया, जार्डन और इराक में मौजूद हैं।

9. टॅयूनीशिया और ईरान में यहूदी आबाद हैं। टॅयूनीशिया में वह व्यापार और उद्योगों में प्रभावी भूमिका निभाते हैं।

10. बाँग्ला देश की 12 प्रतिशत आबादी हिन्दू धर्म को मानती है और यह लोग कला, साहित्य, मीडिया और बंगाली सिनेमा में प्रभावी भूमिका रखते हैं। इस देश की राजधानी ढाका का नाम ढाकेश्वरी मन्दिर के नाम पर पड़ा है परन्तु इस राजधानी के इस्लामीकरण का कोई प्रयास नहीं किया गया। बाँग्ला देश आज भी अनेक ऐसी हिन्दू रीतियों का पालन करता है जो इस्लामी सिद्धान्तों से नहीं टकरातीं। औरतें बिन्दी और सिंदूर का प्रयोग करती हैं और साड़ी उनके परिधान का महत्वपूर्ण अंग है। बाँग्ला अत्यन्त संस्कृत बहुल भाषा है। बाँग्ला देश के लोग बंगाली नववर्ष का दिन पहली वैशाख को मनाते हैं जो भारतीय उपमहाद्वीप के परम्परागत फसल कटने के मौसम से मेल खाता है। इस्लाम ने अपने लोगों को एक जैसा परिधान नहीं पहनाया। इस्लाम सांस्कृतिक बहुलता को सहन करता है।

11. यह उल्लेख करना भी रुचिकर होगा कि जब मंगोलों ने इस्लामी साम्राज्य के एक बड़े भाग पर विजय प्राप्त कर ली तो उन्होंने इस्लाम धर्म को नष्ट करने के बजाए उसे अपना लिया। यह इतिहास की एक विचित्र घटना है कि विजेताओं ने पराजित लोगों का धर्म स्वीकार कर लिया। चूँकि वह विजेता थे अतः यह स्पष्ट है कि उन्हें मुसलमान करने के लिए मजबूर नहीं किया गया होगा। पूरी दुनिया में जीवित बचने वाले 1.7 बिलियन से अधिक मुसलमानों से पूछिए कि क्या उन्हें मजबूर किया गया था। दुनिया का सबसे बड़ा मुस्लिम देश आज इण्डोनेशिया है- और वहाँ कभी कोई युद्ध नहीं लड़ा गया। तो तलवार कहाँ थी? कोई किसी को किस तरह आध्यात्मिक रूप से इनाम देने वाले और कुछ करने की माँग करने वाले इस्लाम जैसे धर्म पर चलने के लिए मजबूर कर सकता था?

इतिहास के इन मिले--जुले सूत्रों ने सर टॉमस अर्नाल्ड की कलम से यह लिखवाया कि 'इस्लाम उस जादुई व्यक्तित्व द्वारा नहीं फैला जिसके बारे में समझा जाता है कि एक मुस्लिम योद्धा के एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में क़ुरआन होता है, बल्कि यह क़ुरआन की शिक्षाओं की ताक़त और पैग़म्बर के चरित्र द्वारा फैला। (देखिए 'प्रीचिंग ऑफ इस्लाम)

पश्चिमी देशों के लोगों में इस्लाम का आकर्षण स्पष्ट रूप से बढ़ रहा है। हज़ारों लोगों ने इस धर्म का व्यक्तिगत अध्ययन करके 11 सितम्बर की घटना के बाद इस्लाम धर्म स्वीकार किया। सर्वेक्षणों से पता चला है कि इस्लाम में इन नये आने वालों में 70 प्रतिशत महिलाएँ हैं। इन तथ्यों से प्रभावकारी ढंग से यह मिथक रद्द् हो जाना चाहिए कि ताक़त इस्लाम के प्रसार का अभिन्न अंग था। यदि ऐसा होता तो इसकी उल्टी प्रवृत्ति भी आज होती क्योंकि आज इस्लाम धर्म की छवि को महिला विरोधी और हिंसात्मक बताया जा रहा है। अब समय आ चुका है कि इस्लाम की आलोचना करने वाले इस्लाम को अनुचित ढंग से प्रस्तुत करने की अपनी ग़लती को समझें, और सन्देह करने वाले इस्लाम विरोधी ताक़तों द्वारा भटकाये जाने या मार्गदर्शन किये जाने से बचते हैं।

पर्सनल लॉ

कुछ वर्ग मुस्लिम पर्सनल लॉ को मुसलमानों के लिए विशेषाधिकार के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं। परन्तु वह इस बात की अनदेखी करते हैं कि इस प्रकार के विशेषाधिकार सभी सम्प्रदायों के लिए हैं। हिन्दू और हिन्दू धर्म के अन्दर विभिन्न समुदायों के अपने अलग-अलग पारिवारिक क़ानून हैं जिनको किसी न किसी स्तर पर क़ानूनी मान्यता प्राप्त हैं। सम्पत्ति के विलगाव और कर से बचाने के लिए हिन्दू संयुक्त-परिवार कानून को मान्यता प्राप्त है। पूर्वोत्तर राज्यों की अनेक जनजातियों को अपने पारिवारिक मामलों के संचालन के लिए अपने परम्परागत क़ानूनों के तहत मान्यता प्राप्त है। गोवा पुर्तगाली क़ानून का पालन करता है। दक्षिणी राज्यों के हिन्दू ऐसे पारिवारिक क़ानूनों का पालन करते हैं जो उत्तरी राज्यों में जारी पारिवारिक क़ानूनों से पूर्णतः भिन्न हैं। हाँ, सभी वर्ग लगातार क़ानूनी सुधार की आवश्यकता अवश्य महसूस करते हैं। लेकिन एक राष्ट्र को सीधे समान नागरिक क़ानून पर उछाल देना अधिक असहज होगा और इसका विरोध मुसलमानों की तुलना में हिन्दू बहुसंख्यकों की ओर से अधिक होगा।

आबादी का राक्षसः

क्या मुस्लिम आबादी में वृद्धि वास्तव में भयानक है।

एक भ्रान्ति यह है कि आबादी में वृद्धि की दर मुसलमानों में अधिक है, वे चार विवाह करते हैं और जल्द ही उनकी जनसंख्या हिन्दुओं की जनसंख्या से अधिक हो जाएगी और यह देश एक मुस्लिम राज्य बन जाएगा। कुछ लोग कहते हैं कि मुसलमान परिवार नियोजन के उपाय नहीं करते और अपनी जनसंख्या बढ़ाने के लिए अनेक विवाह करते हैं।

सच्चाई यह है कि प्रभावशाली साम्प्रदायिक शक्तियों ने पिछले वर्षों में इस झूठ का प्रचार किया है। साम्प्रदायिक शक्तियों ने मुस्लिम आबादी में वृद्धि की दर के भय को बढ़ा चढ़ा कर फैलाया है ताकि वह अपने बहुसंख्यक वोटों को एकत्र कर सकें और इसके लिए उन्होंने आधे-अधूरे सच को तोड़-मरोड़ कर और अफवाह फैलाने की

तकनीकों के द्वारा इन मिथकों को जनता के मन में प्रभावपूर्ण ढंग से बैठा दिया है।

धर्म के आधार पर किए गए सर्वेक्षण इस सामान्य भ्रान्ति को पूर्ण रूप से नकारते हैं। इन सर्वेक्षणों में धर्म को एक मार्कर के रूप में प्रयोग किया गया है। सन् 1971 के सर्वे के अनुसार हिन्दुओं की जनसंख्या 82.6 प्रतिशत और मुसलमानों की जनसंख्या 11.2 प्रतिशत थी। सन् 1991 की जनगणना में ये आँकड़े हिन्दुओं के लिए 82.6 प्रतिशत और मुसलमानों के लिए 11.4 प्रतिशत थे। (मलयालम मनोरमा, 1992)। मुसलमानों की आबादी की वृद्धिदर केवल थोड़ी ही अधिक है अर्थात 2.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। जबकि हिन्दुओं की आबादी की वृद्धिदर 2001 की जनगणना के अनुसार 2.3 प्रतिशत है। लेकिन इसका कारण यह है कि मुसलमानों की सामाजिक आर्थिक दशा निम्न है और निरक्षरता भी अधिक है। समान सामाजिक और आर्थिक दशा वाले मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच जनसंख्या वृद्धिदर समान है। इस सन्दर्भ में केरल एक उदाहरण है। जहाँ तीनों बड़े समुदाय हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई की वृद्धिदर 1.8 प्रतिशत भारतीय मुसलमानों के बीच किए गए सर्वेक्षण के नतीजे दर्शाते हैं कि विभिन्न सरकारों ने विभिन्न आयोगों द्वारा दिए गए परामर्शों पर या जो कम ध्यान दिया या उन परामर्शों को सुना ही नहीं और उन्होंने इन आयोगों को केवल वोट प्राप्त करने की चाल के तौर पर प्रयोग किया ताकि वह मुसलमानों को यह आभास दिला सकें कि वह मुसलमानों के पिछड़ेपन के बारे में गंभीर हैं। लेकिन वास्तव में वे करते कुछ नहीं हैं। क्योंकि यहाँ तीनों समुदायों में साक्षरता की दर भी समान है। इसके विपरीत जम्मू और कश्मीर में हिन्दुओं की आबादी में वृद्धिदर मुसलमानों से अधिक है। हिन्दुओं की वृद्धि दर 3.7 प्रतिशत है जबकि मुसलमानों की वृद्धि दर 2.6 प्रतिशत है।

कुल मिलाकर यह आँकड़े दर्शाते हैं कि धर्म के आधार पर आबादी की वृद्धि दर समान है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि इस समय वृद्धि दर में अन्तर जारी भी रहता है तब भी अगली सदी तक भी मुसलमानों की आबादी हिन्दुओं की तुलना में अधिक होने की संभावना नहीं है। इसके विपरीत यदि मौजूदा वृद्धिदर का विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि सन् 1961-71 और सन् 1971-81 के बीच हिन्दू आबादी में वृद्धि 23.71 प्रतिशत से 24.42 प्रतिशत हो गयी। जबकि उसी अवधि के दौरान मुस्लिम आबादी में वृद्धि की दर 30.80 प्रतिशत से घटकर 30.20 प्रतिशत हो गयी। यदि ये वृद्धि दरें एक ही स्तर पर स्थिर हो जाएं तो 1981 से लेकर 100 वर्षों तक हिन्दू और मुसलमान दशकीय वृद्धि दर क्रमश 30.71 प्रतिशत और 30.55 प्रतिशत दर्ज करेंगे, अर्थात हिन्दुओं की वृद्धि दर मुसलमानों की तुलना में अधिक होगी।

मुस्लिम तुष्टिकरण

कुछ राजनीतिक और सामाजिक संगठनों का यह मुख्य मुद्दा रहा है कि काँग्रेस और कुछ अन्य राजनीतिक दल मुसलमानों का तुष्टिकरण करते हैं और उनको देश की अर्थव्यवस्था और संसाधनों में उचित हिस्से से अधिक देते हैं। यह आरोप राजेन्द्र सच्चर कमेटी की रिपोर्ट द्वारा निराधार सिद्ध हो चुका है जो सन् 2005 में भारत सरकार द्वारा भारत में मुस्लिम समुदाय की मौजूदा सामाजिक और शैक्षिक दशा पर रिपोर्ट तैयार करने के लिए नियुक्त की गयी थी। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट 2006 में प्रस्तुत की। कमेटी ने विरोधियों द्वारा मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति का मिथक फैलाने वालों का मुँह बन्द करने के लिए प्रामाणिक आँकड़े प्रस्तुत किए। कमेटी ने निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि भारतीय मुसलमानों की दशा अनुसूचित जातियों और जनजातियों से भी बदूतर है। कमेटी ने तथ्य के आधार पर हैरतअंगेज आँकड़े प्रस्तुत किए और बताया कि सरकारी नौकरियों और अन्य सामाजिक-आर्थिक मामलों में मुसलमानों की स्थिति ही उनकी सामाजिक स्थिति और तुष्टीकरण को जाँचने का पैमाना है। हमें देखना चाहिए कि वह इन मानकों के अनुसार मुसलमान कहाँ खड़े हैं। याद रखिए कि देश में मुसलमानों की आबादी लगभग 15 प्रतिशत है।

1. मुसलमानों में साक्षरता दर राष्ट्रीय स्तर पर औसत साक्षरता दर से बहुत नीचे है। 6-14 वर्ष आयु समूह के 25 प्रतिशत मुस्लिम बच्चे या तो कभी स्कूल नहीं जाते या बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। आजादी के बाद शैक्षिक अवसरों का विस्तार भारतीय मुसलमानों के लिए अधिक लाभप्रद नहीं रहा। प्रमुख कॉलेजों में स्नातक स्तर पर 25 कुल छात्रों में से 1 छात्र मुस्लिम होता है और स्नातकोतर कक्षाओं में 50 छात्रों में से 1 मुसलमान होता है। सभी सामाजिक और धार्मिक सम्प्रदायों में मुस्लिम स्नातकों की बेरोज़गारी दर सबसे अधिक है। पढ़ने जाने वाले मुस्लिम बच्चों में से केवल 3 प्रतिशत बच्चे मदरसे जाते हैं। सच्चर कमेटी ने यह भी उल्लेख किया कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए जो सकारात्मक कदम उठाये गए उनसे कम से कम इन जातियों को कुछ लाभ मिले हैं। इसी प्रकार भारतीय मुसलमानों के लिए भी सकारात्मक कार्रवाई की आवश्यकता है।
2. सरकारी क्षेत्र की उच्च स्तर की नौकरियों में उनका प्रतिनिधित्व दयनीय है। इनकी भागीदारी प्रथम श्रेणी की नौकरियों में 3.19 प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी में

4.3 प्रतिशत, चर्तुथ श्रेणी में मात्र 8.16 प्रतिशत है जबकि निजी क्षेत्र में यह आँकड़े इससे भी कम हैं।

3. नौकरशाही में कुल मिलाकर मुसलमानों का प्रतिशत मात्र 2.5 है। जबकि मुसलमान भारत की कुल आबादी का लगभग 15 प्रतिशत हैं।
4. मुसलमानों की उपस्थिति आई.ए.एस में मात्र 3 प्रतिशत, आई.एफ.एस. में 1.8 प्रतिशत, रेलवे में 4.5 प्रतिशत, पुलिस में 6 प्रतिशत, स्वास्थ्य सेवा में 4. 4 प्रतिशत और परिवहन में 6.5 प्रतिशत पायी गयी ।जबकि मुसलमान भारत की आबादी का 15 प्रतिशत हैं। भारतीय रेलवे में मुसलमान केवल 4.5 हैं और इसमें से 98.7 प्रतिशत मुसलमान निचली सतह पर तैनात हैं। विश्व विद्यालयों और बैंकों में मुसलमानों की हिस्सेदारी बहुत कम है। किसी भी राज्य में सरकारी नौकरियों मुसलमानों की हिस्सेदारी उनकी आबादी के अनुपात में नहीं है। पुलिस सिपाहियों में इनकी हिस्सेदारी केवल 6 प्रतिशत है,स्वास्थ्य में 4.4 प्रतिशत और यातायात में 6.5 प्रतिशत है।
5. उच्च न्यायालयों में 310 न्यायाधीशों (1 अप्रैल 1980 की रिपोर्ट के अनुसार) में से केवल 14 मुसलमान थे।
6. वित्तीय सहायता के मामले में कर्ज़ लेने वाले मुसलमान 4.3 प्रतिशत थे और मुसलमानों को दिया गया कर्ज़, दिए गए कुल कर्ज़ का 2.02 प्रतियात था। कुल वित्तीय क्षेत्र में मुसलमानों को दिया गया डिफरेन्शियल इन्टरेस्ट रेट क्रेडिट केवल 3.76 प्रतिशत था।
7. उद्योगों में देश के सबसे बड़े औद्योगिक घरानों में अधिकतर उद्योग मुसलमानों के स्वामित्व या नियन्त्रण में नहीं हैं। मुसलमानों के जिन उद्योगों को लाईसेन्स दिए गए उनकी संख्या 2 प्रतिशत से कम है।

मुसलमान हस्तकला उद्योग में विशेष रूप से कुशल कलाकार की हैसियत से हैं। इस क्षेत्र में कार्यरत कलाकारों में से 51.89 प्रतिशत मुसलमान थे। लेकिन इस क्षेत्र में मुसलमानों का स्वामित्व मात्र 4.4 प्रतिशत था।

सबसे अधिक चिंताजनक वास्तविकता यह है कि कमेटी ने यह भी पाया कि भारतीय मुसलमानों को किसी भी सार्थक राजनैतिक भागीदारी से वंचित रखने के क्रमबद्ध षडयन्त्र के आरोप में कुछ सच्चाई है। उदाहरण के लिए बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और अधिकतर राज्यों में उन चुनाव क्षेत्रों को आरक्षित घोषित कर दिया जाता है जो मुस्लिम बहुल चुनाव क्षेत्र होते हैं, जहाँ केवल अनुसूचित जाति के उम्मीदवार ही चुनाव लड़ सकते हैं, स्पष्ट रहे कि मुसलमान अनुसूचित जाति में नहीं आते।

तुष्टिकरण?

भारतीय मुसलमानों के बीच किए गए सर्वेक्षण के नतीजे दर्शाते हैं कि विभिन्न सरकारों ने विभिन्न आयोगों द्वारा दिए गए परामर्शों पर या जो कम ध्यान दिया या उन परामर्शों को सुना ही नहीं और उन्होंने इन आयोगों को केवल वोट प्राप्त करने की चाल के तौर पर प्रयोग किया ताकि वह मुसलमानों को यह आभास दिला सकें कि वह मुसलमानों के पिछड़ेपन के बारे में गंभीर हैं। लेकिन वास्तव में वे करते कुछ नहीं हैं।

सर्वेक्षण दर्शाता है कि भारतीय मुसलमानों की आर्थिक दशा वास्तव में दयनीय है। रिपोर्ट करने वालों में से 30.4 प्रतिशत लोगों ने अपनी घरेलू आय 10,000 से कम बताया, 24.4 प्रतिशत लोगों ने 10,001 से 20,000 तक बताया, 7.5 प्रतिशत लोग 20,001 से 30,000 के आयवर्ग में थे। 3.8 प्रतिशत 30,001 से 40,000 आयवर्ग में, 1 प्रतिशत लोग 40,001 से 50,000 और 5.6 प्रतिशत लोग 50,000 से अधिक आय वाले थे। मुसलमानों की 27.6 प्रतिशत आबादी झुग्गियों में रहती है और 46.1 प्रतिशत लोग एक कमरे के घरों में रहते हैं।

यदि भारतीय मुसलमानों का विभिन्न सरकारों ने तुष्टिकरण किया तो उनकी आर्थिक दशा इतनी दयनीय क्यो है? उत्तर यह है कि उनका तुष्टिकरण नहीं किया गया। बल्कि उनके बारे में ऐसा प्रचार किया जाता है। निहित स्वार्थ रखने वाले लोगों के अपने गुप्त उद्देश्य हैं।

वोट बैंक की राजनीति भारतीय राजनीति में पाए जाने वाले उद्देश्यों के बीच प्रमुख खलनायक है। जब आरक्षण के सम्बन्ध में मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू किया गया तो उसका उद्देश्य हिन्दुओं की पिछड़ी जातियों को लाभ पहुँचाना था। इसका उद्देश्य मुसलमानों को लाभ पहुँचाना नहीं था। मुसलमानों को मण्डल से कुछ नहीं मिला। केवल इसके द्वारा हिन्दू पिछड़ी जातियों का तुष्टिकरण किया गया। उत्तर भारत की 20 प्रतिशत आबादी सवर्ण हिन्दुओं की है। मण्डल के द्वारा उनके हितों को नुकसान पहुँचा। उन्हीं लोगों ने मण्डल आयोग की सिफारिशों और अपने ही धर्म के कम विकसित वर्गों के विरुद्ध हिंसक प्रदर्शन किए।

भारत के मुस्लिम अल्पसंख्यकों की स्थिति के बारे में राजेन्द्र सच्चर कमेटी की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है। इस रिपोर्ट में भारत के मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक दशा पर राष्ट्रीय अध्ययन रिपोर्ट के हिस्सों से जो भी निष्कर्ष लिया जा सकता है, वह एक बैठक में गहरी निराशा पैदा करता है। विशेष रूप से मुस्लिम अल्पसंख्यकों की मौजूदा

सामाजिक और आर्थिक दशा ह्यूमन डेवलपमेन्ट इन्डेक्स में फिसल कर नीचे चली गयी है। नौकरियों में भी उनका प्रतिनिधित्व नगण्य है। इसलिए उनमें से अधिकतर गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उनमें से अधिकतर निरक्षर हैं। यह आँकड़े किसी के मन में सन्देह नहीं छोड़ते कि गंभीर सकारात्मक कारवाई के बिना यह समुदाय लगातार अधिक से अधिक वंचित होता जायेगा। इसका राजनीतिक प्रतिनिधित्व बहुत तेज़ी से घटना शुरु हो गया है। असुरक्षा और समानता की कमी के कारण वह खतरा महसूस करते हैं और वे मुख्य रूप से अल्पसंख्यक पहिचान पर निर्भर रहते हैं। साम्प्रदायिक हिंसा के बाद पैदा हुई समस्याएँ और मुसलमानों द्वारा अलग बस्तियाँ बनाने की स्थिति ने घाव पर नमक छिड़कने का काम किया है क्योंकि मुसलमानों का अलग बस्तियों में जीवन स्तर निम्न हो जाता है और भय का मनोविज्ञान बन जाता है जिसमें रुढ़िवादी विचारधारा विकसित होती है और दोनों समुदायों के बीच भावनात्मक अवरोध पैदा हो जाते हैं।

सामाजिक प्रशासन का अल्पसंख्यकों के प्रति व्यवहार धीरे-धीरे सौतेले नागरिकों जैसा होता जा रहा है जो उन्हें दूसरी श्रेणी के नागरिक बनाने का रास्ता साफ कर रहा है। धीरे-धीरे दो तरह के पैमाने और रवैये जड़ पकड़ते जा रहे हैं। एक रवैया बहुसंख्यक समुदाय के सम्पन्न और शक्तिशाली लोगों के प्रति है और दूसरा रवैया अल्पसंख्यकों के प्रति है। साम्प्रदायिक शक्तियों का अल्पसंख्यकों को दूसरे श्रेणी का नागरिक बनाने का लक्ष्य साकार होना आरम्भ हो गया है।

आज भारत में आवश्यकता इस बात की है कि ''मुस्लिम तुष्टिकरण'' जैसे ग़ैर ज़िम्मेदाराना बयान न दिए जायें ताकि क़ौम विकास कर सके,मुख्य धारा में सम्मिलित हो सके और मुख्य धारा की क़ौमों के साथ शान्ति और सद्भाव के साथ रह सके।

टीपू सुल्तान
एक राष्ट्रप्रेमी जिसकी छवि धूमिल कर दी गई

18वीं शताब्दी के मैसूर के शासक टीपू सुल्तान के व्यक्तित्व की आलोचना पूर्वाग्रहग्रस्त इतिहासकारों द्वारा लगातार की जाती रही है। अक्सर उन्हें अत्याचारी के रूप में प्रचारित किया जाता है और इससे भी अधिक दुखद बात यह है कि उन्हें कट्टर मुस्लिम शासक कहा जाता है। यह आलोचना करने के लिए कुछ ऐसी घटनाओं का प्रयोग किया जाता है जिनमें ऐसे लोगों को सजाएँ दी गयी थीं जिन्होंने सामूहिक रूप से टीपू सुल्तान के विरूद्ध ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों का साथ दिया था।

इस तरह का अधिकतर प्रयास उन इतिहासकारों के काम का अंग रहा है जो भारत में मुस्लिम शासन का नकारात्मक चित्रण करने पर आमादा रहे हैं। इसलिए अपने राजनैतिक शत्रुओं के विरुद्ध कुछ दण्डात्मक घटनाएँ कुछ शासकों के इतिहास को साम्प्रदायिक बनाने और कुछ ग़ैर मुस्लिम जनता और ग़ैर मुस्लिम शासकों को पीड़ित के रूप में चित्रित करने के लिए आसान हथियार मिल जाता हैं। इतिहास लेखन में इस तरह की अधिकतर कोशिशों के पीछे ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों की कृपा रही है जो 'बाँटो और राज करो' की नीति पर चल रहे थे, ताकि वे अपनी सत्ता को अधिक दिनों तक जारी रख सकें।

टीपू सुल्तान और उनके पिता हैदर अली चित्रण की इस तरह की कोशिशों के प्रमुख शिकार रहे हैं। ब्रिटिश शासक अपने प्रबल शत्रुओं के विरुद्ध खुला द्वेष रखते थे, जिन्होंने पहले मैसूर युद्ध (1767) में, मद्रास में स्थित अंग्रेज़ों के गढ़ फोर्ट सेन्ट जार्ज तक पीछा किया था। लेकिन एक धोखापूर्ण सन्धि न होती तो दक्षिण में ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाता। स्पष्ट रूप से इन पराजयों ने अंग्रेजों को अपने द्वेष फैलाने वाले ऐजेण्डा को अधिक जोश के साथ लागू करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्हें यह प्रयास करने का अवसर भी मिला कि वह एक हिन्दू बहुल क्षेत्र की जनता में एक मुस्लिम शासक के प्रति घृणा का प्रचार करें। हालाँकि वह 18वीं सदी में तुरन्त प्रभाव से अपनी इस योजना में सफल नहीं हो सके, लेकिन साम्प्रदायिक बना दिए गए इतिहास की

धुंध सदियों तक बुरी तरह छायी रही। सन् 80 के दशक के बाद कुछ भगवा इतिहासकारों के उदय के परिणामस्वरूप इस तरह की विभेदकारी व्याख्याओं के बढ़ते हुए विचारों का उद्देश्य मुख्य धारा की मीडिया और पाठ्य पुस्तकों में कुछ शासकों की छवि को दाग़दार करना है। टीपू सुल्तान के सन्दर्भ में अन्तिम दो दशकों के दौरान इस तरह की अधिकतर कोशिशें यदि सफल रहीं तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं।

आश्चर्यजनक बात यह है कि ऐसी आवाज़ें उठ रही हैं जिसमें भारत के स्वतन्त्रता के लिए जिन लोगों ने युद्ध किया उनमें टीपू सुल्तान का नाम सम्मिलित करने पर विरोध हो रहा है। टीपू सुल्तान उन योद्धाओं के बीच सबसे अधिक कद्दावर हैं क्योंकि उन्होंने केवल उपमहाद्वीप से अंग्रेजों को निकालने के लिए युद्ध ही नहीं किया बल्कि अंग्रेजों से इस देश को स्वतन्त्र रखने के लिए अपनी जान भी दे दी। इतना ही नहीं, बल्कि टीपू सुल्तान इस बात पर राज़ी रहे कि अंग्रेज अपने पास उनके दो बेटों को तब तक बन्धक बनाकर रखें, जब तक कि सन्धि के प्रयासों के तहत सन् 1793 के तृतीय मैसूर युद्ध के जुर्माना के तौर पर वह 2.30 करोड़ अदा न कर दें, जिसमें अंग्रेज भारी पड़ गए थे। उन्होंने यह राशि दो किस्तों में अदा की और मद्रास से अपने बेटों को वापस लिया। चूँकि उनकी प्रजा इस तरह की क्षतिपूर्ति भरने के लिए राज़ी रही और अपने राजा के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया तो यह उनके प्रति वफ़ादारी का स्पष्ट सबूत है।

इसमें सन्देह नहीं कि इस्लामी परम्पराएँ टीपू सुल्तान के लिए महत्वपूर्ण थीं। उनके देश को 'सल्तनत-ए खुदादाद' अथवा 'अल्लाह द्वारा प्रदान की गयी सरकार' कहा जाता था। लेकिन इस बात में भी उसी तरह सन्देह नहीं होना चाहिए कि वह धार्मिक सह-अस्तित्व में उत्साहपूर्वक विश्वास करने वाले थे और उन्होंने अपनी प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण के लिए संघर्ष किया चाहे वह मुसलमान हों या हिन्दू या मस्जिद हो या मन्दिर। उन्होंने अपने प्रशासन में न केवल हिन्दुओं को भर्ती किया बल्कि कुछ प्रमुख हिन्दुओं को अपने दरबार में उच्च पदों पर रखा। उन्होंने पुरनय्या को अपना मीर आसफ (दीवान) नियुक्त किया और कृष्णाराव को वित्तमन्त्री नियुक्त किया। शमा राव डाक और पुलिस के प्रभारी नियुक्त हुए। श्रीनिवास राव मद्रास में राजदूत नियुक्त हुए, अप्पा राव पूना में और मूलचन्द्र दिल्ली में, उनके व्यक्तिगत सेवक सुब्बा राव थे। उनके विश्वस्त लोगों में नायक राव और नायक संगाना थे। उनके मुंशी नारनय्या थे और नागप्पय्या कूर्ग के सालार (Commandant), हरी सिंह सेना की एक टुकड़ी के सेनापति थे। शिवाजी उनकी तीन हज़ार घुडसवार सेना के सेनापति थे। इससे स्पष्ट है कि कोई भी राजा, जो अपने से अन्य धर्म के लोगों का दमन करता हो। वह उसी सम्प्रदाय के सदस्यों को इतनी बड़ी संख्या में और इस तरह के मुख्य पदों पर नियुक्ति को सहन

नहीं कर सकता।

टीपू द्वारा मंदिरों को दिए जाने वाले उपहारों को भी विस्तारपूर्वक बताया जा सकता है लेकिन यह छोटा सा लेख इतने विस्तार को सहन नहीं कर सकता। यह कहना पर्याप्त होगा कि टीपू ने यह काम अपनी धर्मनिरपेक्षता प्रदर्शित करने के लिए नहीं किया था क्योंकि सेकूलरवाद की धारणाएँ अभी तक प्रचलित नहीं हुई थीं और न तो ऐसी धारणाओं के प्रदर्शन की आवश्यकता थी। यह सब एक शासक द्वारा अपनी प्रजा को खुश रखने की योजना का अंग था और इसका उद्देश्य यह भी था कि परम्परागत रूप से जिस चीज़ का उन्होंने प्रण किया था उससे वह विचिलत नहीं होना चाहते थे।

यह स्पष्ट है कि सच्चाईयों को न देखने वाले इतिहासकार एक ऐसी राजनीतिक रस्साकशी के व्यापक परिस्थिति की अनदेखी कर रहे थे जिसमें दोस्त और दुश्मन की पहिचान इस तरह की जाती थी कि कौन अंग्रेजों के साथ जाता है और कौन साम्राज्यवादी अंग्रेज़ शासकों के चंगुल से स्वतन्त्र रहने के लिए प्रतिबद्ध है। यदि केरल के कुर्गी लोगों और नायरों को दबाने के लिए युद्ध आवश्यक था तो कर्नाटक के नवाबों के विरुद्ध भी युद्ध लड़े गए जो मुसलमान थे और अंग्रेजों के पिठ्ठू थे। डा0 बी.एन. i kM$ v i uh fd r kc *"औरंगजेब और टीपू सुल्तानः उनकी धार्मिक नीतियों का मूल्याकंन"* (इन्स्टीट्यूट ऑफ ऑब्जेक्टिव स्टडीज़, न्यू डेल्ही) में लिखते हैंः यदि उसने कुर्ग के हिन्दुओं, मंग्लौर के ईसाइयों और मालाबार के नायरों को कुचला तो यह इस हक़ीकत के कारण था कि वे अंग्रेजों से हाथ मिलाकर टीपू सुल्तान की सत्ता को कमज़ोर करना चाहते थे। यदि किसी के अन्दर इस तरह की प्रवृत्तियाँ महसूस कीं चाहे वह मालाबार के मौपिला या महादेवी मुसलमान या सवानूर के नवाब हों या निज़ाम हैदराबाद हों, उनको भी नहीं बख्शा।

इसलिए टीपू सुल्तान को चरमपंथी कहना बहुत अधिक ग़लत है। उनकी कठोरता उन लोगों के प्रति थी जिन्होंने उनका तख्ता पलटने के लिए अंग्रेजों का साथ दिया, और इस तरह उनकी कठोरता धर्म से प्रेरित होने के बजाए राजनीति से प्रेरित थी।

यदि ऐसा न होता तो महात्मा गाँधी ने टीपू की प्रशंसा के पुल इस तरह न बाँधे होते, "वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक थे"। इतिहास को तोड़ने मरोड़ने का एक प्रमुख मामला डा. बी.एन. पाण्डेय ने उठाया जो उस समय उड़ीसा के गवर्नर थे। जब उन्होंने कुर्ग में जनता के नरसंहार का उल्लेख पाया तो उन्होंने मैसूर गज़टियर से हवाला ढूँढ़ना चाहा।

डा पाण्डेय का सामना एक इतिहास की पाठ्य पुस्तक से हुआ जो इलाहाबाद के ऑग्लो-बंगाली कॉलेज में पढ़ायी जाती थी जिसमें यह दावा किया गया था कि "तीन

हज़ार ब्राह्मणों ने इसलिए आत्महत्या की कि टीपू बलपूर्वक उन्हें इस्लाम धर्म में लाना चाहते थे। इस पुस्तक के लेखक कलकत्ता विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के विभागाध्यक्ष और बहुत प्रसिद्ध विद्वान डा0 हर प्रसाद शास्त्री थे।

डा0 पाण्डे ने इस पुस्तक के लेखक डा0 शास्त्री को तुरन्त एक पत्र लिखा और पूछा कि ये उदाहरण उन्हें जिन स्रोतों से मिले हैं उनका हवाला दें। कई बार याददिहानी कराने के बाद डा0 शास्त्री ने उत्तर दिया कि उन्होंने यह जानकारी मैसूर गजटियर से प्राप्त किया है। इसलिए डा0 पाण्डेय ने उस समय मैसूर विश्वविद्यालय के उपकुलपति सर ब्रिजेन्द्र नाथ सील से अनुरोध किया कि उनके लिए डा0 शास्त्री के कथन की गजटियर से पुष्टि करा दें। सर ब्रिजेन्द्र ने उनके पत्र को प्रो0 श्रीकान्तय्या के पास भेजा जो गज़टीयर के नए संस्करण पर काम कर रहे थे। श्रीकान्तय्या ने पत्र लिखकर बताया कि गजटियर में किसी ऐसी घटना का वर्णन नहीं है और एक इतिहासकार के रूप में वह आश्वस्त हैं कि इस तरह की कोई घटना घटित नहीं हुई थीं। प्रो0 श्रीकान्तय्या ने यह भी कहा कि उस समय टीपू सुल्तान के प्रधानमन्त्री और मुख्य सेनापति दोनों ब्राह्मण थे। उन्होंने 156 मन्दिरों की एक सूची भी संग्लन की जो टीपू सुल्तान के राजकोष से वार्षिक अनुदान प्राप्त किया करते थे। टीपू द्वारा दान किए हुए एक लिंग की पूजा आज भी नानजंगूड़ मन्दिर में की जा रही है। श्रीरंगापटनम का रंगनाथ मन्दिर टीपू सुल्तान के महल से काफी निकट था जहाँ से वह मन्दिर के घण्टे और मस्जिद की अज़ानों को एक समान सम्मान के साथ सुनते थे। (इम्पैक्ट इन्टरनेशनल, लंदन, अंक 28, जुलाई, 1998)

बाद में शोध से यह मालूम हुआ कि शास्त्री ने ब्राह्मणों की आत्महत्या की इस कहानी को कर्नल माइल्स की किताब हिस्ट्री ऑफ मैसूर से लिया था जिसमें माइल्स ने यह दावा किया था कि उन्होंने इस कहानी को एक फारसी पाण्डुलिपि से लिया है जो महारानी विक्टोरिया की व्यक्तिगत लाईब्रेरी में मौजूद है। जब डा0 पाण्डेय ने इसकी भी जाँच की तो उनको पता चला कि महारानी विक्टोरिया की लाईब्रेरी में ऐसी कोई पाण्डुलिपि मौजूद नहीं। इसके बावजूद डा0 शास्त्री की किताब हाईस्कूल की इतिहास की पाठ्य पुस्तक के रूप में सात राज्यों असम, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश में पढ़ाई जा रही थी। इसलिए उन्होंने इस पाठ्य पुस्तक के बारे में अपने द्वारा किए गए सम्पूर्ण पत्र व्यवहार को कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति सर आशुतोष चौधरी के पास भेजा। सर आशुतोष ने तुरन्त शास्त्री की किताब को पाठ्यक्रम से निकालने का आदेश दे दिया। इसके बावजूद कई वर्षों बाद सन् 1972 में डा0 पाण्डेय को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आत्महत्या की यही कहानी

अब भी उत्तर प्रदेश के जूनियर हाई स्कूल की इतिहास की किताब में पढ़ायी जा रही थी। एक झूठ को इतिहास की सच्चाई के रूप में स्वीकृति प्राप्त हो गई।

टीपू सुल्तान द्वारा मन्दिरों को दी जाने वाली जागीरों और उपहारों की संख्या इतनी है कि उनके विवरण के लिए कई खण्डों की आवश्यकता होगी। श्रृंगेरी में स्थित प्रसिद्ध मन्दिर के अवशेषों से पिछले दशक के दौरान जो दस्तावेज प्राप्त हुए हैं वह बताते हैं कि टीपू सुल्तान को यह जानकर बहुत दुख हुआ कि पेशवा की सेनाओं ने एक मन्दिर ij /kkok cksyk Fkk vkSj mUgksaus ml ifo=k LFkku ij efUnj dk th.kksZ)kj *"सल्तनत-ए खुदादाद"* के राजकोष से किया। उन्होंने तमिलनाडु के कंजीवरम में एक मन्दिर के निर्माण के लिए 10,000 हून नक़द दिया और जब मन्दिर बन कर तैयार हो गया तो उसकी रथ-यात्रा में भाग लिया। उन्होंने मिल्कोट मन्दिर के दो सम्प्रदायों के बीच विवाद का समाधान किया और दोनो पक्षों ने उनके निर्णय को अन्तिम निर्णय के रूप में स्वीकार किया। डिंडीगल के एक अभियान के अवसर पर उन्होंने आदेश दिया कि दक्षिण की ओर से गोली न चलायी जाए इसलिए कि राजा का मन्दिर वहाँ स्थित था। प्राचीन कन्नड़ साहित्य सुल्तान की प्रशंसाओं से भरा हुआ है और इन प्रशंसाओं का प्रदर्शन सीवी (कर्नाटक के तुम्कुर जिले में) में स्थित प्रसिद्ध मन्दिर की छत पर मौजूद लेखों में भी हुआ है। टीपू सुल्तान की प्रशंसा करने वाले आल्हे आज भी प्राचीन मैसूर राज्य के देहाती क्षेत्रों में गाए जाते हैं। यह एक सच्चाई है कि मन्दिर की छतों पर लिखे गए लेख इस बहादुर शासक की शहादत के 50 वर्ष बाद लिख गए थे। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि जनता के अन्दर मृत्यु के बहुत बाद भी इस शासक के प्रति कितना आदर-सम्मान था।

यदि एक शासक से उसकी हिन्दू प्रजा घृणा करती तो उसे यह सम्मान न मिलता कि जनाज़े के समय खून से लथपथ उसके शव के सामने लोग सजदे कर रहे थे। लेकिन इतिहास के विवरण बताते हैं कि जिस समय विजेता ब्रिटिश सैनिक श्रीरंगापटनम में स्थित घरों को लूट रहे थे, उसकी हिन्दू प्रजा उसके महल के सामने उसके शव को शोक और विलाप के बीच सजदा करने के लिए कतार लगाए खड़ी थी। (बिस्टन, 1880 इसका उल्लेख मुहम्मद मुइनुद्दीन ने किया है, सन सेट ऐट श्रीरंगापटनम, ओरियन्ट लॉगमैन, 2000) ऐसी आशा उस प्रजा से नहीं की जा सकती जिसका शासक कट्टर अत्याचारी हो।

मानवता के लिए टीपू का योगदान

मंग्लौर और गोवा विश्वविद्यालयों के पूर्व उपकुलपति प्रो. बी. शेख अली अपने एक लेख ''टीपू सुल्तान- धर्म निरपेक्ष शासक'' में लिखते हैं:

''टीपू सुल्तान के 17 वर्षीय शासनकाल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू उनकी घरेलू नीतियाँ थीं। वह व्यापार, वाणिज्य, कला और हस्तकला में बहुत अधिक रुचि लेते थे, उन्होंने बहुत प्रभावकारी प्रशासन तन्त्र बनाया था; उन्होंने ही जलसेना, राकेट तन्त्र, राज्य द्वारा व्यापार और उद्योग, बन्दूक, तमंचे, शीशे, छुरी-काँटा, कागज और चीनी बनाने वाले कारखानों पर सरकारी नियन्त्रण के बारे में सोचा। शहर गंजम उद्योगों का एक उपनगर था जो कपड़े और कागज के लिए प्रसिद्ध था। उन्होंने देश और विदेश दोनों में व्यापार केन्द्रों की स्थापना की। विदेशों में उनके व्यापार केन्द्र मस्कत, जिद्दा, बसरा और पेगू में थे। जल और थल मार्ग द्वारा चन्दन का तेल, रेशम, काली मिर्च, कालीन, हाथी के दाँत के सामान का निर्यात होता था। उनके शासनकाल में भटकल, मंग्लौर और हुन्नावर प्रमुख बन्दरगाह थे। प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य घोषित किया और अपने राज्य में सहकारी बैंक और डाक सेवा प्रचलित कराया। उन्होंने सबसे पहले कावेरी नदी पर एक बाँध बनाने के बारे में सोचा। उन्होंने कावेरी नदी पर एक सिंचाई परियोजना ''सद्दे मोही'' की आधारशिला रखी जहाँ बाद में सर एम. विश्वेसरया ने उसी स्थान पर एक बाँध का निर्माण किया। बाँध के मुख्य द्वार पर फारसी और अंग्रेजी में जो लेख खुदे हुए हैं उनमें कहा गया है कि ''प्रारम्भ मैं कर रहा हूँ लेकिन इसका अन्त अल्लाह के हाथ में है।'' उन्होंने कलाकारों और हस्तकला के विशेषज्ञों को विभिन्न स्थानों से बुलाया, कृषि का विकास किया। ज़रूरतमंद किसानों को कर्ज़ उपलब्ध कराया और बंजर ज़मीनों पर खेती को बढ़ावा दिया। उन्होंने ज़मीदारी व्यवस्था का उन्मूलन किया। किसानों को अपनी फसल के अनुसार वार्षिक रूप से उत्पाद का एक चौथाई कर के रूप में देना होता था। यदि फसल पैदा नहीं होती तो उनको करमुक्त किया जाता, और उन्होंने रेशम उद्योग आरम्भ किया। उनके राज्य के रंगापटनम में रेशम के इक्कीस खेत थे। उन्होंने न्याय का एक नया तन्त्र शुरु किया जहाँ क़ैदियों को अर्थदण्ड देने की बजाए उनसे फलदार वृक्षों की खेती कराई जाती थी। भ्रष्ट अधिकारियों और समाज-विरोधी तत्वों को कठोर दण्ड दिया जाता था। उनके सामाजिक सुधारों में शराब, दास प्रथा, लावारिस बच्चों के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाना और फिज़ूलखर्ची, जुआ और तम्बाकू पर प्रतिबन्ध लगाया। उनके सुधार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में फैले हुए थे जिसमें, नया कैलेण्डर, बाट

और पैमाने, बैंक और वित्त, राजस्व और न्याय-पालिका, थल-सेना और जल सेना और ,Oogkj vkSj pfj=kesa lq/kkj fd;k vkSj mUgksaus *'राहती'* सिक्के जारी किए जिन पर शिव, पार्वती, श्रृंगेरी शारदा और उडपीकृष्णा की तस्वीरे थीं और कन्नड और फारसी में गिनतियाँ लिखी गयी थीं।''

कुछ क़ौमों में त्यौहारों में मनुष्यों की बलि चढाई जाती, महिलाएँ एक साथ अनेक विवाह करतीं और औरतें कम कपड़े पहनतीं। एक फ़रमान जारी करके टीपू ने अपने राज्य में इस तरह की सभी प्राचीन असभ्य रीतियों को रोक दिया। ऐसे कल्याणकारी कदमों और सुधारों के कारण उन्होंने अपनी प्रजा का दिल जीत लिया। उनके कुछ आलोचक उनके सुधारों को अपने धर्म में हस्तक्षेप मानते थे। इसमें आश्चर्य नहीं कि भारतीय इतिहास के गलियारे में बहुत से मुकुटधारी राजाओं में टीपू का सिर स्वाभिमान के साथ सबसे अधिक ऊँचा दिखायी देता है। एक प्रमुख भारतीय बंगाली कुलीन वर्ग के इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार ने टीपू सुल्तान को बहुत सम्मान दिया है और उनके किए गए कार्यों को सराहा है और कहा हैः

''टीपू सुल्तान एक महान स्वतन्त्रता सेनानी थे, और इस तरह वह एक योग्य प्रशासक और सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में नयी-नयी विकासशील नीतियों को अपनाने वाले थे।''

टीपू के राज्य के बारे में अधिक स्पष्ट जानकारी के लिए यदि हम टीपू के विरोधी एडवर्ड मूर के आँखों देखे विवरण का उल्लेख करें जो टीपू के विरुद्ध तृतीय मैसूर युद्ध लड़ने के लिए बाम्बे डिटेचमेन्ट से प्रस्थान कर रहा था।

मूर लिखता हैः

''जब कोई व्यक्ति एक अजनबी देश में यात्रा करता है तो उसे अच्छी खेती वाली जमीन, उद्योगशील बाशिंदों की आबादी, नये-नये स्थापित शहर, बढ़ते हुए वाणिज्य, फैलते हुए शहर और हर चीज़ को विकसित होते हुए देखता है जिससे खुशहाली का संकेत मिलता है तो वह प्राकृतिक रूप से यह निष्कर्ष निकालेगा कि वह क्षेत्र एक ऐसी सरकार के अन्तर्गत होगा जो जनता के मन के अनुसार होगी........। यह टीपू के राज्य का चित्र है और उनकी सरकार के बारे में यही हमारा निष्कर्ष है।''

प्राचीन शत्रुताः आधुनिक घृणा

पश्चिम द्वारा इस्लाम को दैत्य के रूप में प्रस्तुत करने का एक लम्बा इतिहास है, यह इतिहास इस्लाम और ईसाई यूरोप के बीच टकराव के लगभग 1000 वर्षों की अवधि में फैला हुआ है। इस्लाम अरब प्रायद्वीप में अपने उदय के एक सदी के अन्दर ही यूरोप के दरवाज़े पर दस्तक देने लगा। सन 712 ई0 में उमैया वंश के सेनापति तारिक बिन ज़ियाद द्वारा स्पेन पर विजय प्राप्त हो गयी जिससे इबेरियन प्रायद्वीप (जिसे बाद में अन्दलुस या स्पेन कहा गया) और यह पूर्णतः 800 वर्षों तक इस्लामी शासन के अधीन रहा। यह वही स्थान था जहाँ इस्लाम अपने धार्मिक और साम्राज्यवादी परिधि से बाहर निकला और एक संस्कृति के रूप में सामने आया और अपने आप को ऐसी हथियारविहीन शक्ति (Soft Power) के रूप में विकसित किया जिसकी मिसाल उस समय की दुनिया में नहीं पायी जाती। कार्डोवा (कर्त्तबा) और ग्रेनाडा (गरनाता) शहर के इस्लामी विश्वविद्यालय और पुस्तकालय अपनी ओर मध्य-पूर्व, अफ्रीका और यूरोप से विद्वानों, खगोलविदों, चिकित्सकों, वैज्ञानिकों और दार्शनिकों को आकर्षित करते रहे।

त्रिमूर्ति की धारणा की जटिलताओं की तुलना में *तौहीद* (एकत्ववाद) का इस्लामी सिद्धान्त अधिक ठोस और स्पष्ट प्रतीत होता था। क़ुरआन अपने मूल रूप और शुद्ध स्थिति में मौजूद होने के कारण भी एक चुनौती था। इस्लाम जो धार्मिक लोगों को स्वतन्त्रता प्रदान करता था, उसके अन्दर किसी अन्य चीज़ की तुलना में अधिक आकर्षण था। स्वतन्त्रता की यह कृपा मुस्लिम स्पेन में विद्या और विज्ञान के विकास के पल्लवित होने के रूप में दिखायी दे रहा थी। ईसाई यूरोप अपने अस्तित्व के लिए एक चुनौती महसूस कर रहा था। इसके कारण इस्लाम के बढ़ते सैलाब को रोकने के लिए वे नये मोर्चों की तलाश के लिए प्रेरित हुए। पश्चिम ने इस्लाम के विरुद्ध धार्मिक और वैचारिक आक्रमण प्रारम्भ कर दिए। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के व्यक्तित्व को प्रमुख लक्ष्य के रूप में चुना गया। दोषारोपण के लिए आपके अनेक विवाह और युद्ध, आसान हथियार बन गए। सलीबी युद्धों द्वारा उनकी शक्ति के क्षीण होने और विनाश, सलाहुद्दीन अयूबी द्वारा पवित्र स्थलों पर पुनः अधिकार कर लेने और उसके काफी बाद

कुस्तुन्तुनिया (तुर्कीः इस्तम्बूल जो पूर्वी रोमन या बाजन्तीनी साम्राज्य की राजधानी था) और उस्मानी साम्राज्य का यूरोप के पूर्वी भागों में प्रवेश ने यूरोप को आहत होने के लिए अतिरिक्त कारण उपलब्ध कराए।

आज इस्लाम अपनी पूर्व छवि की पीली छाया होने के कारण, मुसलमानों के आपस में बँटे होने, पश्चिम द्वारा ऊर्जा के स्रोतों का शिकार करने के लिए तेल की दौलत से मालामाल मध्य-पूर्व में युद्ध छेड़ना, घृणा के निष्क्रिय पड़े स्रोतों पर तेल छिड़कने की आवश्यकता पिछले दशकों में दुगनी हो गयी। इसलिए यह विवरण देने की आवश्यकता नहीं कि क्यों पश्चिमी मीडिया और राजनीतिक शासक इस तरह की नीतियों के शिकार हो गए? वह केवल यह चाहते थे कि घृणा को क्रोध में बदल दिया जाए। यद्यपि यूरोप में ऐसे छोटे राष्ट्रों की कमी नहीं थी जो निर्धारित राष्ट्रीय सीमाओं से अलग होने के लिए संघर्ष कर रहे थे- उनमें से कुछ बास्के, आयरिश थे- उन्हें नये दुश्मन के चित्र में रंग भरने के लिए अलग-अलग और भिन्न रंगों के हथियारबन्द लोगों की बुरी तरह आवश्यकता थी। पश्चिम को सबक सिखाने के लिए जो शक्तियाँ आमादा हैं उनके लिए फिलीस्तीन के शरणार्थी कैम्प, इराक और अफ़ग़ानिस्तान में कारपेट बमबारी किए गए क्षेत्र अपने मुजाहिद भर्ती करने के लिए उपजाऊ भूमि सिद्ध हुए।

इस्लाम और पश्चिम के सम्बन्धों का चित्रण जिन ऐतिहासिक वैमनस्यताओं में होता है, उनपर एक दृष्टि डालना लाभदायक होगा। इस सम्बन्ध में एक महान विद्वान ज़ियाउद्दीन सरदार का निम्नलिखित शोधलेख एक मार्गदर्शक का काम करेगा।

इस्लाम के उद्भव से ही मुसलमान यूरोप के लिए समस्या बन गये थे। पहले इस्लाम एक धार्मिक समस्या था। खुदा के स्वयं अपने ही बेटे के 600 वर्ष पहले सूली पर चढ़ने और फिर उठाये जाने के बाद एक अरबी पैग़म्बर का क्या उद्देश्य था? दूसरे, जब इस्लाम आया- तो अपने उद्भव के कुछ ही दशकों के दौरान- वह यूरोप की सीमा पर पहुँच गया, जिसके कारण यह एक राजनीतिक समस्या बन गया। तीसरे, मुस्लिम सभ्यता की बौद्धिक उपलब्धियों ने इस्लाम को एक बौद्धिक समस्या भी बना दिया। इस्लामी समस्या के प्रत्येक पहलू का मुकाबला विशेष साधनों द्वारा किया गया।

धार्मिक रूप से ईसाई यूरोप केवल इस्लाम, इसके पैग़म्बर और इसके अनुयायियों का इंकार कर सकता था। राजनैतिक रूप से यूरोप ने इस्लाम के विरुद्ध सलीबी युद्धों की एक श्रृंखला छेड़ दी। जब ये तरीक़े असफल रहे तो उन्होंने पूर्ण रूप से मुस्लिम दुनिया के उपनिवेशीकरण पर काम करना शुरु कर दिया। बौद्धिक रूप से, यूरोप ने मुस्लिम चिन्तन और इतिहास पर नियन्त्रण रखने के लिए अनेक विषयों की श्रृंखला की स्थापना की।

1. सार्वजनिक निन्दा

इस्लाम और इसके पैग़म्बर (सल्ल0) की सार्वजनिक निन्दा आरम्भ में ही शुरु हो गयी थी। पाल अलवारस (मृत्यु 859) ने डेनियल की किताब का प्रयोग यह खोज करने के लिए किया कि मुहम्मद ऐन्टी क्राइस्ट''मसीह-विरोधी'' के विवरण से समानता रखते हैं, और वह बीस्ट (दरिंदा) 666 ई0 के पूर्ण प्रतीक हैं जिसे समझा जाता था कि यह पैग़म्बर के मृत्यु का वर्ष है। पैग़म्बर का यह निन्दनीय चित्रण लोकप्रिय ड्रामों के साहित्य की श्रृंखला में सम्मिलित किया गया जिनका नाम Chansuons Dogeste रखा गया थाः जिसमें पैग़म्बर के नाम को दैत्य का समानार्थी 'महाउन्ड' बताया गया और इसी तरह की निन्दा उन्हीं में से विकसित होने वाले महाकाव्यों में भी की गयी। पूरे मध्यकाल के दौरान उन्होंने इतालवी, जर्मन, स्पेनी, फ्राँसीसी और अंग्रेजी साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव डाला, यह प्रभाव 17वीं सदी तक विभिन्न रूपों में जारी रहा। यह साहित्य एक बार फिर 19वीं और बीसवी सदी में उभर कर सामने आया। इस विशेष साहित्य की विधा का सबसे ताज़ा उदाहरण सलमान रुश्दी की सैटनिक वर्सेज़ है जिसे उसने चान्सो साहित्य की शैली में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की निन्दापूर्ण जीवनी पुनः लिखी है।

2. क्रूसेड युद्ध

एक बार जब इस्लाम को दैत्य, काफ़िर और दुश्मन के रंग में प्रस्तुत कर दिया गया तो इसके विरुद्ध युद्ध को उचित ठहराना तुलनात्मक रूप से अधिक आसान हो गया। नवम्बर 1095 में क्लेयर मान्ड की ''पीस ऑफ गॉड'' नामक प्रसिद्ध काउन्सिल में पोप अर्बन द्वितीय ने क्रूसेड युद्धों की शुरुआत की। काउन्सिल ने इस्लाम के विरुद्ध वार ऑफ गॉड (ईश्वर के लिए युद्ध) और येरुशलम की मुक्ति का आह्वान किया।

ईसाईयों का क्रूसेड यूरोप में यहूदियों के नरसंहार के साथ आरम्भ हुआ। क्रूसेड युद्ध करने वाले चालीस दिनों तक येरुसलम का घिराव करने के बाद 15 जुलाई 1099 को उसमें प्रवेश हुए। एक मुस्लिम इतिहासकार इब्ने असीर के अनुसार उन्होंने 70,000 पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की हत्या की।

आप रेमन्ड अगील की आँखों देखी रिपोर्ट सुनिएः

> वहाँ अद्भुत दृश्य देखे जा सकते थे। हमारे कुछ लोग अपने शत्रुओं के सिर काट कर अलग कर रहे थे; कुछ अन्य लोग तीरों से उन्हें निशाना बना रहे थे ताकि वह मीनारों से गिर पड़ें; कुछ अन्य लोग उन्हें आग की लपटों के हवाले करके अधिक देर तक यातना दे रहे थे ''और यह अधिक दयापूर्ण कार्य था''।

शहर की गलियों में कटे हुए सिरों, पैरों और हाथों के ढेर देखे जा सकते थे। पुरुषों और घोड़ों के शव से गुजरने के लिए अपना रास्ता बनाने की आवश्यकता होती थी। लेकिन सोलोमन टेम्पुल में जो कुछ हुआ उसकी तुलना में यह एक छोटा मामला था। सोलोमन टेम्पुल ऐसा स्थान है जहाँ सामान्य रूप से धार्मिक सेवाएँ सम्पन्न की जाती थीं। वहाँ क्या हुआ? यदि मैं सच्चाई बताऊँ तो यह विश्वास की सीमा से अधिक हो जाएगा। इसलिए मुझे इतना ही कहने पर बस करने दीजिए कि वहाँ कम से कम यह हुआ कि उस टेम्पुल और सुलेमान के पोर्च में लोग इस तरह सवारी कर रहे थे कि खून उनके घुटनों और घोड़ों की लगाम तक था। वास्तव में यह एक शौक़ और खुदा का एक शानदार न्याय था कि यह स्थान अधर्मियों के खून से भर जाए इसलिए कि यह स्थान उनके निन्दापूर्ण कर्मों को लम्बे समय तक झेलता रहा है।''

पवित्र भूमि में अन्य स्थानों पर क्रूसेड युद्ध करने वालों ने मुसलमानों को बड़े बर्तनों में उबाला। बच्चों को लोहों की सीकों में गोदकर भूना और सारासेन्स के अधर्मियों का शिकार करने के लिए देहातों में घूमते थे।

जब दूसरे ख़लीफा हज़रत उमर (रज़ि0) ने 638 ई0 में येरुसलम पर अधिकार प्राप्त किया तो क्रूसेड युद्ध करने वालों के विपरीत उन्होंने ईसाइयों और यहूदियों के साथ अत्यधिक सम्मानपूर्ण व्यवहार किया। किसी को कोई चोट या क्षति नहीं पहुँचायी गयी। जब हज़रत उमर ईसाई राजा से मिले तो आपने उसे भरोसा दिलाया कि शहर के नागरिकों के जान-माल का सम्मान किया जाएगा और उससे ईसाइयों के पवित्र स्थलों की तरफ ले चलने के लिए कहा । इस दौरे के दौरान नमाज़ का समय आ गया। उस समय वह लोग पवित्र मक़बरे वाले चर्च में थे। उमर ने ईसाई राजा से नमाज़ के लिए अनुमति माँगी। राजा ने उमर को ठीक वहीं पर नमाज़ पढ़ने के लिए कहा जहाँ वह खड़े थे। हज़रत उमर ने उत्तर दियाः 'यदि मैं यहाँ पर नमाज़ पढ़ता हूँ तो मुसलमान इस स्थान को यह कहकर अपने अधिकार में लेना चाहेंगे कि ''उमर ने यहाँ नमाज़ पढ़ी थी''। फिर आप नमाज़ की चटाई अपने हाथ में लेकर बाहर चले गये। और खुली ज़मीन पर नमाज़ पढ़ी।

मुसलमानों ने येरुसलम पर 2 अक्टूबर 1187 को एक बार फिर अधिकार कर लिया। जब सलाहुद्दीन अयूबी ने शहर में प्रवेश किया तो उन्होंने अपनी सेनाओं को कठोर निर्देश दिया कि किसी ईसाई को छूआ तक न जायेगा। उन्होंने घोषणा की कि ईसाइयों के पवित्र स्थलों की रक्षा की जायेगी और जो कोई यहाँ ठहरना चाहेगा वह ठहर सकेगा और जो कोई यहाँ से प्रवास करना चाहेगा वह प्रवास कर सकता है। बहुत से

लोगों ने शहर छोड़ दिया और अपने साथ अपनी सम्पत्ति ले गए। येरुसलम के राजा ने स्वयं पवित्र मक़बरे के चर्च पर स्वयं धावा मारा। अनेक चार्पेट सोना, कालीन, अन्य कीमती सामान भरकर ले गया।

सलाहुद्दीन अयूबी के साथी विछुब्ध थे। इमाम सलाहुद्दीन अल अस्फहानी जो सलाहुद्दीन अयूबी के कोषाध्यक्ष थे, वह स्वयं भी क्रोध में थे।

मैंने सुल्त्तान से कहाः 'यह राजा कम से कम दो लाख दीनार की सम्पत्ति अपने साथ लेकर जा रहा है। हमने उन्हें व्यक्तिगत सम्पत्ति अपने साथ ले जाने की अनुमति दी थी लेकिन गिरिजाघरों और कान्वेन्ट की सम्पत्ति को ले जाने की अनुमति नहीं दी थी, आपको उन्हें ऐसा नहीं करने देना चाहिए'। लेकिन सलाहुद्दीन ने उत्तर दियाः 'हमने जिस सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किए है उसको लागू करना चाहिए ताकि कोई भी ईमानवालों पर यह आरोप न लगा सके कि उन्होंने सन्धि का उल्लघंन किया है। इसके विपरीत ईसाइयों पर हमने जो कृपा की है उसे याद रखेंगे।''

इसके विपरीत ईसाइयों ने हर जगह सलाहुद्दीन अयूबी का चित्रण एक हिंसक अधर्मी के रूप में किया है जो बच्चों को खाता था, ईसाई रक्षकों की हत्या करता और ईसाई पवित्र स्थलों को नष्ट करता था।

यूरोप के इस्लाम बोध पर क्रूसेड योद्धाओं का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। क्रूसेड युद्धों ने इस्लाम का प्रचार एक बुराई के रूप में किया जो यूरोप का अन्धकारपूर्ण पक्ष है। एक बर्बर, अनैतिक, दुष्ट, उग्र, अज्ञानी, मूर्ख, म्लेच्छ और पतित के रूप में मुसलमानों का विशेष चित्रण यूरापीय चिन्तन, साहित्य और दृष्टिकोण का अविभाज्य अंग बन गया। साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत यह प्रवृत्ति जारी रही और विकसित होती रही और समय-समय पर हमारे युग में इसे बार-बार उछाला जाता रहता है।

3. ओरिएन्टलिज्म

इस्लाम के ग़लत चित्रण को उचित ठहराने और उसे शोधपूर्ण आधार उपलब्ध कराने के लिए विशेष विधाओं को विकसित किया गया। मानव समाज के अध्ययन 'ऐन्थ्रोपोलोजी' का विषय इसलिए अस्तित्व में आया कि सभी ग़ैर पश्चिमी सभ्यताओं का अध्ययन करके उसे पश्चिमी समाज का अपूर्ण और आदिम संस्करण बताया जाए। मानव समाज के अनेक उपनिवेशवादी शोधार्थियों के हाथों इस्लाम को प्रत्याशित नस्लीय व्यवहार झेलना पड़ा। पूर्ववाद(ओरिएन्टलिज्म) को विशेष रूप से इसलिए विकसित किया गया ताकि इस्लाम को भय और घृणा के रंग में प्रस्तुत करने को एक स्वीकार्य उद्देश्य और

एकेडमिक ढाँचे में रंगा जा सके।

पूर्ववेत्ता लेखक जो अधिकतर पुजारी वर्ग में से ही हुआ करते थे उन्होंने 15वीं सदी से ही इस्लामी इतिहास को पुनः लिखने का काम आरम्भ किया था ताकि इस्लामी स्रोतों का विवरण बुरे और भद्दे रूप में प्रस्तुत किया जा सके और मुस्लिम समाजों को मूर्ख और बचकाना बुरे चरित्र प्रदान प्रदान किये जा सकें। क़ुरआन को एक बार-बार ग़ैर अतार्किक, एक बात बार-बार कहने वाली हिंसक किताब के रूप में विश्लेषण किया गया जिसकी बातों का नतीजा कम ही निकलता है। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) को लगातार एक नैतिकताविहीन और बुराईयों को वैध करने वाले व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया , मुस्लिम चिन्तन और विद्या को दबाया गया और उसे विज्ञान के इतिहास में से मिटा दिया गया।

पूर्ववेत्तावाद एक शोध व्यवस्था मात्र नहीं है बल्कि यह इस्लाम के प्रति एक दृष्टिकोण भी है। यूरोपीय यात्रियों, उपन्यासकारों, कलाकारों ने व्यापक साहित्य की रचना की है और ऐसे चित्र तैयार किए हैं जिनमें इस्लाम को कामुकता और हिंसा के एक बर्बर मिश्रण के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसका जादू, अन्धविश्वास, नशीले पदार्थों और रूपों को विकृत करने वाले भण्डार के रूप में वर्णन किया गया है। अनेक लेखक फ्लीचार्ड बर्टन (मृ0 1890), इसाबेल इबरहार्ट (मृ0 1904), टी.ई. लारेन्स (मृ0 1935)- मुस्लिम देशों में या तो गुप्तचर के रूप में गए या कामुकता के लिए गए जिसके लिए उन्हें यूरोप में अवसर नहीं मिलता।

4. मुस्लिम विद्याओं का यूरोप में प्रसार

15वीं सदी तक ज्ञान का प्रवाह पूर्णतः इस्लाम से यूरोप की ओर था। मुस्लिम विद्वानों की रचनाओं का अनुवाद लगातार लैटिन और अन्य यूरोपीय भाषाओं में किया जाता रहा और उनका उपयोग पाठ्य पुस्तक और व्यावहारिक मैनुअल के रूप में किया जाता रहा। यूरोपीय विद्वान और चिन्तक नियमित रूप से विद्या के मुस्लिम केन्द्रों में जाया करते। यूरोपीय छात्र कर्तबा, फेज़, काहिरा, बग़दाद, समरकन्द, जैसे शिक्षा केन्द्रों पर उसी तरह महान विशेषज्ञों से शिक्षा प्राप्त करने जाते थे जिस प्रकार आज मुस्लिम छात्र उच्च शिक्षा के लिए यूरोप और उत्तरी अमेरिका में जाते हैं। अरबी भाषा, विज्ञान और सभ्यता की भाषा थी और जो लोग विद्या और अध्ययन में आगे बढ़ना चाहते थे वह मुस्लिम विद्वानों की तरह पहनावा पहनने की कोशिश करते थे। यूरोपीय पुनर्जागरण और विज्ञान, तकनीक, आयुर्विज्ञान, शोध और मानवतावाद में जो सारा विकास हुआ है वह मुस्लिम

शोधकत्ताओं और चिन्तकों के द्वारा ही किया गया है।

वास्तव में पुनर्जागरण की कल्पना मुस्लिम सभ्यता के योगदान के बिना नहीं की जा सकती। इस वास्तविकता को कम ही स्वीकार किया जाता है। इसके विपरीत मुस्लिम शोधकर्त्ताओं और वैज्ञानिकों की उपलब्धियों की बार-बार चोरी की जाती है और जानबूझ कर सुनियोजित ढंग से उनको कमतर बताया जाता है और उसे किनारे कर दिया जाता है।

यूरोप को इस्लाम का डर

मीनू रिब्स अपनी किताब ''मुहम्मद इन यूरोप'' में ठीक ही लिखती हैं:

''इस्लाम यूरोप के लिए केवल सैनिक चुनौती ही नहीं था बल्कि एक विचारधारा और नैतिकता की चुनौती भी था। क्योंकि इसने एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था। अरब दुनिया बौद्धिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में यूरोप का उपहास कर सकती थी। इस्लामी दुनिया ईसाई पश्चिम से चिकित्सा, गणित और भौतिक विज्ञान के कुछ पहलूओं जैसे दृष्टि व प्रकाश विज्ञान, खगोल विज्ञान, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान और अन्य प्राकृतिक विज्ञानों में बहुत आगे था। भारतीय 'शून्य' को अपना कर अरबों ने गणितीय अभ्यासों को अत्यधिक सरल बना दिया था ओर उन्होंने गणित में नयी शाखाओं को विकसित किया जैसे बीजगणित, विश्लेषणात्मक रेखागणित और गोलीय त्रिकोणमिति। सन् 1600 तक यूरोप में आयुर्विज्ञान की मुख्य पाठ्य पुस्तक, 11वीं सदी के फारसी वैज्ञानिक और दार्शनिक इब्ने सीना द्वारा लिखित कैनन ऑफ मेडीसिन थी। इब्न-ए सीना की मात्रृभूमि मौजूदा ईरान तेज़ी से फैलते हुए इस्लामी यूरोप का अंग बन गयी थी। अरबों ने स्पेन और सिसली में अनुवाद की संस्थाएँ स्थापित कीं, जिसने ग्रीक, सीरियाई, फारसी और संस्कृत किताबों की वैज्ञानिक पूँजी को अरबी भाषा में अनुवाद कराया। फिर अरबी से इन किताबों का लैटिन में अनुवाद हुआ। शोध को आगे बढ़ाने के लिए अनुवाद-संस्थाओं के साथ-साथ पुस्तकालयों और खगोलीय प्रयोगशालाओं के साथ विज्ञान के बड़े-बड़े हॉल बनाए गए। इस प्रकार स्पेन और सिसली पूर्व और पश्चिम के बीच बौद्धिक और वैज्ञानिक आदान-प्रदान के दो बड़े केन्द्र बन गए जिन्होंने विशेष रूप से यूरोपीय 'मानवतावाद' और पुनर्जागरण के उदय में महत्वपूर्ण योगदान दिया।''

लेकिन रेगिस्तान में रहने वाले इन बद्दू लोगों ने, जिनकी सभ्यता क़बायली जीवन में शुरु हुई थी, इतना उच्च स्तर, सुविज्ञता और ज्ञान का स्तर इतने कम समय में किस प्रकार प्राप्त कर लिया? इसका उत्तर साधारण है। ताज़ापन या नये धर्म ने अरबों को इस योग्य बनाया कि वह अपने धर्म को अरब प्रायद्वीप की सीमाओं से बाहर फारस,

ग्रीस और बैज़न्टीन साम्राज्य की अत्यधिक सुसंस्कृत दुनिया में ले गये। उनको फारस और ग्रीस के दर्शन की चौंधिया देने वाली बौद्धिक सम्पत्ति विरासत में मिली और वह विशेष रूप से फारस के रईसों के दरबारी रख-रखाव की आदतों और परम्पराओं को नक़ल करने में बहुत कुशल थे, जिसके पहलूओं को उन्होंने दक्षिणी यूरोप में परिचित कराया। इस प्रकार यूरोप के लोग मुस्लिम संस्कृति की श्रेष्ठता के अधिक से अधिक क़ायल हो गए लेकिन मुसलमानों की इस श्रेष्ठता ने उन्हें इर्ष्यालु और विरोधी बना दिया। परिणामस्वरूप इस निरन्तर बढ़ती हुई सफलता का आरम्भ करने वाले और इसको प्रेरित करने वाले पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) उनके जीवन के सभी क्षेत्रों में उनके मन पर छाने लगे। मध्यकालीन यूरोप के (यूरोपीय इतिहास में मध्य युग या मध्यकालीन युग पाँचवीं सदी से पन्द्रवीं सदी तक रहा। यह पश्चिमी रोमन साम्राज्य के पतन से शुरु होता है) इस्लाम के डर ने इसे और पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) को राक्षस के रूप में प्रस्तुत करने पर प्रेरित किया। मुसलमानों को इस बात पर विचार करने के लिए पर्याप्त प्रयास करना चाहिए कि जिस यूरोप ने उनसे बहुत कुछ उधार लिया था वह काफी आगे निकल गया, जबकि मुस्लिम राज्य निष्क्रिय हो गए। ऐतिहासिक रूप से मुस्लिम दुनिया में बौद्धिक निष्क्रियता से पहले पश्चिमी साम्राज्यवाद आया और उसने अवरोध डालकर इसके विकास की गति को कठिन बना दिया। पश्चिम में इस्लाम और इसके पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की निन्दा, जो उस समय प्रारम्भ हुई थी जब मुस्लिम दुनिया पुनः जागृत हो रही थी, रुकी नहीं क्योंकि यूरोप बढ़त प्राप्त कर चुका था। यूरोप ने तेज़ धार हासिल कर ली और अधिक आत्म-विश्वास प्राप्त कर लिया, जिसने मुस्लिम क्रोध को ईधन उपलब्ध कराया।

(मीनू रिब्स, मुहम्मद इन यूरोपः ए थाउज़ैन्ड ईयर्स ऑफ वेस्टर्न मिथ मेकिंग, एन. वाई.यू. प्रेस, 2001)

5. उपनिवेशवाद

जिन यूरोपीय शक्तियों- ब्रिटेन, फ्राँस, हालैण्ड- ने मुस्लिम दुनिया को अपनी कॉलोनी बनाया, उन्होंने कुछ थोड़े बहुत अन्तर के साथ एक निर्धारित पैटर्न के अनुसार व्यवहार किया। मुस्लिम दुनिया को हथियाने की नीति बाँटो और जीतो पर आधारित थी। उदाहरण के लिए भारत के एक शासक को दूसरे शासके के विरुद्ध यहाँ तक प्रयोग करना कि उसकी शक्ति क्षीण हो जाए और ब्रिटिश सेनाएँ मुगल साम्राज्य को आसानी से निगल सकें। सन् 1857 में लड़ा गया स्वतन्त्रता संग्राम भारतीय जनता की ओर से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेकने का अन्तिम प्रयास था जो बुरी तरह असफल रहा। भारत

के अन्तिम मुग़ल सम्राट बहादुर शाह ज़फर स्वतन्त्र व्यापार के लिए अधिक उत्सुक नहीं थे और वह ब्रिटिश व्यापार कम्पनियों को इसकी स्वतन्त्रता देने में हिचक रहे थे क्योंकि उनकी नीयत पर उन्हें सन्देह था। उनके सन्देह सही सिद्ध हुए।

भारत के लोगों को सभ्य बनाने की उनकी नीयत का पहला प्रमाण यह था कि ब्रिटिश सेनाओं ने उनके सामने उनके समूचे परिवार के सिर काटकर चाँदी के थाल में सजाकर प्रस्तुत किया। बहादुर शाह ज़फर को रंगून निर्वासित कर दिया गया जहाँ दयनीय निर्धनता में उनकी मृत्यु हो गयी और उन्होंने उर्दू साहित्य की कुछ महान कविताएँ वहाँ लिखीं।

अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद उपनिवेशवादी शक्तियों ने सुनियोजित रूप से मुस्लिम समाजों को उनकी सभी विद्याओं और विशेष ज्ञान को छीन लिया। उपनिवेशवादी शासकों ने सबसे पहले जो काम किए उनमें से एक यह था कि उन्होंने बौद्धिक कार्यों, विद्याओं और शैक्षिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उदाहरण के लिए जब डच सेनाओं ने सन् 1595 में इण्डोनेशिया पर अधिकार प्राप्त किया तो उन्होंने सभी मदरसों, कॉलेजों और पुस्तकालायों को बन्द कर दिया और शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सन् 1850 में डच शासकों ने अपने उद्देश्यों के लिए जो पुस्तकालय स्थापित किए, उनमें प्रवेश पर स्थानीय लोगों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। वे स्थानीय लोगों को केवल प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति देते थे लेकिन उन्हें माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने से अब भी रोकते थे। इसके बाद इस्लामी आयुर्विज्ञान को नष्ट किया गया। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक फ्राँसीसी चिकित्सक को चिकित्सा कार्य करने के लिए ट्यूनिस में मुस्लिम चिकित्सकों के मुखिया से अनुमति लेने की आवश्यकता होती थी। शताब्दी के अन्त तक फ्राँसीसी उपनिवेशवादी प्रशासकों ने इस्लामी चिकित्सा को दूसरे स्तर की चिकित्सा पद्धति में वर्गीकृत किया और फिर इसको बुरी तरह कुचलने के लिए आगे बढ़े। अन्त में इस्लामी चिकित्सा व्यवस्था को पूरी मुस्लिम दुनिया में ग़ैर क़ानूनी घोषित कर दिया गया।

उपनिवेशवाद का विकास

उपनिवेशवादी सेनाओं ने जिन क्षेत्रों को अपनी कॉलोनी बनाया, उन क्षेत्रों के मुस्लिम समाजों की प्रत्येक वस्तु को उन्होंने लूट लिया और अधिकतर उन्होंने सम्पूर्ण स्थानीय कच्चे माल को अपने मूल देश में स्थानान्तरित करने के लिए एक स्थायी ढाँचे का निर्माण किया।

उदाहरण के लिए उत्तरी इंग्लैण्ड की सूत मिलें भारतीय सूत व्यवसाय के खण्डहरों पर बनायी गयीं। उपनिवेशवाद और औद्योगिक क्रान्ति को एक-दूसरे से जोड़ा गया।

यूरोपीय शासकों ने एक विशेष वर्ग को विकसित किया जो सामान्य रूप से नौकरशाहों का वर्ग था और इस वर्ग को उन्होंने अपने स्थानीय प्रतिनिधि के रूप में प्रयोग किया। जब मैकाले ने भारतीय शिक्षा के विवरण 1835 में लिखे तो उसने अन्य उपनिवेशवादी शासकों का आह्वान कियाः हमें इस समय एक ऐसे वर्ग को विकसित करने का सम्पूर्ण प्रयास करना चाहिए जो हमारे और उन करोड़ों लोगों के बीच अनुवादक का काम करे जिनपर हम शासन कर रहे हैं; यह ऐसे लोगों का वर्ग हो जो अपने खून और रंग के अनुसार तो भारतीय हों लेकिन अपने स्वाद, दृष्टिकोण, नैतिक मूल्यों और बुद्धि के अनुसार अंग्रेज हों।

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया और डच ईस्ट इण्डीज़ कम्पनी मुस्लिम दुनिया में स्वतन्त्र बाजार के निवेशक थे। उन्हें विभिन्न मुस्लिम शासकों द्वारा स्वतन्त्र व्यापार करने की छूट दी गयी थी। लेकिन उनके व्यापार में विजय और विस्तारवाद सम्मिलित थे।

दुनिया के मुस्लिम समाज एक प्रयोगशाला बन गए जहाँ सांस्कृतिकरण का शौक रखने वालों और विज्ञान में विश्वास रखने वाले नव-आधुनिकतावादी मिशनरियों ने विकास और गोरी नस्ल के लोगों के बोझ के साथ मुस्लिम समाजों पर हर तरह की स्वतन्त्रता दिलाने वाली अन्वेषणकारी शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नीतियों का परीक्षण किया।

उपनिवेशवाद ने मुस्लिम सभ्यता की ईट से ईट बजा दी। इसने केवल मुसलमानों के शरीर पर ही अधिकार नहीं किया बल्कि इसने मुसलमानों के मस्तिष्क पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया। इसने हर उस चीज़ को कमतर और कम नैतिक मूल्य वाला बताया जिसका सम्बन्ध दूर से भी इस्लाम से निकलता हो। इसने मुस्लिम समाजों की सांस्कृतिक वरीयताओं को बदल दिया। इसने मुस्लिम देशों से धन के प्रत्येक स्रोत को खींच लिया और मुसलमानों को दयनीय निर्धनता में ढकेल दिया।

इस्लाम की समस्या का समाधान करने के पश्चिमी प्रयासों ने मुसलमानों के विरुद्ध अपराधों और अन्यायों की एक ऐसी सूची तैयार की है जिसका विवरण नहीं प्रस्तुत किया जा सकता। इसने इस्लाम की एक ऐसी संस्था तैयार करने की दिशा में मुसलमानों को डाला है कि यूरोपीय चिन्तन और इतिहास में मुसलमानों को पराया और दैत्य घोषित किया जा सके।

(जियाउद्दीन सरदार, इन्ट्रोडयूसिंग इस्लाम, 2009, नेशनल बुक नेटवर्क, आइकन बुक्स लिमिटेड, लन्दन)

हमारे राजनैतिक तन्त्र को साम्प्रदायिक जहर से मुक्त करो

मार्कन्डेय काटजू
(सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश और
प्रेस काउन्सिल ऑफ इण्डिया के अध्यक्ष)

भारतवासियों को उन सभी तत्वों को पराजित कर देना चाहिए जो धार्मिक नफ़रत बढ़ाते और इसके बढ़ाने में भरोसा रखते हैं। यद्यपि भारत में आज अनेक हिन्दू और मुसलमान साम्प्रदायिकता के वायरस से संक्रमित है, वास्तविकता यह है कि 1857 से पहले अधिकतर देशवासियों में साम्प्रदायिक भावनाएँ बिल्कुल नहीं थीं। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कुछ मतभेद थे, लेकिन उनके बीच वैमनस्य नहीं था। हिन्दू ईद मनाने में मुसलमानों के साथ सम्मिलित रहते थे, मुसलमान हिन्दुओं के साथ होली और दीवाली मनाने में सम्मिलित होते थे और वह लोग भाई और बहन की तरह मिलकर रहते थे।

हमारे उपमहाद्वीप में लगभग 150 वर्ष बाद, यदि वैमनस्य नहीं तो, दो प्रमुख सम्प्रदायों के बीच परस्पर सन्देह किस तरह विकसित हो गया? आज भारतीय मुसलमानों को हिन्दुओं से किराये पर घर प्राप्त करने में मुश्किल क्यों हो रही है। जब भारत में कोई बम-धमाका होता है तो पुलिस वास्तविक अपराधियों को पकड़ने में असमर्थ (क्योंकि वैज्ञानिक जाँच के लिए उन्हें प्रशिक्षण नहीं दिया गया है) होने के कारण आधा दर्जन मुसलमानों को गिरफ्तार करके उस अपराध का खुलासा करती है। उनमें से अधिकतर जेल में अनेक वर्ष व्यतीत करने के बाद अन्त में न्यायालय की प्रक्रिया के बाद निर्दोष पाये जाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि देश में मुसलमान अलग-थलग पड़ गए हैं। पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के लिए परिस्थितियाँ इससे भी अधिक बुरी हैं जहाँ वह भय की स्थिति में रहते हैं और वह चरमपंथियों और धार्मिक रूढ़िवादियों से डरे रहते हैं।

वाटरशेड

भारत में विभिन्न सम्प्रदायों के आपसी सम्बन्धों के इतिहास में सन् 1857 में एक नया मोड़ आया। 1857 से पहले साम्प्रदायिक समस्या नहीं थी, साम्प्रदायिक दंगे नहीं होते थे। यह सही है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच मतभेद थे लेकिन एक ही बाप से जन्में दो भाईयों और बहनों में भी मतभेद होते हैं। हिन्दू और मुसलमान शान्तिपूर्वक रहते थे और परेशानी के वक्त दोनों बिना किसी भेदभाव के एक-दूसरे की मदद करते थे।

इसमें सन्देह नहीं कि जिन मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किया उन्होंने बहुत से मन्दिरों को तोड़ा। लेकिन उनके वारिस जो स्थानीय मुसलमान शासक हुए, लगभग सभी साम्प्रदायिक सद्भाव पैदा करते थे। यह काम वह अपने हित में करते थे क्योंकि उनकी प्रजा की एक बड़ी संख्या हिन्दू थी। वह जानते थे कि यदि वह हिन्दू मन्दिरों को तोड़ेगे तो अव्यवस्था फैलेगी और दंगे भड़केंगे, कोई भी शासक ऐसा नहीं चाहता। इसलिए भारत के लगभग सभी मुस्लिम शासकों- मुग़ल, अवध, मुर्शिदाबाद अथवा अरकोट के नवाबों, टीपू सुल्तान अथवा हैदराबाद के निज़ाम-ने साम्प्रदायिक सद्भाव को बढ़ाया।

1857 में पहला स्वतन्त्रता संग्राम छिड़ा, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया। इस विद्रोह को कुचलने के बाद अंग्रेजों ने फैसला किया कि भारत पर नियन्त्रण करने का एक मात्र फार्मूला 'बाँटो और राज करो' है। इस प्रकार भारत के राज्य-सचिव, सर चार्ल्स वूड ने वायसराय लार्ड ऐलगिन को अपने 1862 के एक पत्र में लिखा, "हमनें भारत में अपनी सत्ता को एक सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय के विरुद्ध खड़ा करके कायम रखा है और हमें लगातार ऐसा ही करना चाहिए। अतः इन सबको समान भावना विकसित करने से रोकने के लिए आप जो कुछ कर सकते हैं करिए"।

बाँटो और राज करो

राज्य-सचिव विस्काउन्ट क्रॉस ने जनवरी 14, 1887 को गवर्नर जनरल डफरिन को लिखाः "धार्मिक भावनाओं का बँटवारा अधिकतर हमारे हित में है और भारतीय शिक्षा और शैक्षिक सामग्री की जाँच के लिए गठित आपकी कमेटी के परिणामस्वरूप मैं कुछ भलाई की आशा करता हूँ"।

भारत के राज्य-सचिव जार्ज हेमिल्टन ने गवर्नर जनरल कर्जन को लिखाः ''मैं समझता हूँ कि भारत में हमारे शासन के लिए वास्तविक खतरा धीरे-धीरे पश्चिमी विचारों का भारतीयों में विकास और इनका अपनाना है..... और यदि हम पढ़े-लिखे भारतीयों को दो वर्गों (हिन्दू और मुसलमान) में बाँट सकें..... तो हमें ऐसा करना चाहिए, इस बँटवारे के द्वारा -शिक्षा का प्रसार हमारे सरकारी तन्त्र पर जो लगातार हमले कर सकता है उसके विरुद्ध- हम अपनी स्थिति मजबूत कर सकते हैं। अतः हमें शिक्षा की पाठ्य पुस्तकों की योजना इस प्रकार बनानी है कि दोनों सम्प्रदायों के बीच मतभेद और अधिक बढ़ जाएँ।'' इसलिए 1857 के बाद हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच नफ़रत पैदा करने के लिए एक जानी-बूझी नीति शुरु की गयी। इस काम को कई तरीक़ों से किया गया।

धार्मिक नेताओं को दूसरे समुदाय के विरुद्ध भाषण देने के लिए घूस दिया गयाः

अंग्रेज कलेक्टर चुपके से पण्डित जी को बुलाता और मुसलमानों के विरुद्ध बोलने के लिए उन्हें रुपया देता और इसी तरह वह चुपके से मौलवी को बुलाता और हिन्दुओं के विरुद्ध बोलने के लिए उन्हें रुपया देता।

साम्प्रदायिक नफ़रत पैदा करने के लिए इतिहास की किताबों में छेड़छाड़ की गयी :

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, यह सही है कि आरम्भिक मुस्लिम आक्रमणकारियों ने बहुत से मन्दिरों को तोड़ा, फिर भी उनके वारिसों (जैसे अकबर जो आक्रमणकारी बाबर के वंश से था) जो स्थानीय मुस्लिम शासक थे वह मन्दिरों को तोड़ने के बजाए हिन्दू मन्दिरों को लगातार अनुदान दिया करते थे, रामलीला का आयोजन करते और होली और दीवाली (अवध, मुर्शिदाबाद और अरकोट के नवाबों की तरह) मनाते थे। हमारे इतिहास का दूसरा भाग अर्थात लगभग सभी मुस्लिम आक्रमणकारियों ने, साम्प्रदायिक सद्भाव बढ़ाया। यह तथ्य हमारी इतिहास की किताबों में पूरी तरह दबा दिया गया है। हमारे बच्चों को केवल यह पढ़ाया जाता है कि गज़नी के महमूद ने सोमनाथ मन्दिर को तोड़ा था, लेकिन उन्हें यह नहीं पढ़ाया जाता कि मुगल सम्राट टीपू सुल्तान आदि हिन्दू मंदिरों को अनुदान दिया करते थे और हिन्दू त्यौहार मनाया करते थे। (देखिए बी.एन.पाण्डे की ऑन लाईन किताब 'हिस्ट्री इन द सर्विस ऑफ इम्पेरियलिज्म)

जानबूझकर साम्प्रदायिक दंगे भड़काए गए:

सभी साम्प्रदायिक दंगे 1857 के बाद शुरु हुए। उस वर्ष से पहले कोई दंगा नहीं हुआ था। दंगे भड़काने वाले एजेन्ट धार्मिक नफ़रत कई तरीक़ों से, जानबूझ कर फैलाते थे जैसे नमाज़ के समय मस्जिद के सामने संगीत बजाना, या हिन्दू मूर्तियों को तोड़ना।

ब्रिटिश शासकों द्वारा हमारे राजनीतिक तन्त्र में साल-दर-साल और दशक-दर-दशक योजनाबद्ध ढंग से यह ज़हर घोला जाता रहा, यहाँ तक कि इसका परिणाम 1947 के विभाजन के रूप में हुआ। हमारे समाज के अन्दर अभी ऐसे घृणित तत्व मौजूद हैं जो धार्मिक नफ़रत को बढ़ाते और उसी में अपना हित समझते हैं।

जब भी कोई बम धमाका होता है अनेक टेलीविज़न समाचार चैनल यह कहना शुरु कर देते हैं कि एक ई-मेल या एस.एम.एस. प्राप्त हुआ है जिसमें दावा किया गया है कि इण्डियन मुजाहिदीन, जैश-ए मुहम्मद या हरकतुल जिहाद अल-इस्लामिया ने ज़िम्मेदारी कबूल की है। अब तो ई-मेल या एस.एम.एस सन्देश किसी भी शरारती व्यक्ति द्वारा भेजा जा सकता है, लेकिन इसे दूरदर्शन पर दिखाकर और दूसरे दिन अखबारों में छापकर हिन्दू मन में यह भावना पैदा की जाती है कि सभी मुसलमान आतंकवादी हैं जो बम फेंकते हैं (जबकि सच्चाई यह है कि सभी सम्प्रदायों में से 99 प्रतिशत शान्तिप्रिय और अच्छे लोग हैं)। बाबरी मस्जिद-रामजन्म भूमि आन्दोलन के दौरान मीडिया का एक वर्ग (विशेष रूप से हिन्दी अखबार) कारसेवक बन गया था।

बंगलौर में आतंक

पिछले दिनों, बंगलौर और अन्य शहरों में रहने वाले उत्तर-पूर्वी भारतीयों को एस.एम. एस सन्देश भेजे गए थे। जिसमें कहा गया था कि उन्होंने असम में मुसलमानों की हत्या की है इसलिए बेहतर है कि वह बंगलौर से चले जाएँ अन्यथा उनको मार डाला जाएगा। इससे आतंक फैल गया। जब बंगलौर के मुसलमानों को इस शरारत के बारे में मालूम हुआ तो उन्होंने उत्तर-पूर्वी भारतीयों के लिए एक भोज का आयोजन किया और उन्हें बताया कि यह किसी ने शरारत की है और मुसलमान उत्तर-पूर्वी भारतीयों के विरुद्ध नहीं हैं।

कुछ निहित स्वार्थ रखने वालों द्वारा खेले गए इस घृणित खेल पर विचार करने का समय आ गया है। भारत एक धार्मिक बहुल देश है यहाँ एकता और सम्पन्नता का एक मात्र रास्ता, सभी धर्मों और समाज के सभी वर्गों के प्रति समान रूप से सम्मान करना है।

आधुनिक घृणा

पश्चिमी मानसिकता से घृणा को मिटाने या बुझाने में समय ने कोई भूमिका अदा नहीं की। यह समय के साथ-साथ केवल नये रूपों में परिवर्तित होती गयी। आज पश्चिम, मुस्लिम दुनिया और पूर्वी देशों को दूसरे माध्यमों से समर्पण करने पर बाध्य करना चाहता है। 11 सितम्बर उनके लिए इराक और अफग़ानिस्तान के विरुद्ध सैनिक आक्रमण करने के लिए खुदादाद अवसर दे दिया जिससे उन्होंने हमला करके दो देशों के आर्थिक ढाँचे को धूल में मिला दिया और लाखों निर्दोष लोगों को अत्याचार का शिकार बनाया। इसमें इस्लाम और मुसललमानों को राक्षस के रूप में प्रस्तुत करने के लिए एक नया तूफान खड़ा हो गया। लेकिन इसने मुसलमानों की नयी पीढ़ी को केवल चरमपंथी बनाने में ही सहायता की, जो पश्चिम द्वारा की गयी हिंसा के परिणामस्वरूप अपने बचाव के लिए दीवार से पीठ लगाए रहा। यह स्थिति न तो इस्लाम के लिए अच्छी रही और न दुनिया के लिए, क्योंकि नफरत का मुकाबला रुढ़िवाद से करने का कोई लाभ नहीं। पश्चिम की पूर्वाग्रहग्रस्त और सड़ी हुई तेरह सदियों मे आज भारत, म्यानमार आदि देशों ने खुदरा ग्राहक प्रदान कर दिए हैं जहाँ मध्य युगों में जब मुसलमान इन क्षेत्रों पर शासन करते थे वह जड़ नहीं जमा सका था।

अतीत में पश्चिम ने इस्लाम का मुकाबला विचारधारा और बौद्धिकता के आधार पर करने से परहेज़ किया था। इस्लाम पश्चिमी पाठकों के लिए बहुत साधारण और आकर्षक था और इसपर हमला करना केवल असुवधिाजनक था और ईसाई हठधर्मिता को बढ़ावा देता। इसलिए इसने पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) या कुछ व्यक्तियों जैसे सलाहुद्दीन अय्यूबी पर व्यक्तिगत रूप से हमला करने का चुनाव किया और उन्हें दैत्य और राक्षस के रूप में प्रस्तुत किया और उनकी विचारधारा को स्थायी रूप से दोषपूर्ण बताया। शांति और समझौते का रास्ता उपयुक्त समझ में निहित है और यह पूर्वाग्रहों और मुसलमानों को विशेष रंग में चित्रण करने की बजाए सहानुभूति में निहित है।

जेहाद

जेहाद शायद वह सबसे ज्यादा विवादित और भावनाओं को भड़काने वाला शब्द है, जो पश्चिम के लोग और मीडिया मुसलमानों से जोड़ते हैं। ऐसा कोई दिन व्यतीत नहीं होता जब इस्लाम के आलोचक इस शब्द का प्रयोग न करते हों। कई टीकाकार शब्द 'जेहाद' उद्भव और उपयोग से सहमत नहीं हैं, जिन अर्थों में पश्चिमी मीडिया में प्रयोग होता है और पश्चिमी देशों के स्थायित्व और शान्ति को चुनौती के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

मीडिया ने जेहाद को हिंसा और अत्याचार का पर्यायवाची घोषित करने की पूरी कोशिश की है और उसे अधिकतर ''इस्लाम के विरोधियों के विरुद्ध युद्ध'' के रूप में अनुवाद किया है। यदि ध्यान से देखा जाए तो अरबी की कोई और शब्दावली इससे अधिक ग़लत अर्थों में प्रयोग नहीं हुई है। जेहाद को पवित्र क़ुरआन की शिक्षाओं की रोशनी में देखा जाना चाहिए और इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के कथनों से जोड़कर देखा जाना चाहिए। अरबी भाषा में जेहाद का अर्थ कोशिश और संघर्ष से निकला है। यह शब्द पवित्र जीवन व्यतीत करने की कोशिश, व्यक्तिगत जीवन में धार्मिक मूल्यों को अपनाना और व्यक्तिगत जीवन और अपने आप को आदर्श बनाकर इस्लामी दृष्टिकोण के प्रचार के लिए प्रयोग होता है।

इस तरह जेहाद सामान्य मुसलमानों के लिए अत्यन्त सकारात्मक उद्देश्यों का वाहक है, जिसके माध्यम से वह स्वयं अपने व्यक्तित्व और समाज के कल्याण और भलाई के लिए प्रयासरत होते हैं। अरबी भाषा में भी सामान्य रूप से इस शब्द को प्रयास करने, दौड़-भाग करने और अपने कर्म को सौन्दर्य और पूर्णता के स्तर तक पहुँचाने के लिए प्रयोग करते हैं। यही वह व्यक्तिगत जेहाद है जिसके लिए पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) ने इस शब्द को प्रयोग किया। यह कोशिश, जो एक मोमिन करता है, वह बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और शारीरिक हो सकती है। और इसके अनेक रूप हो सकते हैं। उदाहरण के लिएः

महान जेहाद

इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) की एक हदीस में बताया गयाः वृहत्तर जेहाद स्वयं अपने आप के विरुद्ध संघर्ष है अर्थात अपने गर्व, अपने लोभ से लड़ना और वासनात्मक इच्छाओं पर नियन्त्रण पाना है। इसके अर्थ में सामाजिक बुराईयों से लड़ना और उनको मिटाना भी सम्मिलित है।

जेहाद का उद्देश्य समाज में शान्ति की स्थापना के लिए हर तरह के आक्रामकता, अत्याचार, अन्याय के विरुद्ध लड़ना और उनके बदले भलाईयों, न्याय और शान्ति की स्थापना का प्रयास करना है। यदि इस्लाम शान्ति है जो जेहाद उसको प्राप्त करने का माध्यम है।

यदि जेहाद का अत्यन्त सन्तुलित रूप या अर्थ लेना हो तो उससे तात्पर्य व्यक्तिगत जीवन में ईश परायणता और सामाजिक जीवन में न्याय की स्थापना है।

हुनैन के युद्ध से वापस होते हुए इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) ने अपने सहाबा को सम्बोधित करते हुए कहा था, हम एक छोटे जेहाद से बड़े जेहाद (अर्थात अपने आप के सुधार और पाश्विक प्रवृत्तियों से संघर्ष) की ओर लौट रहे हैं। एक साथी ने पूछाः बड़ा जेहाद कौन सा है ऐ अल्लाह के पैग़म्बर ?

हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) ने उत्तर दियाः यह अपनी इच्छाओं के विरुद्ध लड़ना है, अपने गर्व को नियन्त्रण में लाना है और इच्छाओं और वसवसों पर काबू पाना है। हम चाहे मुसलमान हों या गैर मुस्लिम, यह आन्तरिक संघर्ष अत्यन्त कठिन होता है। अपने विरुद्ध लड़ने के लिए अपनी कमियों पर काबू पाना और अपने अन्दर उन अच्छे गुणों को पैदा करना आवश्यक है, जो इस महान जेहाद के लिए अनिवार्य है।

सर्वोत्तम जेहाद

सबसे उच्च स्तर का जेहाद एक अत्याचारी और दमनकारी शासक के सामने सच्चाई की बात कहना है।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) ने अपने अनुयायियों को अत्याचार और अत्याचारियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने का उपदेश दिया। क़ुरआन में फरमायाः पीड़ितों के मित्र बनो

और अत्याचारी शासकों के अत्याचार और उनके भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष करोः
''तुम्हें क्या हुआ है कि अल्लाह के मार्ग में और उन कमज़ोर पुरूषों, औरतों और बच्चों के लिए युद्ध न करो, जो प्रार्थनाएं करते हैं कि ''हमारे रब! तू हमें इस बस्ती से निकाल, जिसके लोग अत्याचारी हैं। और हमारे लिए अपनी ओर से तू कोई समर्थक नियुक्त कर और हमारे लिए अपनी ओर से तू कोई सहायक नियुक्त कर।''

(सूरः निसा, आयत 75)

निम्न जेहाद

इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) ने सैनिक शक्ति के प्रयोग को निम्न जेहाद घोषित किया। इस अर्थ में यह शब्द अपने बचाव और इस्लाम और मुसलमानों की रक्षा के लिए प्रयोग होता है। चूँकि मदीना में संगठित हो रहा मुस्लिम समाज मक्का के मुश्रिकों की ओर से हर पल खतरे और आक्रमण की छाया में जीवन व्यतीत कर रहा था, और इस नवगठित मुस्लिम समाज की सुरक्षा और स्थायित्व को खतरा था, इसलिए पवित्र क़ुरआन की अनेक आयतें और हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) के आदेशों ने इस समाज की सुरक्षा और स्थायित्व की चिन्ता केन्द्रीयता लिए हुए है। आने वाले दिनों में जब इस्लाम फैलता चला गया तो उसने इन खतरों का अच्छी तरह मुकाबला करने की व्यवस्था भी कर ली और अपनी जड़े मज़बूत कर लीं।

निम्न जेहाद की तुलना हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) ने उस सैनिक प्रतिरोध से की है जिसमें न्याय की स्थापना के लिए रक्षात्मक युक्तियाँ अपनायी जाती हैं और इस्लाम की सुरक्षा और शान्ति की स्थापना की कोशिश की जाती है।

यह एक स्वीकृत सिद्धान्त है कि आक्रमण की स्थिति में हर सरकार और राज्य को बचाव और सुरक्षा का अधिकार प्राप्त होता है। यह रक्षात्मक लेखों, मीडिया, द्विपक्षीय वार्त्ताओं अर्थात बातचीत, कूटनीतिक प्रयास, सन्धियों और शान्ति के लिए बातचीत के माध्यम से भी होता है। लेकिन इन प्रयासों से अत्याचार समाप्त न हो तो सरकार या राज्य को अधिकार है कि वह अपने बचाव के लिए सशस्त्र प्रयास करे। अन्तर्राष्ट्रीय कानून में भी राज्यों को अपनी रक्षा के लिए सशस्त्र संघर्ष का अधिकार स्वीकार किया गया है और लोगों को यह अधिकार प्राप्त है कि वह आक्रामक सेनाओं के विरुद्ध हथियार उठा लें।

लेकिन यह मन में रखना चाहिए कि जेहाद किसी आक्रमण के लिए या दूसरे राज्यों की ज़मीनों पर अधिकार करने के लिए नहीं हो सकता। यह एक नैतिक कर्त्तव्य है जिसके लिए कुछ शर्तों का पूरा करना आवश्यक है। पहली शर्त यह है कि जेहाद प्रतिरोध के इस्लामी कानूनों के अन्तर्गत हो। इसका अर्थ यह है कि औरतों, बच्चों, कमज़ोर लोगों, बूढ़ों और जो युद्ध में सम्मिलित न हों, उनके विरुद्ध कोई कारवाई नहीं होगी और उनको कोई हानि नहीं पहुँचाया जाएगा। लोगों की सम्पत्ति, घर, व्यापारिक सामान, अनाज, जल भण्डार और पूजा स्थलों को कोई हानि नहीं पहुँचाई जाएगी। लोगों का अपहरण, कैदी बनाना, नागरिकों पर बिना किसी भेदभाव के आक्रमण और फायरिंग करना, कारखानों पर बम गिराना और आग लगाने से पूरी तरह बचा जाएगा। इस्लाम उपरोक्त बातों से कठोरतापूर्वक मना करता है। यह सभी कार्य आतंकवाद के अन्तर्गत आएँगे। जेहाद की घोषणा किसी भी व्यक्ति का अधिकार नहीं। यह केवल कोई इस्लामी राज्य स्पष्ट रूप से जाने-पहिचाने दुश्मन, देश या तत्वों के विरुद्ध अपनी जनता की इच्छा से करेगी। इसलिए आज के किसी तथाकथित गिरोह को यह अधिकार नहीं कि वह जेहाद की घोषणा करे। इसके अतिरिक्त इनकी योजनाओं में निर्दोषों की जान लेना जन यातायात को हानि पहुँचाना और जहाजों का अपहरण करना सम्मिलित है जो अत्यन्त निन्दनीय कार्य है। जिनका इस्लाम और जेहाद की विचारधारा से कोई सम्बन्ध नहीं।

इन सभी बातों की रोशनी में यह कहना उपयुक्त होगा कि कुछ शरारती और भ्रामक तत्वों की शर्मनाक हरकतों को जेहाद कहना बिल्कुल ग़लत होगा। कुछ अलोकतान्त्रिक और एकाधिकारवादी शासकों द्वारा शासित सरकारों द्वारा भी जेहाद की घोषणा इसी वर्ग में आएगी। पूर्व संगीतकार स्टीवेन्स जो इस्लाम कबूल करने के बाद यूसुफ इस्लाम बन चुके हैं, कहते हैं किः कुछ बहके हुए मुसलमानों की शरारत भरी कारवाईयों को इस्लामी जेहाद कहना कठोर भूल होगी। अधिकतर मीडिया ऐसे लोगों को ही इस्लाम का प्रवक्ता और प्रतिनिधि बनाकर प्रस्तुत करता है। यह ऐसा ही है जैसे कि किसी नशे में धुत ड्राइवर की खतरनाक ड्राईविंग को कार की खराबी और कमी बताया जाए।

इस्लामी दृष्टिकोण के अनुसार सैनिक प्रतिरोध के नियम होते हैं। प्रथम ऐसे युद्ध की घोषणा नियमित रूप से सरकार ही करेगी जो अपना संवैधानिक अधिकार रखती

हो। दूसरे ऐसी सरकार का इस्लामी सिद्धान्तों, युद्ध नियमों और सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों से अवगत होना आवश्यक होगा। इस बात की भी समझ होनी चाहिए कि इन नियमों की अवहेलना करने की स्थिति में ऐसा प्रतिरोध जेहाद की परिभाषा में नहीं आएगा।

मुसलमानों में से कुछ भटके हुए तत्वों की शरारतपूर्ण हरकतों को जेहाद समझना सरासर अन्याय होगा। इस्लाम की उपयुक्त समझ मात्र उसके नियमों के माध्यम से ही प्राप्त हो सकती है जिसका स्पष्टीकरण क़ुरआन और पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की हदीसों में कर दिया गया है।

सामाजिक जेहाद

आज के युग में सिविल सोसायटी संगठनों की गतिविधियों को सामाजिक जेहाद कहा जा सकता है। यह स्वयंसेवी संगठन समाज से सामाजिक बुराईयों को मिटाने के संघर्ष में लगे हुए हैं। यदि कोई सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा के विकास, शैक्षिक जागृत्ति और लोगों के व्यवहार में परिवर्तन के लिए संघर्ष करता है, वातावरण की सुरक्षा, बच्चों के बीच सत्र में स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति को मिटाने, मदरसों के पाठ्यक्रम में संसोधन और उनका आधुनिकीकरण, नशे के आदी लोगों का सुधार, देहात के ऋणी व्यक्तियों की मुक्ति, निर्माण कार्य में लगे मजदूरों के बच्चों के लिए उनके प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना, यात्रियों के लिए बसेरे और सराय का निर्माण, वक्फ़ सम्पत्तियों की रक्षा, बेघर लोगों के लिए आवासीय मकान उपलब्ध कराना, नाबालिग कैदियों का सुधार और काउन्सिलिंग आदि सभी सामाजिक जेहाद में सम्मिलित हैं।

इस्लाम की इस मौलिक विचारधारा का यह स्पष्टीकरण आज के आधुनिक संसार में नयी रोशनी का प्रवाह करता है। सभी मुसलमान इस बिन्दु से परिचित हैं कि इस्लाम पर अमल, नमाज़, रोज़ा, हज और ज़कात पर आधारित नहीं। जीवन का हर कर्म जो अल्लाह के गुणगान से भरा हुआ हो वह उपकार और इबादत है। क़ुरआन स्पष्ट शब्दों में कहता है, अल्लाह पर ईमान लाओ और अच्छे कर्म करो।

अतः हर तरह का उपकार, भला कर्म, आतिथ्य सत्कार और दान का परामर्श

दिया गया है। जबकि अन्याय के विरुद्ध संघर्ष सामाजिक जेहाद में सम्मिलित हैं। पवित्र क़ुरआन का कहना हैः

''ईमान लाओ अल्लाह पर उसके पैग़म्बर पर और जेहाद करो अल्लाह के मार्ग में अपने मालों से और अपनी जानों से। यही तुम्हारे लिए बेहतर है यदि तुम जानो।'' (सूरः सफ्फ, आयत 11)

मुसलमान को यह निर्देश दिया गया है कि वह अपने जीवन, संसाधन और अपनी सम्पत्ति प्रत्येक को अच्छे काम और उद्देश्य में खर्च करे और उनको कल्याणकारी योजनाओं में लगाए। अपने व्यापक अर्थों में अल्लाह के मार्ग में संघर्ष का अर्थ हमारे सारे संघर्ष को और अपने मालों को मनुष्यों की कठिनाईयों को हल करने के लिए, शोषण के अन्त के लिए, ग़रीबी, बेरोजगारी, निरक्षरता और अपराधिक गतिविधियों की रोकथाम और अन्त के लिए प्रयोग करना भी सामजिक जेहाद में सम्मिलित है। इन सभी के लिए निरन्तर संघर्ष और सभी व्यक्तियों की भागीदारी आवश्यक है।

हमें यह देखना होगा कि हममें से कितने लोग ऐसे हैं जो अपने दरवाज़े से आगे बढ़कर पूरी ईमानदारी के साथ अपने आप को इन कामों और सामाजिक बुराईयों को मिटाने के लिए प्रस्तुत करना चाहते हैं। हम इस वास्तविकता को अधिकतर भूल जाते हैं कि हमारे सामाजिक संघर्ष का पहला मैदान हमारे आस-पास का समाज है। हमारा पड़ोस और हमारी गली, गाँव और मोहल्ले हैं।

मिस्र के एक बुद्धिजीवी हसनुल बन्ना शहीद ने कहा था किः

''अल्लाह की राह में जान देना बहुत कठिन है लेकिन अल्लाह के बताए हुए तरीके पर जीवन व्यतीत करना और भी कठिन है।''

इस्लाम का यही सन्देश है कि हर इंसान अल्लाह के बताए हुए तरीके पर जीवन व्यतीत करे और इसी में उसकी सफलता निहित है।

पैग़म्बर (सल्ल0) की युद्ध धारणा

इस्लाम से पहले और ग़ैर इस्लामी युद्ध मात्र लूटमार, कत्ल, हिंसा और अत्याचार पर आधारित युद्धों से अधिक हैसियत नहीं रखते थे। इन युद्धों का उद्देश्य विजय प्राप्त करना, कमज़ोरों का शोषण करना, घरों, फसलों, खेतों और खलिहानों, यहाँ तक कि सभी गाँव तथा कस्बों को नष्ट करना होता था। इनके लिए युद्ध औरतों के सतीत्व और पवित्रता से खिलवाड़ करना, बूढ़ों, बच्चों और जानवरों से कठोरतापूर्ण व्यवहार करना और धरती पर उपद्रव और फसाद फैलाने का मात्र माध्यम हुआ करते थे। नैतिक सिद्धान्तों की सीमा में रहकर युद्ध करने की विचारधारा लंबे समय से मानव चेतना से मिट चुकी थी।

इस्लामी युद्ध इस्लाम से पहले के युद्धों और ग़ैर इस्लामी युद्धों से पूर्णतः भिन्न हैं। इस्लाम के अन्दर युद्ध एक ऐसे समाज की स्थापना के लिए अल्लाह की राह में महान और पवित्र संघर्ष करना है जो मानवता को बर्बरता, हिंसा और दमन से मुक्त करना चाहता है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) ने इस्लाम से पहले के युद्धों और ग़ैर इस्लामी युद्धों के पैमानों और उद्देश्यों को पूर्णतः बदल दिया।

जेहाद फ़ी सबीलिल्लाह
अल्लाह के मार्ग में संघर्ष

हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) ने युद्ध के दौरान अनेक महत्वपूर्ण नैतिक सिद्धान्तों पर अमल करने पर बल दिया। पहलाः आप (सल्ल0) ने मौलिक रूप से युद्ध की मौलिक विचार-धारा और बोध को नये सिरे से क्रमबद्ध किया। अल्लाह के मार्ग में संघर्ष की बिल्कुल नई शब्दावली को परिचित कराकर आप (सल्ल0) ने शुद्ध भौतिक या व्यक्तिगत हितों या व्यक्तिगत लाभों के प्रेरकों से युद्ध को पवित्र कर दिया। जेहाद का अर्थ संघर्ष या

प्रतिरोध है या किसी के माध्यम से थोपे गए अन्याय और अत्याचार को दूर करने का संगठित प्रयास कहा जाता है। फी सबीलिल्लाह (अल्लाह के मार्ग में) की वृद्धि करके आप (सल्ल0) ने यह शिक्षा दी कि युद्ध गर्व, स्वाभिमान, व्यक्तिगत सम्मान या लोगों को दबाने के लिए नहीं होना चाहिए। इस विश्वास ने एक सम्पर्क सूत्र का काम किया जिसने युद्ध के सिद्धान्त को एक दूसरे से निकट कर दिया और इससे जुड़े हुए सभी संभावित अत्याचारों को नियन्त्रण में रखा।

युद्ध की इस नयी विचारधारा के अन्तर्गत पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने नियमों का एक व्यापक और पूर्ण नुस्खा परिचित कराया, जिसमें युद्ध, उसकी नैतिक सीमाएँ, अधिकार और कर्त्तव्य, योद्धा और निहत्थे व्यक्तियों का अन्तर और उनके अधिकार, दूतों के अधिकार, युद्धबंदियों और पराजित कौमों के अधिकारों को एक जगह कर दिया गया है। यह सभी नियम मुहम्मद (सल्ल0) के माध्यम से स्पष्ट रूप से वर्णित किए गए हैं।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक (रज़ि0) इस्लाम के पहले खलीफा थे। उन्होंने सीरिया नामक देश की ओर इस्लामी सेना को रवाना करते समय, जो कुछ कहा, वह इस्लाम के युद्ध नियमों के दिशानिर्देशक सिद्धान्त हैं। हज़रत अबू बक्र (रज़ि0) इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) के सबसे निकट साथी थे और उन्होंने ये दिशानिर्देशक सिद्धान्त स्वयं पैग़म्बर (सल्ल0) से सुने थे। यह दिशा-निर्देशक सिद्धान्त इस्लाम की युद्ध सम्बन्धी शिक्षाओं का दर्पण हैं।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक (रज़ि0) ने कहाः

> ''बच्चों, औरतों, कमज़ोरों और बूढ़े लोगों की हत्या न करना। धोखा देने की कोई कारवाई मत करना, अल्लाह के मार्ग से विचलित न होना और न ही अधिकार को हानि पहुँचाना। पेड़ों को न काटना, घरों और खेतों को न जलाना, फलदार पेड़ों को मत काटना और मवेशियों की हत्या न करना सिवाय इस स्थिति में कि तुम्हें खाने की आवश्यकता हो। जब तुम आगे बढ़ोगे तो तुम्हें कुछ मठों में बैठे हुए लोग मिलेंगे जो मठों के अन्दर एकान्त में अल्लाह की इबादत करते होंगे, उनको क्षमा करना, उनकी हत्या न करना और न ही उनके पूजा स्थलों को नष्ट करना।''

यह अत्यन्त मौलिक और महत्वपूर्ण शिक्षाएँ थीं और युद्ध के दौरान की

विभिन्न स्थितियों में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के द्वारा दिए गए निर्देशों की रोशनी में इस्लामी सेना के सेनापति हज़रत ओसामा बिन जैद (रज़ि0) को बतायी गयीं। इन कुछ ही वाक्यों में हज़रत अबू बक्र (रज़ि0) ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) की युद्ध की शिक्षाओं के नियमों का वर्णन कर दिया है।

उपरोक्त उपदेशों से यह स्पष्ट है कि इस्लाम ने न केवल युद्ध न लड़ने वाले और कमज़ोर व्यक्तियों के सम्बन्ध में सहानुभूति और दया का आदेश दिया है बल्कि पशुओं और माहौल के सम्बन्ध में भी स्पष्ट निर्देश दिए हैं ताकि इन सभी प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा की जा सके, जो मानव नस्ल के जीवन और स्थायित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि मात्र दिशा-निर्देशक निर्देश पर अमल किया जाए तो यह संसार निश्चित रूप से मनुष्यों के लिए एक बेहतर और सुरक्षित जगह होगा। लेकिन पिछले युद्धों से होने वाली बर्बादी और विनाश देखते हुए यह अनुमान होता है कि मनुष्य ने मानवता को किस सीमा तक पीछे छोड़ दिया है।

इनके अतिरिक्त पैग़म्बर (सल्ल0) के इन उपदेशों पर भी एक दृष्टि डाल लीजिएः

> ''जिस किसी ने भी इस्लामी राज्य की सीमाओं में रहने वाले किसी ग़ैर मुस्लिम को कष्ट पहुँचाया या अत्याचार किया, मैं कियामत के दिन उसके पक्ष में बहस करुँगा।''

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने फ़रमायाः

ऐ अल्लाह! मैं इस बात की गवाही देता हूँ कि सभी मनुष्य आपस में भाई-भाई हैं।

मानवता की प्रतिष्ठा और सम्मान के सम्बन्ध में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के आदर्श पर दृष्टि डालिए। आप (सल्ल0) एक बार अपने साथियों के बीच बैठे हुए थे कि उधर से एक शव-यात्रा गुज़री। पैग़म्बर (सल्ल0) मृतक के सम्मान के लिए खड़े हो गए। आपके साथियों को आश्चर्य हुआ और उन्होंने पैग़म्बर (सल्ल0) को याद दिलाया कि यह शवयात्रा एक यहूदी की शवयात्रा है। पैग़म्बर (सल्ल0) ने उनसे पूछाः

'क्या यह मनुष्य न था?' इस सम्बन्ध में हमें क़ुरआन की इस प्रतिष्ठित आयत को नहीं भूलना चाहिए जिसमें मनुष्य के प्राण की पवित्रता बयान की गई है ''जिसने किसी व्यक्ति को किसी के खून का बदला लेने या धरती में फ़साद फैलाने के अतिरिक्त किसी और कारण से मार डाला तो मानो उसने सारे ही इन्सानों की हत्या कर डाली। और जिसने उसे जीवन प्रदान किया, उसने मानो सारे इन्सानों को जीवन

दान किया।" (सूरः माइदा, 32)

एक युद्ध में जब दुश्मन की सेना के साथ कुछ बच्चे भी मारे गए और इसकी सूचना हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) को मिली तो आप बहुत दुखी हुए और नाराजगी प्रकट की। इस पर एक व्यक्ति ने कहाः

"ऐ अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल0)! आप क्यों दुखी होते हैं। वह तो ग़ैर मुस्लिमों के बच्चे थे।"

आप (सल्ल0) ने उत्तर दिया,

"ग़ैर मुस्लिमों के बच्चे तुमसे बेहतर थे। बच्चों की हत्या न करो। खबरदार. ..... बच्चों की हत्या न करो। हर इंसान अल्लाह की प्रकृति पर पैदा होता है।"

एक तरफ इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) का मानवता और बच्चों के सम्बन्ध में यह व्यवहार और दूसरी तरफ बच्चों और मानवाधिकारों के चैम्पियन होने का खोखला दावा करने वाले देश का व्यवहार देखें कि जब इराक पर अमेरिकी प्रतिबन्धों के परिणामस्वरूप पाँच लाख से अधिक बच्चों की मौते हुईं तो उस समय अमेरिकी विदेश मन्त्री मेडलिन अलब्राईट से एक पत्रकार ने पूछा कि "इतनी बड़ी संख्या में बच्चों की मौते क्या प्रतिबन्धों को उपयुक्त घोषित करेंगे।" इस पर उस महिला मन्त्री ने कहा था, "हाँ, यह मौते वैध हैं।"

जेहाद शब्द : उपयोग और दुरुपयोग

जेहाद एक अरबी शब्द है जो धातु 'जहद' से निकला है जिसका अर्थ संघर्ष होता है। जेहाद की परभिाषा यह है कि किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयास किया जाए। इसका उपयोग बहुत सी परिस्थितियों और तरीकों से संघर्ष के लिए होता है। सामान्य ऊर्दू भाषा में अक्सर जिद्दो-जुहद शब्द अक्सर प्रयोग करते हैं जिसका साधारण अर्थ संघर्ष है। एक अरबी कहावत में कहा गया हैः ''समझदारी से कर्म करो और अकारण बहुत अधिक श्रम न करो।

जेहाद अपने अत्याधुनिक प्रयोग में बिल्कुल अनेक अधार्मिक कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता है। लोग भ्रष्टाचार, प्रदूषण, भ्रूण-हत्या के विरूद्ध और महिला अधिकारों के लिए जेहाद जैसे नारों का प्रयोग करते हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी द्वारा भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अहिंसा नामक शांतिपूर्ण संघर्ष को अरबी में जेहाद कहा गया। जिस प्रकार टयूनिशिया में राष्ट्रीय आर्थिक विकास के लिए धर्म निरपेक्ष राष्ट्रपति हबीब बोरगीबा के अभियान को जेहाद कहा गया। कुछ महिलाएँ, महिलाओं की मुक्ति के लिए चलाये गए अपने संघर्ष को जेहाद कहती हैं और कुछ दूसरे लोग न्यायपूर्ण नैतिक और सामाजिक व्यवस्था के लिए संघर्ष को जेहाद कहते है। कुछ अधिक भावुक मुस्लिम समूह शीया लोगों के विरुद्ध अपनी लड़ाई को सही ठहराने के लिए ग़लती से उसे जेहाद की संज्ञा देते हैं।

समय के साथ-साथ सुरक्षा और आक्रमण के शब्दों को अधिक से अधिक घालमेल के साथ प्रयोग किया जाता है और जेहाद की धारणा का प्रयोग अधिकतर मुस्लिम सैनिक अभियानों के युद्धों की ओर संकेत के लिए होने लगा। अक्सर मुस्लिम राज्य अन्य मुस्लिम राज्यों से युद्ध करते थे, मुसलमान बनाम मुसलमान संघर्ष होता था। इस मामले में स्पष्ट रूप से इस्लाम की कोई भूमिका नहीं होती थी। 19वीं सदी ई0 में सूडान के विद्रोही नेता मेहदी, उस्मानियों के विरुद्ध अपने विद्रोह को जेहाद अवश्य कहते थे और उन्होंने सभी तुर्कों को मौत की सजा चखाने का आह्वान किया था। सऊदी अरब का एक चरमपंथी समूह सभी मुसलमानों के विरुद्ध जेहाद का आह्वान करता है। दुर्भाग्यपूर्ण

बात यह है कि इस्लाम के अन्दर कुछ पंथ जेहाद शब्द का उपयोग इस्लाम के दूसरे पंथों के विरुद्ध अपने संघर्ष के लिए भी करते हैं। ताकि वह इस्लाम के उस संस्करण को रद्द कर सकें जिसे दूसरे पंथ अपनाते हैं।

कुछ चरमपंथी समूह अब युद्ध की कुरआनी धारणा को मुस्लिम दुनिया के अन्दर अपने घरेलू राजनैतिक विरोधियों के विरुद्ध भी प्रयोग कर रहे हैं।

आजकल अतिचरमपंथी समूह भी अपनी गतिविधियों को जेहाद के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। जैसा कि नाईजीरिया, नाईजर, सोमालिया, माली, अफगानिस्तान और लेबनान में देखा जा सकता है। ये समूह अपहरण, हाईजैकिंग आदि को अपने उस जेहाद का अंग बताते हैं जो वह अपनी सरकारों के विरुद्ध लड़ रहे हैं।

इसलिए सदियों से जेहाद के शब्द का प्रयोग और दुरुपयोग होता रहा है। यह शब्द आज फिर मुस्लिम दुनिया में पश्चिमी सेनाओं के विरुद्ध प्रतिरोध के लिए प्रयोग होने लगा है।

शब्दावली जो भी हो यह बात उल्लेखनीय है कि अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून आक्रमणकारी विदेशी सेनाओं के विरुद्ध जनता के प्रतिरोध को सही ठहराता है।

पश्चिमी शक्तियों ने भी जेहाद की शब्दावली का अपने हितों के अनुसार प्रयोग किया है। यह शब्दावली अफगानिस्तान में सोवियत कम्यूनिस्ट विस्तारवाद के विरुद्ध प्रतिरोध आन्दोलन के दौरान बहुत अधिक प्रयोग हुआ। अमेरिका की सी.आई.ए. ने हज़ारों मुजाहिदीन को भर्ती किया और उन्हें हथियार और प्रशिक्षण दिया व उसके लिए फण्ड उपलब्ध कराया राजनयिक सहायता उपलब्ध कराया और मुस्लिम देशों का समर्थन जुटाया। सी.आई.ए. ने अलजीरिया, यमन, चेचन्या और मध्य एशियाई राज्यों से बड़ी संख्या में उग्रवादियों को प्रेरित किया। बहुत सी इस्लामी शब्दावलियाँ जैसे मुजाहिदीन, जेहाद, शहीद आदि को मीडिया में प्रचारित और प्रसारित किया गया।

किसिंजर डॉक्ट्रीन के अनुसार एशिया के लोगों को एशिया के लोगों से लड़ाने का प्रस्ताव किया गया और लड़ाकों को प्रेरित करने के लिए हदीसों का प्रयोग किया गया। उसके लिए अफगान- पाकिस्तान सीमा पर कुछ विशेष मदरसों की स्थापना की गयी। ये मदरसे जिनको परोक्ष रूप से अमेरिका आर्थिक सहायता दे रहा था, उसने इस तरह के नारे लगाए कि कम्युनिस्ट काफिर हैं और उनकी हत्या करना जेहाद है और जो लोग इस युद्ध में मारे जायेगें वे सीधे जन्नत में जायेंगे जहाँ 72 कुँवारियाँ उनकी प्रतीक्षा कर रही हैं। इस वैचारिक कॉकटेल ने उन मुस्लिम युवकों पर गहरा असर डाला जो इनमें प्रशिक्षण के लिए आते थे, ताकि अपनी जान देकर शहीद हो जाएँ।

कम्यूनिस्ट सोवियत यूनियन के विरुद्ध अमेरिका के छद्म युद्ध को भड़काने के लिए अफगानिस्तान के नौजवानों की दो पीड़ियों ने हथियार और आवश्यक वैचारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया। इस खेल में अफगानिस्तान के साथ बड़े राजनैतिक समूहों का प्रयोग किया गया जो चरमपंथी विचारधाराओं के वाहक थे और उन्हें सोवियत सेनाओं से लड़ाया गया, जैसा कि राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार जिग्न्यू बेजेन्सकी ने बाद में रहस्योद्घाटन किया। सी.आई.ए. ने मुजाहिदीन को हथियार दिए और आतंक फैलाने में उच्चस्तरीय प्रशिक्षण दिया। इन लोगों ने सफलतापूर्वक सोवियत सेनाओं को बाहर निकाल दिया। लेकिन उन्होंने अपनी जनता के विरुद्ध भी भयानक युद्ध किया जिसमें केवल काबुल में ही, कम से कम 45,000 लोग मारे गए। (Ninan Koshy WOT, pp. 62-63)

ये समूह न केवल सोवियत सेनाओं को भगाने में सफल रहे बल्कि उन्होंने इन्हीं हथियारों और विचारधारा को एक-दूसरे भाईयों को मारने के लिए प्रयोग किया और वे सोवियत सेना के आखिरी टुकड़ी के जाने के बाद छः वर्षों तक आपस में लड़ते रहे। सन् 1995 में जाकर वहाँ के सबसे ताकतवर समूह तालिबान का उदय हुआ और उसने काबुल की सत्ता पर अधिकार कर लिया और उसने सत्ता की विनाशकारी पारी खेली जिसमें उन्होंने लड़कियों के स्कूल, बामियान में स्थित बुद्ध की प्राचीन मूर्ति को तोड़ डाला और इसी दौरान इण्डियन एयरलाइन्स के जहाज का अपहरण करके कंधार ले जाया गया और उसके बन्धकों को मसूद अजहर जैसे खतरनाक आतंकवादियों के बदले में छुड़ाया गया। अल-कायदा के ओसामा बिन लादेन और दूसरे लोग इसी युद्ध की उपज थे। ज्यूँ ही बन्दूकों का रुख अमेरिकियों और उनके हितों की ओर मुड़ा। तालिबान के विरुद्ध एक अभियान छिड़ गया और जेहादी आतंकवाद की शब्दावली प्रचलित हो गयी। अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर के दोनों टावरों पर 9/11 के हमले के साथ घटनाक्रम अपने शिखर पर पहुँच गया और राष्ट्रपति बुश द्वारा आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध के लिए ज़मीन तैयार हो गयी। शेष अब सब कुछ इतिहास बन चुका है।

अब हिंसा से हिंसा भड़कती है। अमेरिका द्वारा अफगानिस्तान और इराक में लड़े गए दो अमेरिकी युद्धों ने मध्य-पूर्व में केवल बदले की भावना और आत्मघाती बमबारी को भड़काया। अमेरिकी हस्तक्षेप ने क्षेत्र में सामाजिक और राजनैतिक अव्यवस्था फैला दी है। आतंक के विरुद्ध कथित युद्ध में एक मिलियन से अधिक इराकवासी मारे जा चुके हैं। अफगानिस्तान का भविष्य अनिश्चित है। युद्ध की मार पाकिस्तान झेल रहा है क्योंकि आत्मघाती बमबार पाकिस्तान में प्रतिदिन अशांति फैला रहे हैं।

ये गतिविधियाँ जेहाद की परिभाषा में ठीक नहीं बैठतीं। हिंसा और आतंक जेहाद का अंग नहीं है। जेहाद का अर्थ व्यक्ति और समाज को अनचाही प्रवृत्तियों से शुद्ध करना है। जेहाद का उपयोग अपना अधिकार क्षेत्र फैलाने, संसाधनों को लूटने, किसी नस्ल का नरसंहार करने और जनता के दिलों में भय पैदा करने के लिए और संवेदनहीन हिंसा के लिए नहीं है। जेहाद का साधारण अर्थ शान्ति, व्यवस्था और न्याय की स्थापना के लिए संघर्ष करना है। युद्ध जेहाद का अन्तिम चरण है। इसका आरम्भ इच्छाओं से अपनी आत्मा को स्वच्छ करने से होता है। कई तरह की ताकतों ने जेहाद का उपयोग और दुरुपयोग किया है और जेहाद अब सच्ची इस्लामी भावना की अभिव्यक्ति नहीं करता।

धर्म का दुरुपयोग

उग्र मुस्लिम समूहों द्वारा की गई हिसंक कारवाइयों की बार-बार एक व्याख्या यह की जाती है कि ये लोग हिंसक कारवाईयाँ करने के लिए धर्म का दुरुपयोग करते हैं। 'चूँकि इसमें धर्म का हवाला दिया जाता है' इसलिए इन कारवाइयों की व्याख्या इस तरह की जाती है कि धर्म को हिंसा और आतंकवाद से जोड़ दिया जाता है।

ऐसा व्यवहार केवल मुस्लिम समूहों के साथ ही नहीं किया जाता बल्कि इसका प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। राष्ट्रवादी आन्दोलन और स्वतन्त्रता संघर्ष भी कुछ धार्मिक नारों या प्रतीकों पर आधारित होते हैं चूँकि धर्म लोगों के दिलों को गहराई तक छूता है इसलिए कि धर्म उनके साथ हजारों वर्षों से मौजूद रहा है, जबकि राष्ट्र-राज्यों का उदय मात्र पिछली दो सदियों के दौरान हुआ है। इसलिए इस्लामवाद क्षेत्रीय सभ्यता में अपनी गहरी जड़ों और क्षेत्रीय उद्देश्यों के नाम पर लोकप्रिय समर्थन जुटाने की योग्यता के कारण संघर्ष के लिए सबसे नया और सबसे ताकतवर वैचारिक माध्यम है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि ऐसा केवल इस्लामिक समूहों के साथ ही नहीं है। अर्थात सभी धर्मों के उग्र समूह धर्म का सहारा लेते हैं।

अगस्त सी क्रे द्वारा लिखित पुस्तक *द फर्स्ट क्रूसेडः द एकाउन्टस ऑफ आई विटनेसेज एण्ड पार्टिसिपेन्टस* से लिए गए निम्नलिखित अनुच्छेद पर विचार कीजिए। नवम्बर, 1095 में पोप अरबन द्वितीय ने मुस्लिम जगत के उपनिवेशीकरण के लिए पहला यूरोपीय प्रयास शुरु किया जिसका नाम पश्चिम में क्रूसेड हैः उसमें वह मुस्लिम जनता को काफिर और बर्बर घोषित करता है और वह यूरोप की ईसाई जनता को आदेश देता है कि वह हज़रत ईसा के नाम पर सबके सब जाकर उनकी हत्या करें और उनकी जमीने खाली कराएँ और वास्तव में यह ईसा मसीह का आदेश है। पुस्तक आगे दृश्य का विवरण देती है.....येरुसलम पर 15 जुलाई 1099 को क्रूसेड करने वालों ने विजय प्राप्त की जिन्हें क्रिश्चियन नाइट भी कहा जाता है। इसके दौरान यहाँ के 60000 नागरिकों की हत्या कर दी गयी, जिनमें यहूदी और मुसलमान सम्मिलित थे।

इस बात को भी समझ लेना चाहिए कि मुस्लिम और यहूदी पक्ष का कोई भी व्यक्ति इस नरसंहार में बच नहीं पाया। क्रिश्चियन नाइट अथवा ईसाई धर्म के रक्षकों की

तलवारों के नीचे जो भी शिशु, बालक, महिला और बूढ़ा व्यक्ति नहीं बच सका जो हज़रत ईसा की मजार के सामने शुक्रिया अदा करने जाते थे। क्या ईसाई धर्म के बारे में इन घटनाओं की रोशनी में फैसला किया जाना चाहिए? वास्तविकता यह है कि इस बात पर कोई ईसाई, और वास्तव में कोई सभ्य गैर ईसाई भी सहमत नहीं होगा तो क्या केवल यह बात ही सही होगी कि इस्लाम के बारे में फैसला उन सूक्ष्म अल्पसंख्यक चरमपंथी समूहों के माध्यम से करना चाहिए जो अल्लाह के नाम पर निर्दोष लोगों की हत्या करते हैं।

यहाँ पर एक और बिन्दु याद रखने योग्य है कि किस तरह ईसाई धर्म के नाम पर समान रूप से सरकारों और गिरिजाघरों द्वारा हत्या औ लूट को प्रारम्भ करने, संस्थागत करने और समर्थन करने का काम किया गया। - इसे संस्थागत आतंकवाद का नाम भी दिया जा सकता है। दूसरी तरफ इस्लाम के नाम पर जो वारदातें अंजाम दी जाती हैं वह अक्सर कुछ व्यक्तियों की हरकतें होती हैं। जिन्हें किसी मान्यता प्राप्त संस्था या सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं होता और इसी तरह इन्हें मुस्लिम नेतृत्व का समर्थन भी प्राप्त नहीं होता।

बैप्टिस्ट क्रिश्चयन नाम के समुदाय के कुछ सदस्यों ने अनेक गर्भपात क्लीनिकों पर बमबारियों को धर्म के अनुकूल बताने के लिए अपने धर्म-ग्रन्थों की- तोड़-मरोड़ कर व्याख्या की , जिनमें अनेक निर्दोष लोग मारे गए ।

जब स्टालिन ने द्वितीय विश्वयुद्ध में थर्ड रीच की सेना के आक्रमण का अपने आप को शिकार पाया तो वह निश्चित रूप से जानता था कि मार्क्सवाद और लेलिनवाद प्रतिरोध संघर्ष के लिए लोगों के दिलों को आन्दोलित नहीं कर सकता। अतः वह रूसी राष्ट्रवाद की ओर मुड़ा, और बाद में निराश होकर लोगों को एक बिन्दु पर एकत्र करने के लिए आर्थोडॉक्स चर्च में विश्वास व्यक्त किया जो पवित्र मदर रसिया का प्रतीक था।

द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले जापानी साम्राज्य एशिया में अपनी विस्तारवादी और उपनिवेशवादी नीतियों के लिए जन-समर्थन जुटाने के लिए एक माध्यम तलाश कर रहा था। जापान की आत्मा को उभारने के लिए सिन्टो धर्म के पवित्र चरित्र और बौद्ध धर्म के कुछ रूपों का भी प्रयोग किया।

श्रीलंका में हिन्दू तमिल अलगाववादियों के विरुद्ध अपने संघर्ष में बहुसंख्यक बौद्ध सिंहलियों ने तमिल लड़ाकों के विरुद्ध जन-सहयोग जुटाने के लिए बौद्ध भिक्षुओं की सेवाएँ प्राप्त कीं।

नाज़ी जर्मन तानाशाह हिटलर जो संयोग से एक धर्मान्ध ईसाई था। वह जो कुछ कर रहा था उसके बारे में उसका विश्वास था कि वह ईश्वर की योजना है, उसने नरसंहार

किया जिसमें लगभग 6 मिलीयन यहूदी मारे गए; उसने जर्मन युद्ध में अपने समर्थन के लिए चर्च का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया।

युद्ध के समय संयुक्त राज्य अमेरिका में भी राष्ट्रीय संघर्ष को धार्मिक वैधता प्रदान करने के लिए मुख्य धारा के चर्चों और धर्म-गुरुओं- प्रोटेस्टेन्ट, कैथोलिक और यहूदी- की सेवाएँ प्राप्त की गयीं।

इसी तरह भारत में भी चरमपंथी दक्षिणपंथी ताकतें अधिकतर हिन्दू प्रतीकों पर भरोसा करती हैं और चुनाव के समय राष्ट्रीय हितों को हिन्दू हितों से और हिन्दू हितों को राष्ट्रीय हितों से मिलाने का प्रयास करती हैं। इससे भी आगे बढ़कर वे बहुसंख्यक समुदाय के धुव्रीकरण के लिए मिथ्यारोपण करते हैं और अल्पसंख्यक तुष्टिकरण जैसे विवादों को हवा देते हैं।

जहाँ भी जन-समर्थन और बड़े अभियानों, युद्धों को सही सिद्ध करने के लिए समर्थन की आवश्यकता पड़ेगी, वहाँ सदैव धर्म का उपयोग किया जाएगा। लेकिन ये उद्देश्य, अभियान, युद्ध धर्म के लिए नहीं होते। धर्म को अलग भी कर दें तब भी अभियान लड़ाईयाँ और युद्ध होते रहेंगे।

दमन और आतंकवाद

क्या इनमें कोई अन्तर है ?

आतंकवाद धर्मों के आचरण में नहीं है। यह राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक कारणों से होता है। लिब्रेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम, आयरिश रिपब्लिकन आर्मी, उल्फा, साध्वी प्रज्ञा, दयानन्द पाण्डे और इनके सहयोगी हमें बताते हैं कि आतंकवादी सभी धर्मों से आते हैं। चूँकि पिछले वर्षों के दौरान मीडिया का एक विशेष वर्ग इसे इस्लाम से जोड़ता रहा है इसलिए आतंकवाद को मुसलमानों से जोड़ना एक फैशन बन गया है। इस्लाम के लिए इन गतिविधियों का स्रोत होना कम संभावित है।

जब अन्याय और जनता की आजादी का दमन होता है तो इससे हिंसा भड़कती है जो अक्सर आतंकवाद का रूप ले लेती है। यदि इनका सम्बन्ध दुर्भाग्य से किसी विशेष धर्म से हो तो जहाँ तक प्रेरणा के स्रोतों का सम्बन्ध है उनके अन्दर धर्म का रंग चढ़ाने की प्रवृत्ति होती है। यह पूर्णतः स्पष्ट है कि लिब्रेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम के कार्यकर्त्ता और लड़ाके सब के सब हिन्दू थे। लेकिन मीडिया ने उन्हें इस तरह प्रस्तुत नहीं किया, चरमपंथी दक्षिणपंथी संगठन अभिनव भारत ने बम धमाके किए जिसका सम्बन्ध स्पष्ट रूप से हिन्दुत्व से था। लेकिन मीडिया में कम ही पत्रकार ऐसे उभरते हैं जो इन घटनाओं में भगवा रंग देख सकें।

इस बात की संभावना भी है कि जिन लोगों को कोई स्वतन्त्रता सेनानी समझता हो उन्हें वह लोग आतंकवादी के रूप में देखें जिनसे आज़ादी माँगी जा रही हो। सरदार भगत सिंह के मामले पर विचार कीजिए। यद्यपि वह लाखों लोगों के नायक थे, नौजवानों और क्रान्तिकारियों का सदैव आदर्श रहे। वह उस समूह के अंग थे जिसने ब्रिटिश पुलिस अधिकारी जान साण्डर्स की हत्या की थी। भगत सिंह ने स्वयं विधान सभा पर एक बम फेका था जिसमें किसी की मृत्यु नहीं हुई थी। उन्हें एक स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में और सबसे बड़े क्रान्तिकारियों में से एक क्रान्तिकारी के रूप में देखा जाता है। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने उनको आतंकवादी की संज्ञा दी।

यद्यपि इस तरह के समूह अशांति फैलाते हैं लेकिन पश्चिम की चुनी हुई सरकारों ने भी ऐसी हिंसा का सहारा लिया। ब्रिटिश आतंकवादी पीटर ब्लीच को पश्चिम बंगाल के पुरुलिया में हथियार गिराने के लिए सज़ा सुनाई गयी। उसे गिरफ्तार किया गया और सात वर्ष की क़ैद की सजा सुनायी गयी। जब वह कलकत्ता की जेल में आधी सजा काट चुका था, उसे उस ब्रिटिश प्रधानमन्त्री टोनी ब्लेयर के विशेष आग्रह पर राष्ट्रपति द्वारा क्षमादान दिया गया जो स्वयं आतंकवाद के विरुद्ध तथाकथित युद्ध का समर्थक था। दिलचस्प बात यह है कि पाँच रुसी नागरिकों को सज़ा सुनायी गयी और कलकत्ता जेल में क़ैद रखा गया लेकिन उनको भी श्री वाजपेयी के नेतृत्व वाली संयुक्त लोकतान्त्रिक गठबन्धन की केन्द्र सरकार ने क्षमादान दे दिया। (इण्डिया पोर्डन्स पाइलट्स इन पुरुलिया, आर्म्स ड्राप केस, द टाइम्स ऑफ इण्डिया, जुलाई 22, 2000)। ऐसा ही मामला अमेरिकी आतंकवादी रेमण्ड डेविस का था जिसे लाहौर में आतंकवाद के लिए तालिबान को भर्ती करते हुए पाया गया। अमेरिका के लोग उसको रिहा कराने के लिए पाकिस्तानी हवा में मडरा रहे थे और दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने लाहौर स्क्वायर में दो व्यक्तियों को रेमण्ड डेविस द्वारा मारे जाने के बदले में खूनबहा भी अदा किया।

क्यूबा के हवाई जहाज पर सन् 1976 में बमबारी करने में अमेरिकी भूमिका सन् 2005 में उजागर हुई, इससे भी अमेरिका की दोहरी नीति का पर्दाफाश हुआ। इस बात का रहस्य खुला कि जिस पोडोसा ने क्यूबा के हवाई जहाज़ पर हमला करके 73 लोगों की हत्या की थी। वह सी.आई.ए का एजेण्ट था। उसे फ्लोरिडा में शरण दी गई थी। पोडोसा के प्रत्यर्पण के लिए क्यूबा सरकार की याचिका को रद्द करने में अमेरिकी भूमिका पर टिप्पणी करते हुए गार्जियन ने लिखाः यह मामला महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके केन्द्र में दुनिया के बहुत से भागों में यह प्रचलित विचार है कि अमेरिका अपने सहयोगियों के लिए नैतिकता का एक मानक रखता है और अपने दुश्मनों के लिए नैतिकता का दूसरा मानक। (डंकन कैम्पबेल, ''अमेरिका अपने दोस्तों और दुश्मनों से कैसे मामला करता है'', गार्जियन समाचार पत्र लिमिटेड, 2005, इसे जून 30, 2005 में द हिन्दू ने भी प्रकाशित किया)

फिर यह रिपोर्टे भी हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका ईरान जैसे देशों में आतंकवादी समूहों को आर्थिक सहायता प्रदान करता है। सीमर हर्ष द्वारा न्यूयार्कर में लिखे गए लेख के अनुसार जार्ज डब्ल्यू बुश के प्रशासन के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका ने नेवादा में मुजाहिदीन-ए खल्क के सदस्यों की आर्थिक सहायता, हथियार और हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिया। मुजाहिदीन-ए खल्क ईरान का एक अलगाववादी समूह है जो ईरानी

सरकार का तख्ता पलटना चाहता है और जिसके बारे में यह रिपोर्ट है कि इस्राईल के साथ मिलकर ईरान के अनेक नाभिकीय वैज्ञानिकों की हत्या करने के पीछे इसकी भूमिका रही है। मुजाहिदीन-ए खल्क को अमेरिका के डिपार्टमेन्ट ऑफ स्टेट द्वारा सन् 1997 में आतंकवादी संगठन घोषित किया गया था। दूसरे शब्दों में अमेरिकी सरकार ऐसे समूह को भी आर्थिक सहायता देती है जिसे वह स्वयं ऐसा समूह घोषित करती है जो आतंकवादियों में सम्मिलित है, जो, जैसा कि ग्लेन ग्रीन बाल्ड टिप्पणी करते हैं, अमेरिका में एक अपराध है। *http://www.policymic.com/articles/6587/u-s-funded-iran-terrorist-group-says-shocking-report* ये स्पष्ट कपटाचार केवल पश्चिमी देशों द्वारा आतंकवाद पर दुष्प्रचार की राजनैतिक प्रकृति को ही उजागर करते हैं। इससे यह बात स्पष्ट है कि आतंकवाद छोटे और कमज़ोर देशों के विरुद्ध धमकी देने का एक साधन है।

यह स्पष्ट है कि पश्चिमी देश दमन की अनदेखी करते हैं लेकिन इसपर प्रतिक्रिया पर ध्यान देते हैं। इस्लामी सम्मेलन संगठन ने अपनी 2003 की एक बैठक में इसका नोटिस लिया और संयुक्त राष्ट्र संघ से माँग की कि वह अपने तत्वावधान में यह क़ानून बनाने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन बुलाए कि आतंकवाद के सभी रूपों पर एक संयुक्त नीति बनायी जाये। इसमें कहा गया था कि हम अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के मूल कारणों पर विचार करने के महत्व पर बल देते हैं और हमें विश्वास है कि यदि आतंकवाद को पैदा करने वाले वातावरण को फलने-फूलने की अनुमति दी जाती रहेगी इसके विरुद्ध युद्ध सफल नहीं होगा। । इस वातावरण में विदेशी कब्जा, अन्याय और अलग-थलग करने की नीति सम्मिलित है। (द हिन्दू, पैलेस्टिनियन्स नाट टेररिस्ट, ओ. आई,सी, 4 मार्च, 2002)

रूढिवादियों द्वारा जेहाद का ग़लत प्रयोग करने के कारण समस्या और गंभीर हो गयी है। भटके हुए तत्वों द्वारा की गयी इक्का-दुक्का हिंसक घटनाएँ भी जेहाद कही जाने लगी हैं और कुछ लोग इन्हें इसी रूप में प्रस्तुत करते हैं। एक तरफ दुनिया में अल-कायदा और उस जैसे संगठन हैं जो जेहाद के नाम पर आतंक फैला रहे हैं। जेहाद के नाम पर ये कृत्य सम्पूर्ण मुस्लिम समुदाय के सबसे बड़े दुश्मन हैं। कभी-कभी कोई महसूस होता है कि जब कुछ आतंकवादी इस तरह के कृत्यों में संलिप्त होकर ,अपने मुसलमान होने का दावा करते हैं तो फिर मुसलमानों को अन्य दुश्मनों की आवश्यकता नहीं है, ये तत्व दुश्मनों का काम सबसे अच्छे ढंग से कर रहे हैं जिससे पूरे समुदाय की एक ग़लत छवि बन रही है। ये नासमझ तत्व अपने कृत्यों द्वारा इस्लाम की जो छवि बना रहे हैं इस्लाम के दुश्मन उससे अधिक अच्छा काम नहीं कर सकते। ये नासमझ तत्व

इस समुदाय के विरुद्ध घृणा पैदा करते हैं और प्रत्येक ऐसे कृत्य के बाद मुसलमानों और इस्लाम की छवि खराब होने की प्रक्रिया और तेज़ हो जाती है।

जैसा कि इस्लाम धर्म की किताबों में स्पष्ट किया गया है जेहाद किसी भी माध्यम से हो सकता है जैसे कलम के द्वारा, अपने स्वार्थ के विरुद्ध संघर्ष के द्वारा या किसी पवित्र शब्द या पवित्र कर्म के द्वारा हो सकता है। लेकिन मीडिया को इसमें से किसी भावार्थ का ज्ञान नहीं है। जब बात मुसलमानों की आती है तो कुछ तत्वों द्वारा की गयी हिंसा को जेहाद बता दिया जाता है।

सामान्य रूप से यह देखा जा सकता है कि कुछ मुस्लिम देशों में दमन के विरुद्ध ग़ैर-सरकारी समूह खड़े हो गए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मध्य-पूर्वी देशों के समाज कई पहलूओं से कम विकसित हैं। कुछ तेल निर्यात करने वाले देशों और खाड़ी के राज्यों की छोटी सी अमीर अबादी के अतिरिक्त नागरिकों की बड़ी संख्या के लिए शिक्षा-स्तर, जीवन-स्तर और नौकरियों के अवसर अक्सर कम हैं। भविष्य के लिए संभावनाएँ सीमित समझी जा रही हैं।

बहुत से मुस्लिम देश जो राजाओं, तानाशाहों और निरकुंश शासकों के अधीन हैं, लोकतन्त्र के लिए उभरने वाले आन्दोलनों को वहाँ कठोरतापूर्वक कुचल दिया जाता है। नागरिक जीवन को नरक बना देने के लिए मौलिक अधिकारों का हनन होता है और नागरिक स्वतन्त्रता नहीं दी जाती। सरकारों में पारदर्शिता नहीं है। भ्रष्टाचार फैला हुआ है। ये तानाशाह अपने शासन के लिए अपने प्राकृतिक संसाधनों जैसे तेल और प्राकृतिक गैस पर स्वतन्त्र पहुँच के बदले पश्चिमी ताकतों से वैधता प्राप्त करते हैं तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है कि कुछ प्रतिरोधक आन्दोलन इस माहौल की उपज हों। ये अपने देश के शासकों के विरुद्ध प्रतिक्रिया हैं। ये लोग हथियारों का प्रयोग कर सकते हैं लेकिन इस प्रक्रिया में ये लोग पश्चिम की दोहरी नीतियों का पर्दाफाश भी करते हैं।

एक प्रख्यात अमेरिकी राजनैतिक दार्शनिक और जनप्रिय बुद्धिजीवी मीकाईल वाल्जर इस समस्या को बहुत समझदारी के साथ संक्षेप में प्रस्तुत करता हैः ''पहले दमन को आतंकवाद के लिए बहाना बनाया जाता है, फिर आतंकवाद को दमन के लिए बहाना बनाया जाता है। पहला अतिवामपंथियों के लिए बहाना है और दूसरा दक्षिणपंथी नव परम्परावादियों के लिए बहाना है।''

हर कोई इस बात से सहमत होगा कि किसी भी समाज में राजनैतिक हिंसा नापसंदीदा है। आतंकवाद राजनैतिक हिंसा का ही एक रूप है। लेकिन दुनिया के अधिकतर देशों में राजनैतिक हिंसा का नियमित रूप से प्रयोग दमनकारी शासक स्वयं अपनी जनता के विरुद्ध और अपने घरेलू विरोधियों के विरुद्ध करते हैं। अवैध सरकारों

को निश्चित रूप से राजनैतिक हिंसा का सामना करना पड़ेगा।

फिलीस्तिनीयों ने लम्बे समय तक इस्राईली रॉकेटों और मिसाइलों का मुकाबला केवल पत्थरों और गुलेलों से किया। लेकिन अब ऐसा नहीं है। इस्राईली शासन की ओर से लगातार बढ़ती हुई हिंसा ने हमास और हिज्बुल्लाह को अधिक सहयोगपूर्ण और सशक्त प्रतिक्रिया के लिए मजबूर किया। इराक और अफगानिस्तान में एक दशक से चल रहे युद्धों ने इस सन्देह को भड़काया है कि पश्चिम फिलीस्तीनी समस्या को हल करने के बजाए अपने नए हथियारों के परीक्षण के लिए युद्ध के क्षेत्रों को फैला रहा है और नये रणक्षेत्रों की तलाश कर रहा है। सद्दाम हुसैन के इराक में विनाशकारी हथियारों के सिलसिले में पश्चिमी झूठ के पर्दाफाश ने इस विश्वास को और अधिक प्रबल किया है कि पश्चिम की युद्धों, हिंसा, रक्तपात और अत्यधिक राष्ट्रीय गर्व की ललक की कोई सीमा नहीं है। निराशा और हताशा का यही माहौल है जिसने कुछ लोगों को पश्चिम के विरुद्ध संगठित प्रयास प्रारम्भ करने के लिए विवश किया है। इस सब के अन्त में पश्चिम उन्हीं तालिबानों के सामने घुटने टेकता हुआ दिखाई दे रहा है जिसपर उसने आतंकवाद का आरोप लगाया था।

घटनाओं के नतीजे में उपजी समझदारी के बाद इस्लाम या मुसलमानों के शब्द में आतंकवाद का प्रत्यय लगाना इसके पीछे वास्तविक नीयत को स्पष्ट करता है।

संसार में आज जो कुछ हो रहा है, उसकी रोशनी में इस्लाम या मुसलमानों के बारे में फैसला करना न्यायसंगत नहीं होगा। इसके शिकार वास्तव में संयोगवश मुसलमान हैं। लेकिन इनका क्रोध, दमन और प्रतिरोध आशा के अनुरूप है क्योंकि हम श्रीलंका, उत्तरी आयरलैण्ड या कांगों में देख रहे हैं कि दमन के शिकार लोग इसका प्रतिरोध कर रहे हैं। इस्लाम संसार में शान्ति और सहअस्तित्व और जीवन, स्वतन्त्रता, सम्पत्ति और सभी मनुष्यों के सम्मान की रक्षा चाहता है। क़ुरआन घोषणा करता हैः

> "जिसने किसी व्यक्ति को किसी के खून का बदला लेने या धरती में फ़साद फैलाने के अतिरिक्त किसी और कारण से मार डाला तो मानो उसने सारे ही इन्सानों की हत्या कर डाली। और जिसने उसे जीवन प्रदान किया, उसने मानो सारे इन्सानों को जीवन दान किया।" (क़ुरआन, 5:32)

इस पृष्ठभूमि को देखते हुए इस बात को स्वीकार करना गलत होगा कि आतंकवाद एक इस्लामी परिदृश्य है। समाधान कुछ धर्मों को बदनाम करने में निहित नहीं है। बल्कि यह मानवता से अन्याय और दमन को जड़ से मिटाने में निहित है।

इस्लाम के विरुद्ध नफरत का प्रसार

सोवियत संघ के विघटन और शीत युद्ध के अन्त के साथ पश्चिम विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका लगातार नये दुश्मन की तलाश में लगा रहता है:
विलियम फॉफ, एक अमेरिकी लेखक और न्यू यार्कर के स्तम्भ लेखक हैं, वह इन्टरनेशल हेराल्ड ट्रिब्यून के लिए संपादकीय पृष्ठ के लिए लिखते रहते हैं। उन्होंने लिखा:

> "लोगों की एक बड़ी संख्या ऐसी है जो सोचते हैं कि साम्यवाद और पश्चिम के बीच युद्ध के स्थान पर पश्चिम और मुसलमानों के बीच युद्ध, जगह ले रहा है।"
>
> "साम्यवाद के अन्त के बाद कुछ अमेरिकीयों के लिए अपनी क्षमता और ताकत के परीक्षण के लिए नये दुश्मन की तलाश में इस्लाम एक पसन्दीदा दुश्मन मिला है। लेकिन संयुक्त राज्य का इस्लाम को दुश्मन घोषित करने का अर्थ एक नया शीत युद्ध है जिसके अन्त की आशा पिछली विजय की तुलना में कम है।" साम्यवाद के लाल खतरे का स्थान हरे रंग (हरा रंग इस्लाम का रंग है) के भय ने ले लिया है।

अफगानिस्तान पर सोवियत आक्रमण को विफल करने के लिए सी.आई.ए. ने मुजाहिदीन और अल-कायदा की सहायता की थी। अफगान योद्धाओं को, जिनको पश्चिमी देशों ने हथियार उपलब्ध कराए थे, पश्चिम और पश्चिम के हितों के विरुद्ध अपनी बन्दूकों की दिशा मोड़ने में अधिक समय नहीं लगा। वर्षों तक सी.आई.ए. के दुष्प्रचार तन्त्र द्वारा नास्तिकों और क़ाफिरों के विरुद्ध जेहाद की भावना जगाने के परिणामस्वरूप अमेरिका द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त मुजाहिदीन ने मध्य-पूर्व और अन्य देशों में अमेरिकी हितों को निशाने पर लेना शुरु कर दिया।

इसी दौरान अमेरिका के हथियार निर्माताओं ने हथियार के नये बाजारों के लिए दबाव बनाना शुरु किया। शीत युद्ध के अन्त ने हथियारों के विक्रय में कमी पैदा कर दी थी। हथियार उद्योग लम्बे समय तक जारी रहने वाली मंदी में प्रवेश कर गया था। यह अमेरिकी काँग्रेस के उन सदस्यों के लिए अपशकुन था जो हथियार बनाने वाली

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा उपलब्ध कराये गये फण्ड से चुनाव जीतते थे। 9/11 की घटना ने इनकी बिक्री को असाधारण रूप से बढ़ा दिया। नैसडेक के आँकड़े बताते हैं कि ये हथियार निर्माण करने वाली बड़ी कम्पनियों, जैसे रेथीयॉन, बोइँग और लॉखीड मार्टिन के शेयर थे जो न्यूर्याक के टॉवरों पर आतंकवादी हमलों के बाद बढ़ गए थे। अचानक युद्ध का तापमान बढ़ा और हथियार निर्माताओं के कैश बढ़ने लगे।

पश्चिमी लोकतन्त्रों में आज जो प्रचार तन्त्र है वह बड़े पैमाने पर झूठ को सच बनाने और सच को झूठ बनाने की योग्यता रखता है। ये इस सिद्धान्त पर काम करते हैं कि अधिकतर लोग मूर्ख और गूँगे होते हैं और उन्हें राजतन्त्र में सक्रिय सहयोगी नहीं बनाया जा सकता। उनको भावनात्मक प्रकरणों और भावुक प्रचार के द्वारा लुभाने की आवश्यकता होती है। जनसपंर्क उद्योग इसी धारणा का एक अंग था और यह जनमानस पर नियन्त्रण रखने में विश्वास रखता है। प्रचार का मुख्य केन्द्र अधिकतर यह होता है कि लोगों को किसी मामले में राष्ट्रीय स्तर पर नहीं सोचने देना चाहिए। इसकी बजाए उनको एक ऐसा नारा दे देना चाहिए जो उन्हें पूर्णतः मुख्य प्रकरण से विमुख कर दे। उदाहरण के लिए राष्ट्रपति जार्ज बॉकर बुश का नारा *''या तो आप हमारे साथ हैं या आप आतंकवादियों के साथ हैं।'* का प्रभाव यह पड़ा कि वास्तव में कोई उनका विरोध नहीं कर रहा था। (इस विषय पर अधिक जानकारी के लिए पढ़ें नोआम चोम्सकी की किताब *मीडिया कन्ट्रोल*)

बहुत से यूरोपीय देशों में, मुसलमानों को गम्भीर चुनौतियों का सामना है जो लगातार बढ़ती जा रही हैं। परिस्थिति इस हद तक पहुँच गयी है कि यदि राज्य सरकारें अपने मामलों को सद्भावपूर्वक चलाना चाहती हैं तो उन्हें भी जागृत होना पड़ेगा। मुसलमानों के विरुद्ध आपत्तिजनक न लगने वाले व्यंग से शुरु होकर मामला इस हद तक पहुँच गया है कि इस्लाम को नफरत और हिंसा वाला धर्म और मुसलमानों को अहसनशील और रुढ़िवादी के रूप में प्रचारित करने का ज़ोर-शोर से प्रयास किया जा रहा है। आपको प्रत्येक दूसरा आदमी बताएगा कि इस्लाम किस तरह काफिरों की हत्या करने का उपदेश देता है। जेहाद किस प्रकार इस्लामी शिक्षा का अभिन्न अंग है और किस प्रकार जेहादी इस्लाम के सिपाही मात्र होते हैं। यहाँ भारत में मुसलमानों के विरुद्ध आरोपों की एक लम्बी सूची है। मुस्लिम बादशाहों के सम्बन्ध में ग़लतफहमियों जैसे मंदिरों को तोड़ना, हिन्दू धर्म को अपमानित करना, प्रत्येक मुसलमान को चार विवाह करने की अनुमति देना और बीस बच्चे पैदा करना से लेकर 'प्रत्येक आतंकवादी मुसलमान होता है', तक फैली हुई है। इन ग़लतफहमियों के पीछे जो भी कारण हों, हक़ीकत यह है कि वर्तमान में ऐसी बहुत सी घटनाएँ हैं, जिनमें मुसलमानों पर हिंसा का आरोप लगाया जाता है

ताकि इनके माध्यम से राजनैतिक शक्तियों को इनसे लाभ उठाने का बहाना मिल सके, और पूरे मुस्लिम समुदाय को बदनाम किया जा सके।

भारत में, यह इस्लाम-विरोधी दुष्प्रचार सफल रहता है क्योंकि सामान्य व्यक्ति प्रत्येक अवसर पर जब भी वह टेलीविजन स्क्रीन पर कुछ देखता है और बार-बार अखबारों में जो चीज़ पढ़ता रहता है उस सिलसिले में अपनी विश्लेषण क्षमता का प्रयोग नहीं करता।

मामले काफी आगे निकल चुके हैं। मुसलमानों के विरुद्ध निशाना बनाकर घृणा, इस्लाम के विरुद्ध नफरत के माहौल का निर्माण दहलीज पार कर चुका है। यद्यपि इसने संयुक्त राज्य अमेरिका को, तेल की सम्पत्ति के लिए, अनेक मुस्लिम देशों पर आक्रमण का बहाना दिया है, इसने चरमपंथी समूहों को सामाजिक विशेषाधिकार प्राप्त करने में भी सहायता की है। इसके साथ-ही-साथ यह, दूसरे जमानों के मुकाबले राज्यों और समाजों और स्वयं समुदायों के लिए पहले से अधिक उल्टा पड़ा है। विभिन्न समुदायों के बीच दूरियाँ लोकतन्त्रों की तन्त्रिकाओं पर काम कर रही हैं और सामाजिक विकास की प्रक्रिया के मन्द पड़ने के साथ-साथ इनको कमजोर कर रही हैं। यह निश्चित रूप से समाज के कमज़ोर वर्गों को प्रभावित करेगा और विश्व-स्तर पर अर्थव्यवस्थाओं को भी प्रभावित करेगा। इस जमाने में मानवीय मूल्यों को कम महत्व दिया जा रहा है। पंथवाद के इस अंधकार युग से जितना जल्दी संभव हो सके, निकलने की आवश्यकता है। विभिन्न स्थानों पर दक्षिणपंथी और धार्मिक दक्षिणपंथियों का उदय लोकतन्त्रों के लिए एक चेतावनी है और समस्त संसार में उदारवादी और विकासशील तत्वों के लिए भी यह चेतावनी कि इस इस्लाम द्वेष पर रोक लगाना अनिवार्य है। संसार में वास्तविकता अधिकतर अपने सिर के बल खड़ी होती है यद्यपि इस समय ऐसा महसूस हो रहा है कि आतंकवाद का कारण इस्लाम है, और मुसलमानों में आतंकवाद की प्रवृत्ति है, हालाँकि सच्चाई यह है कि इस्लाम को बदनाम करने का कारण स्वार्थी तत्वों की राजनैतिक लालसायें हैं।

हमें अन्तर-सामुदायिक सम्बन्धों, शान्ति और सद्भाव की बातों को फैलाने, धर्म को नैतिक मूल्यों के चार्टर के रूप में प्रस्तुत करने और उसे मात्र कर्मकाण्डों तक सीमित न करने, पर काम करने की आवश्यकता है। हमें उन स्वार्थी तत्वों की कारगुजारियों पर मानवीय भावनाओं को वरीयता देने की आवश्यकता है, जो अपने स्वार्थ के लिए स्थानीय और विश्व संसाधनों को अपने काबू में लेना चाहते हैं।

मीडिया : आतंकवाद की दोहरी परिभाषा

पश्चिमी इलेक्ट्रानिक साम्राज्य ने विस्मयकारी पहुँच प्राप्त कर ली है। भूमंडलीकरण ने इसे विचारधारा के मंच पर ज़ोर दिखाने के लिए बहुत सी माँसपेशियाँ उपलब्ध करा दी हैं। इसने सेटेलाइट और केबल तकनीक से त्वरित अन्तर्राष्ट्रीय पहुँच प्राप्त कर ली है। पश्चिमी और विशेष रूप से ऐंग्लो अमेरिकन मीडिया ने विश्व आन-लाईन सेवाओं, रेडियो और अखबार और पत्रिकाओं पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है। पश्चिमी इलेक्ट्रानिक साम्राज्यों के विस्तार के साथ पश्चिमी मीडिया ने सेटेलाइट और केबल तकनीक द्वारा त्वरित विश्व पहुँच प्राप्त की है।

अन्तर्राष्ट्रीय टेलीविज़न समाचारों का बड़ा भाग पश्चिमी समाचार संगठनों के द्वारा फैलाया जाता है। इसमें टेलीविजन न्यूज ऐजेन्सियाँ जैसे राइटर टेलीविजन, वर्ल्ड वाइड टेलीविजन न्यूज और ए.पी.टी.वी. तथा सेटेलाइट और केबल आधारित संगठन जैसे सी. एन.एन., स्काई और बी.बी.सी. विश्व सेवा, इन दोनों प्रकार की सेवाएँ अपनी विभिन्न भाषाओं पर आधारित सेवाओं के साथ विश्व वायु तरंगों पर छायी हुई हैं।

विश्व की चार समाचार ऐजेन्सियों एसोसिएटेड प्रेस, यूनाइटेड प्रेस इण्टरनेशनल, राईटर्स और ऐजेन्सी फ्राँस प्रेस में से पहली तीन अमेरिकी और ब्रिटिश ऐजेन्सियाँ हैं और उनमें चारों विश्व समाचार का लगभग 80 प्रतिशत उपलब्ध कराती हैं। विश्वव्यापी कर्मचारियों का जाल रखने के बावजूद ये कम्पनियाँ जानबूझकर या अनजाने में, पश्चिमी और विशेष रूप से अमेरिकी और ब्रिटिश समाचार एजेण्डा रखती हैं।

इसके अतिरिक्त, भारत के अंग्रेजी भाषा के सभी बड़े समाचार पत्र और समाचार पत्रिकाएँ सिंडीकेट व्यवस्था का लाभ उठाकर लगातार गर्वपूर्वक पश्चिमी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं से टिप्पणियाँ और फीचर छापते रहते हैं। इस प्रकार पश्चिमी समाचार संगठन पश्चिमी हितों को ध्यान में रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय समाचार एजेण्डा तय करने और उन्हें आयोजित करने में बहुत प्रभावकारी होते हैं। यहाँ तक कि स्थानीय समाचार पत्रों को भी बड़े समाचार बाँटने वालों द्वारा अनुवाद की हुई सामग्री पर भरोसा करना होता है और इस तरह वह घरेलू समाचार के उपभोक्ताओं तक अपना प्रभाव फैला देते

हैं। ऐसा केवल भारत में ही नहीं हो रहा है। पूरे विकासशील विश्व को वही कुछ देखना पड़ता है जो प्रभुत्वशाली पश्चिम दिखाना चाहता है।

बहुत से भारतीय समाचार पत्र पश्चिमी मुहावरों, उनकी भाषा, समाचार और मूल्यों को अपनाते हैं और उनकी नक़ल करते हैं।

इस्लामी आतंकवाद की शब्दावली पश्चिमी सामचार माध्यमों ने गढ़ी है। पश्चिमी हितों के प्रति झुकाव रखने के कारण भारतीय मीडिया में इसकी गूँज सुनायी पड़ती है। हालाँकि केवल यह कह देना कि इस्लाम आतंकवाद का न तो प्रचार करता है न बढ़ावा देता है, इसे रोकने के लिए पर्याप्त नहीं। कुछ आतंकवादी अवश्य इस्लाम के पर्दे में शरण लेते हैं और अमेरिका की ओर झुकाव रखने वाली मीडिया के लिए एक बहाना उपलब्ध कराते हैं ताकि जेहाद को आतंकवाद का समानार्थी बताया जा सके।

फिलीस्तीनी क्षेत्रों पर इस्राईल का कब्जा और इस्राईल द्वारा संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों का लगातार उल्लघंन और अमेरिका द्वारा मध्य पूर्व में ऊर्जा के स्रोतों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए खूनी खेल कुछ समूहों को हथियार उठाने के लिए प्रेरित करता है। मध्य-पूर्व में होने वाली घटनाओं का समाचार लिखने में पश्चिमी समाचार माध्यम दोहरे मानदण्ड अपनाते हैं। इस्राईल द्वारा फिलीस्तीनी क्षेत्रों के कब्जे की अनदेखी की जाती है जबकि फिलीस्तीनी मुसलमानों द्वारा इस हमले का विरोध इस्लामी आतंकवाद बताया जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि विभिन्न क़ौमों द्वारा किए गए अपराधों के बारे में निर्णय करने के लिए समाचार माध्यमों के स्वामी अलग मानदण्ड रखते हैं।

ये सभी तत्व इस्लाम और मुसलमानों के साथ आतंकवाद का शब्द जोड़ने में विशेष हितों की ओर इशारा करते हैं। आतंकवाद और आतंकवादियों के मामलों में इतना अधिक दोहरा मानदण्ड अपनाने के पीछे कोई न कोई षड़यन्त्र अवश्य होगा क्योंकि सिर्फ इस्लाम और मुसलमानों को ही ऐसे कृत्यों के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। मुसलमानों द्वारा आतंकवाद के एक-आध कृत्यों को इस्लाम से जोड़ने की आवश्यकता नहीं है जिस प्रकार श्रीलंका के हिन्दू आतंकवादियों के कृत्यों के लिए हिन्दुओं को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। लेकिन मीडिया का यह असन्तुलन विकसित पश्चिमी देशों को कुछ ऐसे लोगों पर आतंकवाद का आरोप लगाने का अधिकार दे देता है जिनके पास मीडिया नहीं है।

सलमान रुश्दी ने इस्लाम को अपमानित करने का जो प्रयास किया है उससे मुसलमानों को दुख होता है लेकिन पश्चिमी समाचार माध्यमों के लिए अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के बहाने रुश्दी का बचाव करना आवश्यक है। पश्चिमी देश रुश्दी का बचाव करते हैं लेकिन होलोकास्ट का इन्कार करने पर डेविड इरविन को जेल भेज देते हैं। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की यह कैसी विडंबना है। संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्दर इस्राईल और उसकी नीतियों की आलोचना करना लगभग असंभव है। इस तरह के प्रयास करने वाले सभी लागों के विरुद्ध सामवाद विरोधी क़ानून के अन्तर्गत मुकद्दमा चलाया जाता है। इससे एक बात स्पष्ट है कि पश्चिम को भी कुछ विश्वासों की हर कीमत पर रक्षा करनी होती है।

आतंकवाद की जड़ें

पिछले कुछ दशकों के दौरान पूरे संसार में व्यापक हिंसा देखने को मिली है जिसमें बहुत सी जानें गयीं और जन-सम्पत्ति का विनाश हुआ। कहा जाता है कि वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर के दो टॉवरों पर हमले आतंकवादियों के कारनामें हैं। यह अभी पिछले दिनों की घटना है और हमें इसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। इस सब का अधिकतर श्रेय आतंकवादियों को दिया गया है जिनके बारे में यह कहा गया कि वे जेहाद की भावना से प्रेरित थे। यह भी कहा गया था कि उनका सम्बन्ध उस क्षेत्र से था जो पाकिस्तान से लेकर मध्य-पूर्व तक फैला हुआ है। इसने इस्लाम और जेहाद की विचारधारा पर सवाल उठाया है जिसकी व्याख्या काफिरों के विरुद्ध पवित्र युद्ध के रूप में की जाती है।

मुसलमान संसार की आबादी का लगभग 23 प्रतिशत हैं अर्थात उनकी संख्या 170 करोड़ है। इस्लाम शब्द अरबी भाषा के शब्द *सिल्म* अथवा शान्ति से निकला है और इसे 'शान्ति का धर्म' समझा जाता है। इस्लाम के विरोधी भी यह स्वीकार करेंगे। वास्तव में इस्लाम का अर्थ शान्ति है और इस धर्म में ऐसा कुछ नहीं है जो अपने अनुयायियों को अन्यायपूर्ण हिंसा करने पर प्रेरित करता हो। यहाँ तक कि 9 सितम्बर के बाद आने वाले दशक में इस्लाम और मुस्लिम दुनिया नॉटो देशों के संगठित हिंसा का मुख्य रूप से शिकार रही है। विश्व शान्ति और सुरक्षा को स्थापित करने के दावे के साथ अमेरिकी सेनाओं ने दो मुस्लिम देशों अफगानिस्तान और इराक पर आक्रमण किया और उन्हें पूर्णतः नष्ट कर दिया। हिंसा का चक्र लगातार चल रहा है और अब भी यहाँ के नागरिकों को शान्ति वापस नहीं मिल पायी है। 10 लाख से अधिक लोगों ने अपनी जान गंवायी और 50 लाख लोग बेघर हो गये।

> इन जैसे लोगों के बारे में सर्वशक्तिमान अल्लाह क़ुरआन में फ़रमाता है:
> और जब उनसे कहा जाता है कि "ज़मीन में बिगाड़ पैदा न करो", तो कहते हैं : "हम तो केवल सुधारक हैं। जान लो! वही हैं जो बिगाड़ पैदा करते हैं, परन्तु उन्हें एहसास नहीं होता।" (क़ुरआन 2,11-12)

इस समय दुनिया में शान्ति और सुरक्षा पर जो बहस चल रही है उस बहस पर

शक्तिशाली पश्चिमी ताक़तों और इनकी ताक़तवर मीडिया का प्रभुत्व है। संयुक्त राष्ट्र जैसे विश्व संगठन भी इन्हीं देशों द्वारा नियन्त्रित होते हैं। शान्ति वार्त्ताओं के माध्यम से यह मीडिया जो कुछ देती है, हमें उसी पर विश्वास करना पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय मीडिया में छोटे देशों की आवाज़ चाहे वह कितनी ही विवेकपूर्ण हो, जगह नहीं पाती। अतः जब हिंसा और अराजकता के लिए इस्लाम और मुसलमानों को आरोपों का निशाना बनाया जाता है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वे देश स्वयं समझते हैं कि इस्लामी देश अपनी रक्षा करने की क्षमता नहीं रखते। पश्चिमी देश इन देशों पर आरोप लगाते हैं कि वह पश्चिम विरोधी ताक़तों को, पश्चिम के ऊपर, पश्चिमी जनता पर या विश्व स्तर पर पश्चिमी हितों पर, हिंसक हमला करने के लिए उकसाते हैं। इन हिंसक हमलों के लिए पश्चिम ने आतंकवाद की शब्दावली गढ़ी है और समस्त संसार को इसी बात को समझाने के लिए लम्बे-लम्बे लेख और किताबें तैयार की हैं। अधिकतर विकासशील देश अपने हितों को पश्चिमी देशों से जोड़े हुए हैं और वह उनके आदेशों का पालन करने के लिए विवश हैं और वह वैकल्पिक तथ्यों और परिभाषाओं द्वारा मुकाबला करने से बचते हैं। जो देश पश्चिमी देशों के आदेशों का पालन करने से मना करते हैं, उन्हें प्रतिबन्धों द्वारा दण्डित किया जाता है। ये सब राजनीति के विभिन्न पहलू हैं। हमें आतंकवाद, जिस आतंकवाद के आज मौजूद होने बात आज की जा रही है उसकी वास्तविकता पर, और जो कारक इसके स्रोतों को पोषित करते हैं उनपर वार्त्ता करने की आवश्यकता है, क्योंकि ये सब राजनीति के विभिन्न पहलू हैं।

वर्तमान संदर्भ में मध्य-पूर्व में तलाश की जा सकती हैं जहाँ पश्चिम ने यूरोप की साम्यवाद विरोधी भावनाओं की क्षतिपूर्ति और नाज़ी जर्मनी द्वारा यहूदियों के नरसंहार के नतीजे में सहयूनी राष्ट्र इस्राईल की स्थापना की। अंग्रेजों ने इस्राईल का अवैध गर्भ धारण किया और इसकी सेवा और पालन-पोषण अमेरिका ने किया जो लोकतन्त्र और नागरिक स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा वकील है।

जब इस्राईल अस्तित्व में आया तो 7,50,000 अरबों के मुकाबले वहाँ यहूदियों की संख्या मात्र 60,000 थी। लेकिन ब्रिटिश विदेश सचिव ए.जे.बालफोर ने सन् 1918 में लिखाः "चार बड़ी विश्व शक्तियाँ सहयूनवाद के लिए प्रतिबद्ध हैं और उस प्राचीन भूमि में रहने वाले 7,00,000 अरबों के पूर्वाग्रहों और उमंगों की तुलना में सहयूनवाद अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि चाहे वह सही हो या ग़लत, अच्छा हो या बुरा, इसकी जड़ें प्राचीन परम्परा में, वर्तमान आवश्यकताओं में, और भविष्य की आशाओं में मौजूद हैं।"

इस्राइली इतिहासकारों में सबसे अधिक मुखर हैफा विश्वविद्यालय का शोधकर्त्ता इलान फेथ है। एसोसिएटेड प्रेस के डॉन पेरी को दिए गए एक साक्षत्कार में इस प्रश्न

का उत्तर ज़ोरदार 'हाँ' में दिया कि ''क्या इस्राईल का जन्म पाप में हुआ है?'' उसने ज़ोर देकर कहाः एक भूमि जो अरबों की थी यहूदी उससे उनको बेदखल करते हुए और निकालते हुए आए और उसपर अधिकार कर लिया,..... हम एक उपनिवेशवादी अधिकार करने वाले बनना चाहते थे और इसके साथ-साथ हम अपने आप को नैतिकतावादी भी सिद्ध करना चाहते थे। क्या इस तरह के अत्याचार से कभी सहमत हुआ जा सकता है? फिलिस्तीन सात सदियों से मुस्लिम शासन के अन्तर्गत रहा है।

एक इस्राइली पत्रकार और इतिहासकार टामस सेगेव ने अपनी किताब ज्यूज़ ऐण्ड अरब्स अन्डर द ब्रिटिश मेनडेट (ब्रिटिश दृष्टिकोण में यहूदी और अरब) में यह दस्तावेज़ प्रस्तुत किया है कि यहूदी सरकार की स्थापना के लिए 1919 से 1948 तक फिलिस्तीन पर अपने शासन के दौरान ब्रिटिश शासकों ने किस प्रकार सहयूनी नेताओं से मिलकर ताकत और धोखे का प्रयोग योजनबद्ध रूप से किया। इस लेखक के शोध के नतीजे में उसे दिलचस्प एन्काउटर तक ले जाया गया।

सेगेव लिखता हैः सहयूनी संगठन और ब्रिटिश सरकार लगातार प्रभावशाली अरबों को घूस देते रहे! राष्ट्रपति रुज़वेल्ट ने चैम वेज़मान को बताया कि उसके विचार में अरबों को खरीदा जा सकता है..... उनकी बात-चीत के बाद मिनटों में अरब दुनिया के लिए बख्शीस प्रकट हुई। यहूदी एजेन्सी का सबसे बड़ा ग्राहक ट्रान्स जार्डन का राजकुमार अब्दुल्लाह प्रतीत होता है।

आज अरबों का क्रोध संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन और जिस राज्य इस्राईल को उन्होंने अरब दुनिया में रोपा है, इनकी तुलना में अपने भ्रष्ट और अयोग्य नेताओं के विरुद्ध कम नहीं है। इन बम फेकने वाले और जंगली लोगों का उभार अत्यधिक भ्रष्ट और अयोग्य अरब सरकारों का परिणाम है।

इस पृष्ठभूमि में देखा जाए तो मध्यपूर्व के वर्तमान संकट में इस्लाम की कोई भूमिका प्रतीत नहीं होती, इसकी जड़ें केवल उस क्षेत्र में इस्राईल को जन्म देने में निहित हैं, और इसकी जड़े पश्चिम के तेल से सम्बन्धित उन षड़यन्त्रों में हैं जो सन् 1950 और 1960 के दशकों में अरब क्षेत्रों में पाए गए थे और अरब राष्ट्रवाद की उन ताक़तों में हैं जिन्हें इस्राईल के अत्याचारों के नतीजे में सक्रिय किया गया था। इस्राईल से तीन बड़े युद्ध, हिज्बुल्लाह और इस्राईल के बीच युद्ध में लेबनान की तबाही, पश्चिमी किनारे और सीरिया के कुछ भाग पर बलात् कब्जा और फिलिस्तीनियों को छोटे क्षेत्रों में, दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद की तर्ज पर क़ैद करने, उनकी खेती की जमीनों और पानी के स्रोतों पर अवैध अधिकार, अरबों को उनके घरों से निकालने के तीन अभियानों, अरबों को

आपस में एक-दूसरे से उनकी जीविका कमाने के स्थान से अलग करने के लिए 375 कि0मी0 लम्बी दीवार खड़ी करने से, लगातार अरबों के क्रोध को ईधन मिल रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि युद्ध के लिए पुकार ने इस्लामी रंग ले लिया है जिस तरह से जार्ज बुश ने क्रूसेड की शब्दावली का प्रयोग वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर के दो टॉवरों पर आतंकवादी हमलों की आरम्भिक प्रतिक्रिया में किया था।

मुस्लिम क्षेत्रों में उग्र राष्ट्रवाद को विकसित करने वाले अमेरिका, ब्रिटेन और इसराईल को इस तरह की कोई बात सहमत नहीं कर सकती। केवल यही नहीं कि इराक पर हमले का मामला इस निराधार सिद्धान्त पर तैयार किया गया कि उसके पास बड़े पैमाने पर तबाही फैलाने वाले हथियार मौजूद है और अफगानिस्तान पर कार्पेट बमबारी को इस बुनियाद पर सही ठहराया गया कि इस क्षेत्र को अल-कायदा ने न्यूयार्क पर 11 सितम्बर को हमला करने के लिए प्रयोग किया। प्रसिद्ध लेखक नोआम चौम्स्की (हेजीमोनी ऐण्ड सरवाइवल) पेंग्विन, 2003, पृष्ठ 200) बुश प्रशासन पर आरोप लगाते हैं कि उन्होंने अफगानिस्तान के विरुद्ध हमले का आरम्भ 11 सितम्बर के हमले में उस देश की लिप्तता की जानकारी मिलने या इसकी पुष्टि से बहुत पहले कर दिया था।

संयुक्त राज्य अमेरिका मुस्लिम देशों पर आक्रमण और अत्याचार और उनपर नियन्त्रण की योजना सन् 1958 से बना रहा था। राष्ट्रपति आईज़न हॉवर प्रशासन ने तीन तेल उत्पादक क्षेत्रों की पहिचान की थी जो उत्तरी अफ्रीका, इण्डोनेशिया और मध्य पूर्व में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ड्यूल्स ने समस्या की पहिचान विशुद्ध राष्ट्रवाद के रूप में की थी। याद रखिए कि यह समस्या विशुद्ध इस्लाम की नहीं थी। अमेरिका के स्टेट डिपार्टमेन्ट को उत्तर अफ्रीका में फ्राँसीसी साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध राष्ट्रवादी शक्तियों की महान विजय, राष्ट्रपति नासिर का अरब राष्ट्रवाद और गुटनिरपेक्ष नीति और इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकार्णो की आवश्यकता से अधिक लोकतान्त्रिक व्यवहार, परेशान कर रहे थे (नोआम चोम्स्की, हेज़ीमोनी और सरवाइवल)। उसी समय इसराईल को युद्ध छेड़ने का प्रोत्साहन और अरबों को आपसी टकरावों में लिप्त करने का प्रोत्साहन मिला। इसलिए कोई अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है कि अरब और मुस्लिम क्षेत्रों में वर्तमान क्रोध के पीछे प्रबल प्रेरक क्या हैं।

पश्चिमी देश इस्लाम के विरुद्ध आतंकवाद का आरोप लगाते हैं। इसलिए इसे इसी पृष्ठभूमि में देखने और इसका विश्लेषण करने की आवश्यकता है। जो लोग इस्लाम को नहीं जानते, उनके अन्दर इस्लाम का डर पैदा करने के लिए आतंकवाद, पहले से जारी बहुत सी तकनीकों में से एक तकनीक है।

हिंसा आतंकवाद और नरसंहार की सूची में पश्चिम सबसे आगे

आतंकवादी आवश्यक नहीं कि अपने धर्म पर चलने वाले ईसाई, यहूदी, बौद्ध, हिन्दू या मुसलमान हों। लेकिन वह अपने साथ जो घृणा का तत्व रखते हैं उसकी जड़ें उनके सांस्कृतिक विकास और जिस समाज में वह रहते हैं उसके द्वारा दी गयी विचारधाराओं में होती हैं। पिछली सदियों के इतिहास में हिंसा नरसंहार और आतंकवाद के प्रसार की जो बड़ी घटनाएँ हुई हैं उनपर सरसरी दृष्टि डालना लाभदायक होगा। हालाँकि उन्हें और उनके धर्म को उस तरह बदनाम करने से परहेज किया गया है, जिस तरह पूरी दुनिया में जो आतंकवाद की घटनाएँ पिछले दिनों देखी गयीं उनपर इस्लाम और मुसलमान की मोहर लगा दी गयी।

इसके बावजूद जबसे ईसाई क्षेत्रों में इस्लाम का प्रसार सातवीं शताब्दी में हुआ, इस्लाम धर्म को गलत ढंग से हिंसा और युद्ध का धर्म बताया गया। मध्य-पूर्व में पिछले दिनों की हिंसा और 11 सितम्बर के बाद और अधिक जोर-शोर से इस्लाम को आतंकवाद और असहनशीलता का धर्म होने का आरोप लगाया जा रहा है। क्या यह सही है या इस पहेली की कुछ महत्वपूर्ण कड़ियाँ लुप्त हैं।

आतंकवाद और इस प्रकार की अन्य प्रवृत्तियों पर पश्चिमी देशों के दोहरे रवैये और दोमुँही बातों के बहुत से उदाहरण पेश किए जा सकते हैं। मीडिया जनता का ध्यान जिस दिशा में केन्द्रित कर रही है उस पृष्ठभूमि में निम्नलिखित तथ्यों पर विचार कीजिए जिनसे अधिकतर लोग अनभिज्ञ हैं क्योंकि मीडिया इन तथ्यों पर कम ही विचार करता है। इनमें से कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:

कैथोलिक चर्च की अध्यक्षता कर रहे पोप के ईसाइयों पर निरंकुश अधिकार के मुकाबले में मार्टिन लूथर किंग ने अपने अलग प्रोटेस्टेन्ट ईसाई धर्म की स्थापना की। इसके बाद मार्टिन लूथर किंग के अनुयायियों को क्रूरतापूर्वक उत्पीड़न का शिकार बनाया गया और कैथोलिक ईसाईयों ने उनके घरों को जलाया और उनकी महिलाओं के साथ बलात्कार किया। किसी ने भी कैथोलिक ईसाइयों पर आतंकवाद का आरोप नहीं

लगाया। क्या किसी ने ऐसा आरोप लगाया?

जर्मनी का नाज़ी तानाशाह हिटलर जो कि संयोग से ईसाई था, उसने बड़े पैमाने पर नरसंहार किया जिसमें 6 मिलियन यहूदी मारे गये। इससे हर एक सहमत होगा कि यहूदियों के विरुद्ध वह ईसाई पूर्वाग्रह ही था जो इस दौरान नरसंहार के रूप में परिणत हुआ। क्या किसी ने हिटलर को ईसाई आतंकवादी की संज्ञा दी? मुश्किल से किसी ने यह संज्ञा दी होगी।

स्टालिन, मुसोलिनी और माओ त्से तुंग ने लाखों लोगों की हत्या की लेकिन अभी तक उन्हें आतंकवादी नहीं कहा गया। यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्यों?

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में सर्ब ईसाइयों ने बोस्निया के मुसलमानों का नरसंहार किया लेकिन उन्हें भी ईसाई आतंकवादी के दाग़ से बचा लिया गया।

पश्चिम बंगाल के पुरलिया जिले में ब्रिटिश उग्रवादी पीटर ब्लीच और डेनमार्क के आतंकवादी किम डेवी ने विद्रोहियों के लिए हथियार गिराए। भारतीय मीडिया ने उन्हें ब्रिटिश य पश्चिमी आतंकवादी कहने से मुँह चुराया। भारत सरकार ने पीटर ब्लीच को उस समय रिहा कर दिया जब वह अपनी सज़ा का सातवाँ वर्ष गुज़ार रहा था।

अमेरिकी आतंकवादी रेमण्ड डेविस पाकिस्तानी तहरीक-ए तालिबान के लिए भर्ती करते हुए पाया गया और जब उसने दो पाकिस्तानियों की हत्या कर दी तो उसे गिरफ्तार कर लिया गया। अमेरिका ने उसकी रिहाई के लिए मोल-भाव किया और इस्लामी शरीअत के अनुसार छुड़ाने के लिए उसने खूनबहा अदा किया। यदि अमेरिकी मीडिया उसे अमेरिकी आतंकवादी के रूप में प्रचारित करे तो प्रत्येक व्यक्ति को इसपर आश्चर्य होगा।

अमेरिकी नौसेना ने एक ईरानी हवाई जहाज को फारस की खाडी में मार गिराया जिसमें सन् 1990 में 259 निर्दोष यात्री मारे गए। इसे किसी ने आतंकवादी कारवाई का नाम नहीं दिया क्यों?

अमेरिकी बहुर्राष्ट्रीय कम्पनी यूनियन कार्बाइड (जिसे अब डोव जोन्स ने अपने अधिकार में ले लिया है) से ज़हरीली गैस के रिसाव के कारण दिसम्बर 1984 में भोपाल में 2,500 व्यक्ति मारे गए। अमेरीकियों ने यूनियन कार्बाइड के मुखिया एन्डरसन को मुकद्दमा चलाने के लिए भारत सरकार के हवाले करने से इंकार कर दिया। इसके विपरीत उनके अपने देश में लॉकर बी पर बम बरसाने का मामला देखिए, उस मामले में पश्चिमी देशों में मुकद्दमा चलाने पर ज़ोर दिया गया। यह दोहरा मापदण्ड क्यों?

इस्राईल निहत्थे फिलीस्तीनियों के विरुद्ध अकल्पनीय अत्याचार करता है और इसने अपने देश के क्षेत्रफल से तीन गुना फिलीस्तीनी ज़मीन को हड़प लिया है और अपने

देश के अन्दर एक रंगभेदी दीवार बना ली है ताकि वह फिलीस्तीनी लोगों को अलग कर सके और उनके जलस्रोतों को हड़प सके। इसके बावजूद उसे मध्य-पूर्व का एक मात्र लोकतन्त्र कहा जाता है और अन्य देशों को निरंकुश देश कहा जाता है। इसके प्रधानमन्त्री मिनाखम बेगिन को कभी ब्रिटिश सरकार आतंकवादी कहा करती थी लेकिन उसे नोबेल शान्ति पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। हमारे कान अब भी यहूदी आतंकवादी जैसी शब्दावली सुनने के लिए अभी तक तरस रहे हैं। न्याय की यह कैसी बिडंबना है!

आयरिश रिपब्लिकन आर्मी के विद्रोहियों ने अनगिनत ब्रिटिश नागरिकों पर बम बरसाये और उनकी हत्या की परन्तु उनको आई.आर.ए. आतंकवादी नहीं कहा गया हालाँकि यह तथ्य सब जानते हैं कि उत्तरी आयरलैण्ड ब्रिटेन से अलग होना चाहता है क्योंकि वह लोग कैथोलिक ईसाई धर्म में विश्वास रखते हैं। अभी तक यह मालूम नहीं हो सका है कि उन्हें आतंकवादी क्यों नहीं कहा गया?

सभी मुस्लिम देशों में कुल मिलाकर जितने लोग मारे गए हैं या उनका अपहरण हुआ है, उससे कहीं अधिक मध्य और दक्षिण अमेरिका में लोगों की हत्या और अपहरण gq, gSA ; g vkdMs(*www.Nationmaster.com*) ने प्रस्तुत किए हैं।

जिन देशों में मुसलमान बहुसंख्यक हैं, उनमें कुल मिलाकर जितनी हत्याएँ होती हैं वह केवल अमेरिका में होने वाली हत्याओं से कम हैं जहाँ लोग मामूली बातों पर हर रात एक-दूसरे की हत्या करते हैं। यह आँकड़े (*www.Nationmaster.com*) ने प्रस्तुत किए हैं।

यदि धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण से देखें तो क्या अमेरिका के लोग उन दो लाख निर्दोष महिलाओं, बच्चों और मर्दों की मृत्यु के जिम्मेदार नहीं हैं जो अमेरिका द्वारा हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराए गए नाभकीय बमों में मारे गए थे? क्योंकि अमेरिकी शासक बार-बार कहते हैं कि युद्ध सेनाओं के बीच होना चाहिए और निर्दोष नागरिकों को बन्दूकों का निशाना नहीं बनाना चाहिए। लेकिन इसके बावजूद इसी उल्लेखनीय मामले में कुछ लोगों ने यह फैसला किया कि इतनी बड़ी संख्या में लोगों की हत्या से जापानियों का मनोबल टूट सकता है जिससे वह समर्पण कर सकते हैं।

निश्चित रूप से बहुत से विवेकशील लोग नहीं चाहते कि उनके धर्म या क़ौम को किसी मानने वाले समूह की कारवाईयों के आधार पर जाँचा जाए। उदाहरण के लिए जर्मनवासियों को हिटलर की कारवाईयों से नहीं जाँचना चाहिए और न ही हिरोशिमा और नागाशाकी पर बम गिराने और हजारों निर्दोषों की हत्या करने के लिए सामान्य

अमेरिकियों को जिम्मेदार ठहराना चाहिए।

इसी तरह अधिकतर ईसाई क्रुसेड युद्धों की बर्बरता अथवा स्पेन में चलाये इन्कवीजीसन से शर्मिदा हैं। वास्तव में यह वही तर्क है जिससे महान मुक्केबाज मुहम्मद अली ने प्रयोग किया जब उनसे एक ईसाई रिपोर्टर ने पूछा कि यह जानने पर उनको कैसा लगता है कि ओसामा बिन लादेन उसी धर्म का मानने वाला है जिसको वह मानते हैं तो उन्होंने उस रिपोर्टर को उत्तर दिया, ''आपको कैसा लगता है जब आपको हिटलर के बारे में बताया जाए क्योंकि उसका सम्बन्ध आपके धर्म से था।''

बहुत से धर्मों और सभ्यताओं में यह धारणा है कि ''जो लोग सीसे के घरों में रहते हैं उन्हें दूसरों के घरों में पत्थर नहीं फेकने चाहिए।'' अतः अब आप अपने बारे में विचार कीजिए, आप मुसलमानों पर पत्थर फेंक रहे हैं जबकि आप अपने घर की दशा कि अनदेखी कर रहे हैं।?

अब पश्चिमी स्रोतों से आने वाले तथ्यों की रोशनी में ही अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की रूपरेखा पर एक दृष्टि डालते हैं और हम यह निर्णय करने का प्रयास करते हैं कि मुसलमानों या इस्लामी दुनिया का स्थान इसमें कहा है। अमेरिका के स्टेट डिपार्टमेन्ट की वार्षिक रिपोर्ट *पैटर्न ऑफ ग्लोबल टेररिज्म 1997* के अनुसार 1992 से 1997 के बीच आतंकवाद की जिन घटनाओं की रिपोर्ट मिली उनमें सबसे अधिक आतंकवादी घटनाएँ यूरोप (831) में हुईं; उसके बाद सबसे अधिक लैटिन अमेरिका (602) फिर मध्य-पूर्व का स्थान तीसरा है जहाँ 412 घटनाएँ हुईं। उसी अवधि में यूरोपीय घटनाओं में मरने वाले लोगों की संख्या 7621 थी और मध्य-पूर्व की घटनाओं में मरने वालों की संख्या 2692 थी। ये आँकड़े इस निष्कर्ष के महत्व को नहीं घटाते कि आतंकवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है और यह केवल मुसलमानों और मुस्लिम बहुल मध्य-पूर्व का इस पर एकाधिकार नहीं है। ये आँकड़े एडमंड के राल्फ बेबन्टी ने प्रस्तुत किए हैं।

वाशिंगटन स्थित वाल्श स्कूल ऑफ इन्टरनेशनल एफेयर्स ने निम्नलिखित टिप्पणी कीः ''एक बौद्ध ओम शिनरिक्यो द्वारा जहरीली गैस का प्रयोग, एक अमेरिकी ईसाई द्वारा ओकलाहोमा बमबारी, उत्तर आयरलैण्ड के कैथोलिक ईसाइयों द्वारा लम्बे समय से चल रहा आतंकवाद, भारतीय हिन्दुओं द्वारा की गयी हिंसा (बाबरी मस्जिद विधंस्व और उसके बाद खूनी संघर्ष को याद कीजिए) और मुसलमानों के विरुद्ध बौद्धों का नरसंहार, बोस्निया और कोसोवो में रुढ़िवादी सर्ब ईसाइयों द्वारा नस्लीय हिंसा, लैटिन अमेरिका में नशीले पदार्थों से सम्बन्धित कैथोलिक भीड़ द्वारा की गयी हिंसा और श्रीलंका में हिन्दू तमिलों द्वारा श्रीलंका की बौद्ध सिंहली सरकार के विरुद्ध आतंकवाद के अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य को और इसके उद्भव के सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता को दर्शाता है।''

यदि हम फेडेरल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टिगेशन की रिपोर्ट के आँकड़ों के अनुसार अमेरिका में आतंकवाद की घटनाओं पर अधारित तथ्यों पर दृष्टि डालें तो (fbi.gov)
1. एफ.बी.आई की फाईलों के अनुसार जिसे fbi.gov पर देखा जा सकता है केवल 6 प्रतिशत आतंकवादी मुसलमान हैं। अमेरिकी अधिक्षेत्र पर आतंकवादी हमलों के शेष प्रतिशत में लैटिन अमेरिकी 42 प्रतिशत, चरम वामपंथी समूह 24 प्रतिशत, यहूदी चरमपंथी 7 प्रतिशत, साम्यवादी 5 प्रतिशत और अन्य आतंकवादी संगठन 16 प्रतिशत सम्मिलित हैं।
2. यदि केवल 6 प्रतिशत आतंकवादी ही मुसलमान हैं तो क्यों मीडिया केवल इस्लामी उग्रवादियों के हमलों की खबर छापता है? यह समझ में नहीं आता और जिस तरह इसका चित्रण किया जाता है वह पूर्णतः धोखा है और भ्रमित करने वाला है। (इसका अर्थ यह नहीं कि यह 6 प्रतिशत का आँकड़ा स्वागत करने योग्य है। यह प्रतिशत भी बहुत ही खेदजनक है)।
3. फिर यदि हम यूरोप में आतंकवाद के तथ्यों का विश्लेषण करें तो, यूरोपोल की टाईम्स ऑफ इण्डिया 29-07-2011 की रिपोर्ट के अनुसार,
''यूरोप में अधिकतर आतंकवादी हमलों के पीछे इस्लामवादी नहीं बल्कि अलगाववादी हैं''।

4. गोरा आतंकवादः घृणा की संस्कृति

सम्पादकीय डकन हेराल्डः *http://www.deccanherald.com/content/269972/culture-hate.html*

एक अमेरिकी पूर्व सैनिक द्वारा विस्कानसिन स्थित गुरद्वारे में 6 सिखों की हत्या जिसके बारे में कहा गया है कि उसका सम्बन्ध गोरा सर्वोच्चतावादी समूह से था। यह समाचार रेखांकित करता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में नस्लवाद और असहनशीलता ने गंभीर चुनौती खड़ी कर दी है।

अमेरिका के सिख समुदाय पर आतंकवादी हमले गोरा आतंकवाद की ओर एक बार फिर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, इस मामले में हज़ारों अमेरिकीयों से गिरफ्तार करके केवल इसलिए पूछताछ की गयी है कि वह मुसलमान हैं और दाढ़ी रखते हैं।

आतंकवाद के विशेष चित्रण ने अमेरिका को अपने अन्दर के शत्रुओं से बेखबर कर दिया है। यद्यपि अमेरिकी अधिकारी इस्लामी आतंकवादियों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। वह ईसाइयों और गोरा सर्वोच्चतावाद के समर्थकों को फैलने और आतंकवादी संगठनों के विस्तार की अनुमति दे रहे हैं। सन् 2009 से दक्षिणपंथी

चरमपंथी समूहों की संख्या अमेरिका में 149 से बढ़कर 824 हो गयी है।

अमेरिकी मीडिया बहुत हिचहिचाहट के साथ ही यह स्वीकार करता है कि इस घृणापूर्ण अपराध के पीछे गोरा सर्वोच्चतावाद है।

हथियारों की संस्कृति और आतंकवाद इस्राईल के लिए लगातार अमेरिकी समर्थन का सीधा परिणाम है और यह नतीजा अरब क्षेत्रों और येरुशलम पर अधिकार और अमेरिका द्वारा इस्राईली राज्य को भारी आर्थिक मदद देना है। बहुत से लोग और बुद्धिजीवी अब इस पर ध्यान दे रहे हैं। निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान दीजिए।

इस्राईली अधिकृत क्षेत्रों पर अधिकार छोड़ने के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्वीकार किए गए प्रस्तावों को कभी लागू नहीं किया गया लेकिन अमेरिकी सेनाएँ इराक द्वारा कुवैत पर अधिकार को छुड़ाने के लिए मध्य-पूर्व में उतर आयीं।

अमेरिका बर्लिन की दीवार को गिरने पर खुशी मनाता है लेकिन जब इस्राईल फिलीस्तीनियों को अपनी सिंचित ज़मीनों, कूँओं और यहूदी आबादियों से दूर करने के लिए 370 कि0मी0 लम्बी दीवार खड़ी करता है तो इसके लिए अमेरिका उसे फण्ड देता है।

बहुर्राष्ट्रीय कम्पनियों के स्वामित्व वाली मीडिया के द्वारा इराक में भारी तबाही मचाने वाले हथियारों की मौजूदगी की झूठी खबर छापी जाती है और तेल से समृद्ध इराक पर अधिकार करने के लिए बहुर्राष्ट्रीय सेना गठित करने के उद्देश्य से उसके खतरे का प्रचार किया जाता है। यह दुष्प्रचार संयुक्त राष्ट्र और दुनिया के दृष्टिकोण के विरुद्ध किया जाता है।

जब इस्राईल नाभिकीय शक्ति विकसित करता है जो इसका कोई नोटिस नहीं लिया जाता लेकिन इराक के नाभिकीय संस्थान पर बम गिराने की अनुमति इस्राईल को दे दी जाती है। ईरान के विरुद्ध धमकियाँ जारी की जा रही हैं। ईरान को अमेरिकी सुरक्षा के लिए एक खतरे के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है जबकि अमेरिका एक मात्र देश है जिसने अब तक जापान में मानव आबादी पर परमाणु बम गिराया है।

अमेरिकी थिंक टैंक द्वारा इस्लाम को विश्व सुरक्षा के लिए खतरे के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। कारण यह बताया जाता है कि अधिकतर मुस्लिम देश अलोकतान्त्रिक हैं। वहाँ मानवाधिकारों की सुरक्षा में कमी है और सरकारें दमनकारी हैं। ''इस्लाम बनाम पश्चिम'' के विषय पर सेमिनार आयोजित हो रहे हैं। लेकिन अमेरिका के लोग चीन से व्यापार करने में हिचहिचाहट महसूस नहीं कर रहे हैं और चीन और पश्चिम के बीच वार्त्ता करने की जरूरत महसूस नहीं कर रहे हैं।

जब लोगों के अधिकारों का दमन होगा तो प्राकृतिक रूप से अपनी सुरक्षा के लिए लोग प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे। स्वतन्त्रता संग्रामों को आतंकवाद नहीं कहा जा सकता। और बहुत से स्वतन्त्रता संघर्ष राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित होते हैं और राष्ट्रवाद की भावना भी पश्चिम का ही आविष्कार है।

अन्त में हम सबको एक नयी विश्व-व्यवस्था के बारे में सोचना चाहिए जो हमें कब्र के लिए ज़मीन का टुकड़ा नहीं बल्कि न्याय के साथ शान्ति प्रदान कर सके।

तमिल अलगाववादियों ने श्रीलंका के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में लगभग तीन दशकों तक अपना विद्रोह जारी रखा। इन हथियारबन्द लोगों को तमिलनाडु में प्रशिक्षण दिया गया। उन्होंने मीनामबक्कम एयरपोर्ट पर बम बरसाया। और एक आत्मघाती हमलावर ने पूर्व प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की हत्या की। लेकिन उन्हें कभी तमिल आतंकवादी नहीं कहा गया। यह स्वीकार्य तथ्य है कि श्रीलंका के सभी तमिल हिन्दू हैं हालाँकि वह केवल सांस्कृतिक रूप से ही हिन्दू हैं।

उल्फा ने पूर्वोत्तर क्षेत्र में 1990 और 2006 के बीच 749 आतंकवादी वारदातें कीं। लेकिन उन्हें कभी आतंकवादी संगठन नहीं कहा गया।

उपरोक्त सूची प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह नहीं है कि विभिन्न धर्मों को आतंकवाद से जोड़ा जाए। बल्कि यह साक्ष्य देने के दिए प्रस्तुत किया गया कि धर्म से यह सम्बन्ध सिर्फ मुसलमानों के बारे में दिखाया जाता है और दूसरों के बारे में नहीं चाहे धर्म उनके संघर्ष का अंग रहा हो जो धार्मिक सांस्कृतिक पहिचान पर आधारित हो। स्पष्ट रूप से उपरोक्त अनेक उदाहरणों में अत्याचार करने के लिए धर्म का सहारा लिया गया। जिन लोगों को हथियार उठाया और जिन लोगों को हिंसा का शिकार बनाया गया। वह निश्चित रूप से ऐसे लोग थे जो यह महसूस करते थे कि उनकी पहिचान को उपयुक्त मान्यता से वंचित किया जा रहा है अथवा उनकी पहिचान ही उनके प्रति अन्याय का मूल कारण है।

बड़ा प्रश्न जिसे उठाने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या पश्चिम आतंकवाद के विरुद्ध लड़ाई के पर्दे में छुपकर इस्लाम धर्म की छवि धूमिल करने का प्रयास नहीं कर रहा है? क्या वह मुस्लिम देशों पर आक्रमण करने, उनको नष्ट करने और वहाँ अपनी पसन्द की सरकार स्थापित करने, उनके संसाधनों का शोषण करने, उनपर अपनी उपभोक्ता वस्तुएँ लादने और अपनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को नवनिर्माण के ठेके दिलाने के लिए षड़यन्त्र के रूप में इसका उपयोग नहीं कर रहे हैं?

इस्लाम में आत्मघाती हमला हराम है

शोध अध्ययन आत्मघाती हमलों को विदेशियों द्वारा अन्य देशों की ज़मीनों पर बलात् अधिकार करने की कार्रवाइयों से जोड़ते हैं।

आइये! सबसे पहले हम परिभाषित करते हैं कि आत्मघाती हमला क्या है:

किसी बम धमाके को आत्मघाती बमबारी उस समय कहा जाएगा जब एक व्यक्ति किसी विस्फोटक को किसी स्थान पर पहुँचाता है, विस्फोट करता है, और विस्फोट के कारण उसमें जान-बूझ कर मर जाता है। इस रणनीति का प्रयोग वर्तमान में विभिन्न समूहों द्वारा अफगानिस्तान, पाकिस्तान, इराक, चेचेन्या और सोमालिया में किया जा रहा है।

दुर्भाग्य से यह रणनीति केवल सैनिक ठिकानों पर हमला करने के लिए ही नहीं बल्कि नागरिक ठिकानों पर हमला करने के लिए भी प्रयोग की जा रही है।

हममें से बहुत से लोग यह मानने लगे हैं कि मुस्लिम लड़ाकों द्वारा विदेशी आक्रमणकारियों का मुकाबला करने के लिए यह सबसे अधिक कारगर साधन है। वह श्रीलंका में तमिल टाइगर्स (जिनका सम्बन्ध संयोगवश हिन्दू समुदाय से था हालाँकि उनका धर्म से लेना-देना नहीं था) थे जिन्होंने सबसे पहले आत्मघाती हमलों का नियमित प्रयोग 1980 के दशक में शुरु किया और उस ज़माने में आत्मघाती कारवाईयों की दर सबसे अधिक थी। उसके बाद नाटकीय रूप से मध्य-पूर्व में इराक और अफगानिस्तान में अमेरिकी हमले के कारण आत्मघाती बमबारी की बारम्बारता बढ़ गयी है।

अमेरिकी राजनीतिशास्त्री राबर्ट पेप जिनका व्यापक रूप से सम्मान किया जाता है। उन्होंने इस विषय पर सबसे अधिक स्पष्ट किताब लिखी है जिसका नाम है ''डाइंग टू विन'' और उन्होंने आत्मघाती आतंकवाद के प्रोजेक्ट का शिकागो में नेतृत्व किया। वह निम्नलिखित दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं: ''पूरी दुनिया में आत्मघाती आतंकवाद बढ़ रहा है, लेकिन यह बात स्पष्ट नहीं है कि क्यों। चूँकि बहुत से ऐसे हमले- जिसमें सितम्बर 11, 2001 का हमला भी सम्मिलित है- इसे मुस्लिम आतंकवादियों ने अंजाम दिया था, जिसके पीछे धार्मिक उद्देश्य थे, इससे यह स्पष्ट लगता है कि इस्लामी बुनियादपरस्ती इसका मूल कारण है। इस परिकल्पना नें इस विश्वास को बढ़ाया कि भविष्य में 9/11

जैसी घटनाओं से मुस्लिम समाजों का पूर्ण रूप से सुधार करके बचा जा सकता है और इराक में अमेरिका द्वारा हमले को पिछले दिनों बड़े पैमाने पर जन-समर्थन के पीछे यही कारण था।

हालाँकि आत्मघाती आतंकवाद और इस्लामी बुनियादपरस्ती के बीच सम्बन्धों की परिकल्पना भ्रामक है और यह घरेलू और विदेश नीतियों को प्रभावित करने वाली हो सकती है और इसके कारण अमेरिका की स्थिति खराब हो सकती है और इससे अनावश्यक रूप से बहुत से मुसलमानों को हानि पहुँच सकती है।"

प्रो0 पेप ने 1980 से लेकर 2003 तक दुनिया भर में होने वाले 315 आत्मघाती हमलों में से प्रत्येक के आँकड़े तैयार किए हैं। इसमें हर वह हमला सम्मिलित है जिसमें कम से कम एक आतंकवादी ने दूसरों को मारने की प्रक्रिया में अपनी हत्या की। इसमें वह हमले सम्मिलित नहीं हैं जो राष्ट्रीय सरकार द्वारा अधिकृत थे। जैसे उत्तर कोरिया द्वारा दक्षिण कोरिया के विरुद्ध हमला। यह आँकड़ा पूरी दुनिया में होने वाले आत्मघाती आतंकवादी हमलों पर सम्पूर्ण जानकारी है, जो अंग्रेजी में मौजूद जानकारी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं जैसे अरबी, इब्रानी, रूसी, और तमिल भाषाओं से छपी हुई या ऑन लाईन एकत्र की गयी हैं। यह आँकड़े दर्शाते हैं कि आत्मघाती आतंकवाद और इस्लामी कट्टरवाद, दुनिया के किसी अन्य धर्म की तुलना में बहुत कम है। वास्तव में आत्मघाती हमलों के मुख्य प्रेरक श्रीलंका में तमिल टाइगर्स मार्क्सवादी लेनिनवादी समूह के थे, जिनके परिवारों का सम्बन्ध हिन्दू धर्म से था लेकिन वे दृढ़तापूर्वक धर्म का विरोध करते थे।

सन् 2007 में, जिस दौरान सर्वाधिक संख्या में आत्मघाती हमले हुए। अमेरिकी सरकार के आँकड़ों के अनुसार यह संख्या 658 थी जिसमें 542 हमले अमेरिका अधिकृत अफगानिस्तान और इराक में हुए। यह संख्या पिछले 25 वर्षों के दौरान होने वाले किसी भी वर्ष में आत्मघाती हमलों की संख्या की दोगुना थी। इसके अतिरिक्त पिछले सात वर्षों के दौरान जो आत्मघाती हमले हुए वह कुल आत्मघाती हमलों का 4/5 हिस्सा हैं और यह हमले पूरी दुनिया में फैलते जा रहे हैं। वाशिंगटन पोस्ट लिखता है कि "सन् 1983 से 50 से अधिक समूहों में बमबारी करने वाले अर्जेंनटीना से अल्जीरिया तक, क्रोशिया से चीन तक और भारत से इण्डोनेशिया तक ट्रक बम, कार बमों से लेकर विस्फोटक बैल्ट, अन्तः वस्त्र, खिलौनों, मोटर-साईकिलों, साईकिलों, नावों, बैकपैक और झूठे गर्भ वाला पेट बनाने का तरीका अपनाया है..... पिछली चौथाई सदी में कुल 1840 घटनाओं में से 86 प्रतिशत से अधिक सन् 2001 में घटित हुई हैं और वार्षिक घटनाओं की संख्या पिछले चार वर्षों के दौरान सर्वाधिक रही है।"

विदेशी सेनाओं द्वारा अधिकृत क्षेत्रों में जो परिस्थितियाँ पैदा होती हैं उनके कारण अधिक से अधिक नौजवान उग्र हो जाते हैं; पश्चिमी सेनाओं के हाथों बड़ी संख्या में नागरिकों की हत्या; अपमान और पराजय की भावना; बदला लेने की प्यास, और कभी-कभी अपने परिवार के लोगों की हत्या के कारण उपजती है। ये सब बहुत ठोस और व्यवहारिक मामले हैं, जिनका सम्बन्ध इस्लामी धर्मशास्त्र से कदापि नहीं है। इस सम्बन्ध में पेप की टिप्पणी राह दिखानने वाली है। वह लोग निष्कर्ष निकालते हैं किः ''लगभग सभी आत्मघाती आतंकवादी हमलों में एक बात समान है कि उनका एक विशेष सांसारिक और रणनीतिक लक्ष्य होता हैः इनका उद्देश्य उस क्षेत्र से आधुनिक लोकतन्त्रों को अपनी सेनाएँ हटाने पर विवश करना होता है। जिसको आतंकवादी अपनी मातृभूमि समझते हैं। मूल कारण धर्म बहुत कम होता है। यद्यपि इसे अक्सर आतंकवादी संगठनों द्वारा लोगों को भर्ती करने के लिए और अधिक व्यापक रणनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रयास में, अन्य साधनों के अतिरिक्त इसे भी एक यन्त्र के रूप में प्रयोग किया जाता है।''

यदि कोई खौफनाक अनुभव अपनी आँखों से कोई नहीं देख पाता तो इसे टेलीविजन पर देख लिया जाता है। एक उग्रता से प्रेरित व्यक्ति से यह आशा नहीं की जाती कि वह हथियार उठाने से इसलिए बाज आ जाएगा कि उसने यह उपदेश सुन लिया है कि इस्लाम आत्मघाती हमले या नागरिकों की हत्या की अनुमति नहीं देता। एक व्यक्ति जो इसलिए बदला लेने पर उतारु होता है कि या तो वास्तविक रूप से या काल्पनिक रूप से उसने अपने परिवार, अपने समुदाय या धर्म के विरुद्ध आक्रमण देखा है और वह दुश्मन का खून करने की कोशिश करेगा। वह ऐसे धार्मिक दृष्टिकोणों की तलाश करेगा, यहाँ तक कि उसे कोई ऐसा दृष्टिकोण मिल जाए जिससे वह अपने घातक गुस्से को उचित ठहरा सके। व्यक्ति को पहले गुस्सा आता है और बाद में वह उसके लिए सोच-समझकर धार्मिक रूप से सही ठहराने का प्रमाण प्रस्तुत करने की कोशिश करता है और वह पहले से निर्धारित लक्ष्य के लिए नैतिक समर्थन प्राप्त करने की कोशिश करता है।

कभी-कभी यह महसूस होता है कि जो यह आतंकवादी ऐसे कृत्यों में संलिप्त होकर अपने मुसलमान होने का दावा करते हैं तो ऐसी परिस्थति में मुसलमानों को किसी दूसरे दुश्मन की जरूरत नहीं है, क्योंकि ये तत्व पूरी क़ौम को हर संभव तरीके से इस तरह कठघरे में खड़ा कर रहे हैं कि मुसलमानों की दुष्ट छवि बनाने में, इन नासमझ तत्वों के कुकृत्यों से अधिक सेवा कोई नहीं कर सकता है।

कोई व्यक्ति ऐसे नासमझी के रास्ते पर क्यों जाता है? क्या यह धर्म की शिक्षा होती है या इन आतंकवादियों के माता-पिता की, या इन आतंकवादियों को तैयार करने की कोई और प्रक्रिया है। जब कोई व्यक्ति आतंक और निर्दोषों की हत्या का रास्ता अपनाता है तो इसके अनेक कारण होते हैं। जब बम्बई की गलियों में मुस्लिम विरोधी नरसंहार (असहाय लोगों की सुनियोजित हत्या) होता है, तो कोई व्यक्ति ऐसे नौजवानों से अवश्य मिलेगा जो प्रतिक्रियावादी हिंसा के माध्यम से बदला लेने की इच्छा प्रकट करेंगे। गुजरात में मुस्लिम विरोधी नरसंहार के बाद बहुत से मुस्लिम समाज शास्त्रियों ने यह भविष्यवाणी की थी कि जनता की इस सुनियोजित हत्या के बाद आतंकवाद निश्चित रूप से बढ़ेगा। इतने विशाल समुदाय में मुसलमानों का एक ऐसा समूह हो सकता है जो नाजुक स्थिति में पहुँच जाए और नासमझी के रास्तों से बदला लेने का विकल्प अपनाये और आतंकवाद उनमें से एक विकल्प है। क्रोध और चोट के साथ इस एहसास से कि अपराधी को सजा नहीं मिलेगी, लोग मिलकर आतंकवाद के रास्ते पर चलते हैं।

दयनीय रूप में यह खौफ काल्पनिक सिद्ध हुआ। गुजरात में अथवा भारत में और कहीं भी ऐसा नहीं हुआ। मुस्लिम संगठनों द्वारा अनेक सम्मेलन किए गए जिनमें अत्याचार के शिकार लोगों से कहा गया कि इन अत्याचारों के विरुद्ध न्याय प्राप्त करने के लिए वह क़ानून का रास्ता अपनाएँ। उलमा ने किसी ऐसी प्रतिक्रिया के विरुद्ध अपने विचार रखे जो बदला लेने का आह्वान करते हों अथवा निर्दोषों और असंदिग्ध लोगों को निशाना बनाने का आह्वान करते हों। बड़े मुस्लिम विद्वानों में से कुछ लोगों ने घोषणा की कि आत्मघाती हमले हराम हैं। मिस्र और सऊदी अरब के बड़े उलमा ने भी ऐसी ही घोषणाएँ कीं। उलमा इस बात पर सहमत हैं कि इस तरह के कदम गुनाह हैं और ये इस्लामी शिक्षाओं के अनुरूप नहीं हैं।

कुछ गुमराह मुसलमानों को इतना अनभिज्ञ नहीं होना चाहिए कि वह इस्लाम के युद्ध नियमों के बारे में न जानें। आप यह नहीं सोच सकते कि कोई चीज़ हराम रही हो वह अचानक हलाल हो जाए, यह इस्लाम नहीं है। आत्महत्या को केवल पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने ही हराम नहीं ठहराया बल्कि इसे सर्वशक्तिमान अल्लाह ने भी हराम ठहराया है। ज्ञान विद्वानों से प्राप्त कीजिए और ऐसे मुसलमानों से जानकारी मत लीजिए जिनके पास कम ज्ञान है अथवा जिनके पास ज्ञान नहीं है और जो अपने नियम स्वयं बनाते हैं। इस तरह के बहुत से हमले राजनैतिक कारणों से ही किए जाते हैं और इनके पीछे धर्म नहीं होता। लेकिन किसी को ऐसा बेवकूफ नहीं बनाना चाहिए कि आप ऐसा काम करके शहीद बन जाएँगे जो कि बड़ा गुनाह है।

इस्लामी रुढ़िवाद

रुढ़िवाद बीसवीं शताब्दी की एक बीमारी है। इस बीमारी ने लगभग सभी बड़ी धार्मिक परम्पराओं- हिन्दू, यहूदी, ईसाई और मुस्लिम- को लग चुकी है, चाहे वह कितनी ही पुरानी हों। रुढ़िवाद धर्म से विवेक को छीन लेता है और विश्वास से हमदर्दी को छीन लेता है। इसकी मुख्य प्रवृत्तियाँ पुनरोज्जीवन, अल्पसंख्यकों के विरुद्ध शत्रुता, बुद्धिवाद का विरोध, असहनशीलता, अहंकार, संकीर्णता, बौद्धिक दिवालियापन और नैतिक अन्धापन हैं। ये बौद्धिक वार्त्ताओं, बहुलतावाद, विचार स्वतन्त्रता, लोकतान्त्रिक शासन, धर्मनिरपेक्षता और हिंसा का सहारा जैसी प्रवृत्तियों में परिलक्षित होती हैं। कोई भी रुढ़िवादी आन्दोलन सामाजिक उत्थान और समानता या आर्थिक उन्नति का कोई कार्यक्रम नहीं रखता। उसके पतन की भविष्यवाणी की जा सकती है और वास्तव में उसके पतन की भविष्यवाणी की जा चुकी है।

एक पूर्व कैथोलिक नन ब्रिटिश लेखिका और कमेन्टेटर जो धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन पर अपनी किताबों के लिए प्रसिद्ध हैं। हमें याद करने के लिए कहती हैं कि रुढ़िवाद अधिकतर धर्मों में उभर कर सामने आया और यह बीसवीं सदी के अन्त के एक विशेष तनाव के प्रतिक्रियास्वरुप पूरी दुनिया में आता हुआ प्रतीत होता है। कुछ क्रान्तिकारी हिन्दू चरमपंथी वर्ण व्यवस्था के बचाव और भारतीय मुसलमानों के विरोध के लिए सड़कों पर उतर आए। उन्होंने यह सिद्ध करने के लिए अन्त तक प्रयास किया कि रुढ़िवाद विशेष रूप से मुसलमानों में है जबकि वह अपने रुढ़िवादी एजेण्डा को शिक्षा और सार्वजनिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में लागू करने के लिए अत्यधिक प्रयास कर रहे हैं। यहूदी रुढ़िवाद ने पश्चिमी किनारे और गाजा पट्टी में अवैध बस्तियाँ बसा रखी हैं और वह अपनी पवित्र भूमि से सभी अरबों को बाहर निकालने का प्रण किए हुए हैं। जेरी फेयरबैल की नैतिक बहुसंख्या और नव ईसाई दक्षिणपंथ जिसने सोवियत यूनियन को एक बुरे साम्राज्य के रूप में देखा, उसने संयुक्त राज्य में सन् 1980 में आश्चर्यजनक शक्ति प्राप्त कर ली। अतः यह सोचना ग़लत है कि रुढ़िवाद विशेष रूप से मुस्लिम अकीदे के अनुयायी लोगों में ही पाया जाता है।

रुढ़िवाद आधुनिकतावाद की चुनौती की एक प्रतिक्रिया है जिसे उत्साही लोग अपने धर्म की अखण्डता और सुरक्षा के लिए ख़तरा समझते हैं। धर्म में विश्वास करने वाले कुछ लोगों ने इस चुनौती का सामना सुधार और विश्वासों से समझौते के द्वारा किया, और दूसरों ने उसका तिरस्कार करके और पुनरोज्जीवन में शरण लेकर किया। पुनरुत्थानवादियों के एक वर्ग ने तिरस्कारपूर्वक पीछे हटकर विचारधारा और कर्म के अनुसार रुढ़िवाद का आक्रामक रवैया अपनाया।

चूँकि रुढ़िवाद आधुनिकतावाद की प्रतिक्रिया था। इसलिए उसने सबसे पहले अपना सिर संयुक्त राज्य में उठाया जो आधुनिकतावाद का शोरुम था। तौहीद के तीन धर्मों में से इस्लाम पहला धर्म था जिसमें रुढ़िवादी तनाव सबसे बाद में विकसित हुआ, जब आधुनिक संस्कृति मुस्लिम दुनिया में 1960 और 1970 की दहाइयों में जड़ पकड़ने लगी। उस समय तक रुढ़िवाद ईसाइयों और यहूदियों में अच्छी तरह रच बस गया था जिसने आधुनिक अनुभव को सबसे अधिक देखा था। वे लोग संयुक्त राज्य में लोकतन्त्र और सेकूलरवाद के सबसे बड़े आलोचक रहे हैं।

जो व्यक्ति भी इस्लाम के पक्ष में बोले उसपर रुढ़िवाद की मुहर लगाने की प्रवृत्ति पूर्णतः निरर्थक ही नहीं बल्कि खतरनाक रूप से ग़लत भी है। मुसलमान एक ही नस्ल और एक ही क़ौम पर आधारित नहीं हैं। मुसलमानों में हर तरह के राजनैतिक दृष्टिकोण और इस्लाम की अलग-अलग व्याखाओं को मानने वाले हैं।

तथापि पिछले दशक में परम्परागत मुसलमानों के एक उभरे हुए और मुखर समूह द्वारा असहनशीलता और उग्रता में वृद्धि हुई है। रुढ़िवाद के उभार के अनेक कारण हैं:

1. आधुनिकतावादी नेताओं द्वारा अत्याचार, जिन्होंने अपने प्रभुत्व को मुस्लिम समाजों पर विशेष रूप से जोर-जबरदस्ती करके क़ायम रखा और परम्परागत नेतृत्व का क्रूरतापूर्वक दमन किया। इन दमनकारी कदमों में क़ैद करना, यातनाएँ देना और धार्मिक नेताओं और चिन्तकों को फाँसी देना सम्मिलित हैं।
2. आधुनिकतावादी नेताओं की आर्थिक और विकास नीतियों की शानदार असफलता जिसके नतीजे में दौलत कम से कम हाथों में एकत्र हो गयी।
3. 505 से लेकर अब तक लगातार परम्परागत चिन्तन, जीवन शैली और उससे जुड़ी प्रत्येक चीज़ का उपहास
4. मुस्लिम देशों में इस्लामी विरोध को जान-बूझ कर विफल करने की पश्चिमी शक्तियों की नीति, इस्लामी नेतृत्व को बुरा-भला कहना, दमनकारी पश्चिमी शैली वाली सरकारों को बढ़ावा देना और मुस्लिम राज्यों को आर्थिक रूप से कंगाल और मुस्लिम समाजों को कर्ज़दार बनाने की नीति है।

आज और....

इस्लाम और आतंकवाद एक दूसरे के पर्यायवाची बन चुके हैं। 11 सितम्बर 2001 की घटनाओं के बाद यह प्राकृतिक रंग में प्रतीत होता है। इसके बावजूद कोई भी चीज़ सच्चाई से आगे नहीं बढ़ी है। उन आतंकवादियों के कृत्यों के लिए इस्लाम पर आरोप नहीं लगाया जा सकता जिन्होंने न्यूयार्क स्थित वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर और वाशिंग्टन में स्थित पेंटागन पर आक्रमण किया था। इसी तरह आयरलैण्ड के ईसाई आतंकवादियों की गतिविधियों के लिए ईसाई धर्म को गैस चेम्बरों के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। आतंकवादी अपने ही घिसे-पिटे तर्कों को मानते हैं और सन्तुलन और विवेक से बाहर और परे रहते हैं। वे भावहीन लोग हैं जिनके बुरे कर्म सभी सचेत लोगों के लिए पीड़ादायक होते हैं।

इस्लामी चेतना, मुसलमानों की व्यापक चेतना, न्याय, सच्चाई और समान मानव मूल्यों में विश्वास रखती है। तमाम मुसलमानों को एक ही रंग में रंगकर हम उनकी मानवता को कम करते हें और हम 170 करोड़ लोगों अर्थात हर पाँच में से एक को, उनके समाज को, उनके इतिहास को पश्चिम के काले पक्ष के चित्रण के रूप में बदनाम करते हैं।

मुसलमान वास्तविक लोग हैं जिनका इतिहास वास्तविक है। लगभग 800 वर्षों तक उनकी संस्कृति ने विज्ञान विद्या और चिन्तन अन्वेषण, साहित्य, यात्रा, राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में दुनिया का नेतृत्व किया है।

आज मुसलमान अपनी ऐतिहासिक पहिचान की एक बार फिर खोज करने का प्रयास कर रहे हैं, अपने आप को नव उपनिवेशवाद और एक दमनकारी और अन्यायपूर्ण विश्व व्यवस्था के भारी बोझ से अपने आप को स्वतन्त्र करना चाहते हैं और एक ज़िम्मेदार और व्यावहारिक भविष्य का निर्माण करना चाहते हैं।

.....कल

बहुत सी विभिन्न दिशाओं में खींच रहे उपद्रव और विरोधाभासों के बीच मुस्लिम दुनिया अपने आप का निर्माण एक सक्रिय, विकासशील और भविष्य की संस्कृति के रूप में करना चाहती है। अत्यधिक मुखर और गिनती के चरमपंथियों के शोर और नारों से दूर हटकर इसमें चिन्तन, परामर्श और वार्त्ताएँ हो रही हैं और लोग पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के सन्देश की समकालीनता और भविष्य में इसके महत्व पर वार्त्ताएँ कर रहे हैं। ये अनेक नये विचार, सिद्धान्त, संस्थाएँ और दृष्टिकोण अन्दर से मुस्लिम समाजों और इस्लाम का सुधार ही नहीं करेंगे बल्कि एक बहुलतावादी दुनिया के विकास में अपना मौलिक योगदान भी प्रदान करेंगे।

यह निश्चित है कि मुस्लिम दुनिया को जिन समस्याओं का सामना है, उनके समाधान न तो साधारण हैं और न ही इनका इलाज ऐसी दवाओं से हो सकता है जो दर्दनाशक मात्र हों। कभी-कभी परिस्थितियाँ बहुत विषम और निराशाजनक दिखायी देती हैं लेकिन मुसलमान अपने ईमान के कारण निरन्तर आशावान रहते हैं। और वह इस बात से और अधिक अवगत हो रहे हैं कि चिन्तन की निरन्तर प्रक्रिया से मिलकर पुनर्विचार की प्रक्रिया के साथ निरन्तर और दूरगामी बौद्धिक सामाजिक और राजनैतिक प्रयास भविष्य के लिए व्यावहारिक विकल्प उपलब्ध करायेंगे। वह कहते हैं कि जागृति का अर्थ आधा युद्ध जीत लेना है।

महिलाएँः

अज्ञात अतीत और अनिश्चित वर्तमान

पश्चिम और पूर्व में लोगों की गलत धारणाओं के बारे में फैसला करने के लिए अतीत में विभिन्न समाजों में महिलाओं के प्रति व्यवहार का सर्वेक्षण करना लाभप्रद होगा।

1. बेबीलोन सभ्यता

महिलाओं की स्थिति निम्न थी और बेबीलोन के क़ानून के अन्तर्गत उनकों सभी अधिकारों से वंचित रखा गया था।। यदि एक पुरुष एक महिला की हत्या कर देता तो उसे दण्डित करने के बजाए उसकी पत्नी को मृत्यु दण्ड दिया जाता।

2. यूनानी सभ्यता

सभी प्राचीन सभ्यताओं में यूनानी सभ्यता को सर्वाधिक शानदार समझा जाता था। इसी अत्यधिक शानदार व्यवस्था के अन्तर्गत, महिलाओं को सभी अधिकारों से वंचित रखा गया था और इन्हें नीच समझा जाता था। यूनानी पौराणिक कथाओं में, एक 'पंडौरा' नाम की 'काल्पनिक महिला' मनुष्य जाति के दुर्भाग्य का कारण मानी जाती थी। यूनानियों की यह धारणा थी कि महिलाएँ निम्न श्रेणी की मनुष्य हैं और ये मनुष्यों से कमतर हैं। हालाँकि महिलाओं का सतीत्व बहुमूल्य था और महिलाओं को उच्च स्थान दिया गया था लेकिन यूनानी लोग बाद में अभिमान और विकृत यौन व्यवहार के वशीभूत हो गए। यूनानी समाज के सभी वर्गों में वेश्यावृत्ति एक नियमित चलन बन गयी थी।

3. रोमन सभ्यता

जब रोमन सभ्यता अपनी कीर्ति के शिखर पर थी, एक पुरुष को अपनी पत्नी की जान लेने का अधिकार भी प्राप्त था। रोमन लोगों में वेश्यावृत्ति और नंगापन सामान्य था।

4. मिस्र की सभ्यता

मिस्र के लोग महिलाओं को बुरा समझते थे और उन्हें शैतान का एक प्रतीक मानते थे।

5. प्रारम्भिक ईसाई धर्म

प्रारम्भिक ईसाई धर्म में महिलाओं को पुरुषों को लुभाने वाली समझा जाता था जो हज़रत आदम को स्वर्ग से उतारने के लिए उत्तरदायी थी।

फ्राँस में सन् 587 ई0 में 'समाज में महिलाओं के स्थान' पर एक सम्मेलन हुआ जिसमें यह निर्धारण करना था कि महिलाओं को वास्तव में मनुष्य समझा जाना चाहिए अथवा नहीं। हेनरी अष्ठम ने इग्लैण्ड में महिलाओं को बाईबिल पढ़ने से रोक दिया था और पूरे मध्य युग में कैथोलिक चर्च महिलाओं को दूसरी श्रेणी के नागरिक जैसा व्यवहार करता था। 1850 से पहले ब्रिटेन में महिलाओं को नागरिक नहीं गिना जाता था और 1882 तक अंग्रेज महिलाएँ व्यक्तिगत अधिकार नहीं रखती थीं।

6. भारतीय सभ्यता

भारत में, कुछ भारतीय समुदायों में सती प्रथा एक धार्मिक अन्त्येष्टि की परम्परा थी जिसमें विधवा महिला अपने आप को अपने पति की चिता पर जला लेती थी। इस प्रथा पर कई बार प्रतिबन्ध लगाया जाता रहा।

6. इस्लाम से पहले अरब में

सातवीं सदी में संसार में अधिकतर औरतों को कमतर समझा जाता था और अरब समाज में भी पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के आने से पहले यही व्यवहार अरबों में भी था। उस जमाने में सामाजिक वातावरण क़बीलाई प्रतिद्वन्दिता, छोटी-छोटी बातों पर युद्ध, लूटमार और सामान्य अव्यवस्था से भरा हुआ था और उनका नेतृत्व विभिन्न क़बीलों के पुरुष करते थे। इस तरह के माहौल में महिलाओं का स्थान निर्विवाद रूप से निम्न था।

इस्लाम से पहले अरब प्रायद्वीप में नवजात लड़की पिता के लिए अपमान का कारण थी और एक बेटी का बाप बनने के अपमान से बचने के लिए उसे जीवित दफन कर दिया जाता था और प्रत्येक दस में एक व्यक्ति इस अपराध में लिप्त होता था। इस

अपराध में पुरुष ही नहीं बल्कि महिलाएँ भी भागीदार होती थीं। माँए अपनी बेटियों को दफन करने के लिए बाप के हवाले कर देती थीं। दूसरे वे लोग निर्धनता के डर से अपने बच्चों की हत्या कर देते थे।

इस्लाम से पहले अरब प्रायद्वीप में कई तरह की विचित्र वैवाहिक प्रथाएँ प्रचलित थीं। पुरुष बार-बार विवाह कर लेते थे और जितनी पत्नियाँ चाहते थे, रखते थे। 10, 20 और कभी कभी सैकड़ों पत्नियाँ रखते थे और यह सामाजिक प्रतिष्ठा का पैमाना समझा जाता था। तलाक सरल थी और बार-बार दी जाती थी। क़ुरआन ने इस प्रचलन को बन्द कर दिया और इसके ऊपर सीमा निर्धारित कर दी और कठोर नियम दिए। उस समय एक और रीति प्रचलित थीः पुरुष महिलाओं से लैंगिक सम्बन्ध से बचने की क़सम खा लेते थे। इस प्रकार उनको अधर में लटका देते थे। न उनकी तलाक हो सकती थी और न वह पुनर्विवाह के लिए स्वतन्त्र थीं और न उनके साथ पत्नी जैसा उपयुक्त व्यवहार किया जाता था। कुछ महिलाएँ अपना पूरा जीवन ऐसे ही बन्धन में व्यतीत करती थीं। क़ुरआन ऐसे पुरुषों से कहता है कि वह अपना मन बना लें , सही ढंग से उन्हें रखें या सही ढंग से छोड़ दें। (देखिए क़ुरआन, सूरः बक़रः, आयत 224 से 227)

बहुत से मामलों में एक विधवा महिला अपने मृत पति की सम्पत्ति समझी जाती थी जो विरासत में उसके पुरुष वारिसों को मिलती थी और ऐसे मामलों में अक्सर उसे अपने पति के दूसरी पत्नी से सबसे बड़े बेटे को विवाह में दे दिया जाता था।

क़ुरआन ने स्पष्ट रूप से इस अपमानजनक प्रथा पर रोक लगा दीः

> ''और उन स्त्रियों से विवाह न करो, जिनसे तुम्हारे बाप विवाह कर चुके हैं, परन्तु जो पहले हो चुका सो हो चुका। निःसन्देह यह एक अश्लील और अत्यन्त अप्रिय कर्म है, और बुरी रीति है।'' (क़ुरआन, 4:22)

यदि विधवा का विवाह अपने मृत पति के सबसे बड़े बेटे से नहीं होता था तो वह अपने पति के भाई के हवाले कर दी जाती थी। इस स्थिति में उनके भाईयों में से एक भाई अपने कपड़े उसके ऊपर फेक देता था और इस प्रकार अपनी सम्पत्ति के रूप में उसपर दावा करता था। विधवा को अपने पति का घर छोड़ने की अनुमति किसी भी स्थिति में नहीं थी।

इस्लाम से पहले अरब समाज में व्यापक लैंगिक उन्मुक्तता के कारण विवाहेत्तर गर्भधारण होते थे। इसके अतिरिक्त अवज्ञा करने पर महिलाओं को बेहरमी से पीटा जाता था।

अधिकतर कबीलों में उन्हें या तो कम सम्मान प्राप्त था अथवा उन्हें बिल्कुल भी सम्मान प्राप्त नहीं था और वे पुरुषों के आनन्द के लिए मौलिक रूप से विलासिता की

वस्तु समझी जाती थीं और घर से बाहर बहुत कम कपड़ा पहनने के लिए स्वतन्त्र थीं। यहाँ तक कि इबादत के दौरान भी (जैसे काबा की परिक्रमा करते समय नंगे होकर परिक्रमा करना) अपने समाज में पुरुषों की प्रसन्नता और मनोरंजन के लिए।

इस्लाम से पहले अरब समाज में महिलाओं को विरासत पाने का अधिकार नहीं था। इसके विपरीत महिलाओं को सम्पत्ति समझा जाता था। उन्हें खरीदा और बेचा जाता और उन्हें विरासत में बाँटा जाता और कर्ज के बदले अदा कर दिया जाता था। क़ुरआन ने इन प्रथाओं का उन्मूलन किया और नये नियम स्थापित किए। क़ुरआन ज़ोर देता है कि महिलाओं को केवल विरासत पाने का ही अधिकार नहीं है बल्कि नियमानुसार सम्पत्ति का स्वामी बनने का भी अधिकार है।

आधुनिक समाज में महिलाएँ

संसार के विभिन्न भागों से आजकल बहुत सी घटनाओं की खबरें आती हैं जो हमें यह आभास दिलाती हैं कि कम से कम हम महिलाओं के साथ व्यवहार के मामले में अज्ञानकाल के युग जैसे जमाने की ओर लौट रहे हैं अर्थात वह जमाना जो सातवीं सदी में इस्लाम के उदय से पहले था।

कन्या भ्रूण हत्या के रूप में बालिकाओं की हत्या इस आधुनिक युग में भी जारी है। यूनीसेफ की वर्ल्ड चिल्ड्रेन रिर्पोट के अनुसार भारत में लड़कों की संख्या लड़कियों से अधिक हो रही है। भारत में 1000 लड़कों पर 880 लड़कियाँ हैं। इस रिर्पोट में यह भी बताया गया है कि पूरी दुनिया में लिंगानुपात की रिपोर्ट के अनुसार 1000 लड़कों पर 954 लड़कियाँ हैं। लड़कियों की जन्म-दर में गिरावट का कारण कन्या भ्रूण हत्या है।

प्रतिवर्ष लगभग 70 मिलियन बालिकाएँ जन्म से पहले मार डाली जाती हैं। इन आँकड़ों को मानवता का सिर शर्म से झुका देना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति की चेतना को सिर से पैर तक झिंझोड़ देना चाहिए। लेकिन अब भी हमें यह विश्वास करने पर विवश किया जाता है कि हम ऐसे सुसंस्कृत संसार में रहते हैं जो मानवाधिकारों का सम्मान करता है?

इस आधुनिक युग में महिलाओं को मात्र खेल की चीज़ तथा आनन्द और भोग विलास का साधन बना दिया गया है। आधुनिक युग में महिलाएँ अपने आप को वास्तविक या काल्पनिक समानता प्राप्त करने के लिए चाहे-अनचाहे गिराने के लिए उतारू हैं।

आधुनिक संसार महिलाओं को अधिकार प्रदान करने पर अपनी पीठ थपथपा सकता है लेकिन इसमें उसकी सुरक्षा पर कम ही ध्यान दिया है। इसका परिणाम यह है कि महिलाओं की स्वतन्त्रता ने उनके शोषण का दरवाजा खोल दिया है और समाज में एक विचित्र किस्म की अव्यवस्था फैल गयी है। वास्तव में यह स्वतन्त्रता बाजार में महिलाओं की बढ़ती हुई उपलब्धता सुनिश्चित कराने के लिए बहाने के अतिरिक्त कुछ नहीं सिद्ध हुई है। वेश्यावृत्ति केवल दुनिया का सबसे बड़ा बाजार ही नहीं बना है बल्कि यह संभवतः मानवता के लिए सबसे बड़ी दुखदायी चीज़ बन गया है। यह लोगों की जान (एडस, हत्याएँ, आत्महत्याएँ) ले रहा है और इससे परिवार नष्ट हो रहे हैं और सामाजिक सद्भाव प्रभावित हो रहा है।

महिलाओं के साथ व्यक्तिगत सम्पत्ति से भी अधिक बुरा व्यवहार किया जाता है; वेश्यावृत्ति, सेक्स-वर्कर, और अश्लील नृत्य, मॉडलिंग, नंगापन, दहेज-हत्याएँ, दुल्हन को जलाना, आत्म-हत्याएँ, जूआ, लाइव बैण्ड्स और मदिरापान सामान्य हैं तथा वासना और महिलाओं के बीच रोमांचक इच्छाएँ और बिना किसी भेद-भाव के लोगों के साथ या एक साथ कई लोगों के साथ लैंगिक सम्बन्ध आज सामान्य हो गए हैं।

इस तरह महिलाओं को सम्पत्ति के रूप में प्रस्तुत करना आज भी जारी है। जहाँ महिलाओं को वासना की वस्तु बनाने की प्रवृत्ति ने पहले से अधिक सामाजिक स्वीकार्यता प्राप्त कर ली है, जैसे विज्ञापनों में कम से कम कपड़े पहने हुए औरतें (कई मामलों में इन विज्ञापनों में उत्पाद के साथ महिलाओं का कोई सम्बन्ध नहीं होता जैसे हैमबर्गर व्यवसाय, शीतल पेय, कार व्यवसाय इत्यादि) अश्लील क्लीपिंग, स्ट्रिप बार, कुछ रेस्तरा ऐसे हैं जिनमें ऐसी वेटरों की माँग करते हैं जो कम से कम कपड़े पहनें और कपड़े पहनने के बावजूद उनका शरीर दिखाई दे और आज-कल तो कास्मेटिक सर्जरी ब्रेस्ट इन्लार्जमेन्ट विशेष हैं।

कामुकता की पागल दौड़

महिलाएँ, लड़कियाँ और निर्दोष बच्चे भी कामुकता से सुरक्षित नहीं हैं। अनेक ऐसे मामले आते रहते हैं जिनमें महिलाओं और युवतियों के साथ बुरा व्यवहार किया जाता है, अपहरण किया जाता है और बलात्कार किया जाता है। पिछले दिनों कुछ शर्मनाक मामलों में अश्लील कृत्य की वीडियोग्राफी भी की गयी ताकि शिकार महिला को ब्लैकमेल किया जा सके, उसकी छवि धूमिल की जा सके अथवा उसके सम्मान को ठेस पहुँचायी जा सके। कुछ ख़तरनाक अपराधी इतने मुखर और निर्भीक थे कि उन्होंने अपने लैंगिक अपराध की तस्वीरों को सोशल मीडिया पर अपलोड किया, मानो वह क़ानून और व्यवस्था की मशीनरी को चुनौती दे रहे हों कि यदि वे उन्हें पकड़ सकते हैं तो पकड़ लें। यह घटनाएँ हमारी धार्मिकता, सामाजिक चेतना और सभ्य जीवन के सिद्धान्तों का उपहास करती हैं।

इतिहास इस तथ्य पर गवाह है कि महिलाओं के अनियन्त्रित शोषण का परिणाम अनेक सभ्यताओं के विनाश के रूप में सामने आ चुका है। हमारी फिल्में, पत्रिकाएँ और समाचार-पत्र भी कामुकता की उत्तेजना बढ़ाने में अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं। और यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है कि पूरे देश में प्रतिष्ठित अंग्रेजी पत्रिकाएँ और समाचार-पत्र भी अपने साथ अश्लील परिशिष्ट उपलब्ध कराते हैं। इण्टरनेट की सरलता से उपलब्धता ने अबोध और युवा बच्चों के मन को अस्वस्थ सामग्री का शिकार होने की संभावनाएँ बढ़ा दी हैं।

यदि हम इस आधुनिक कामुकता की पागल दौड़ की समस्या का समाधान करना चाहते हैं तो इसके लिए सरकार, समाज विज्ञानियों, मीडिया और धार्मिक नेताओं के प्रयासों की आवश्यकता है। हमारी सभ्यता और हमारा पारिवारिक जीवन ही दाव पर नहीं लगा है बल्कि हमारी सभ्यता का आधार ही आज दाव पर लग गया है। हमारे साहित्य और अखबारों और इलेक्ट्रानिक मीडिया में वैचारिक स्वतन्त्रता के नाम पर किसी भी अस्वस्थ चीज़ के प्रसार की अनुमति नहीं देनी चाहिए। ऐसे लेख जो अप्राकृतिक लैंगिक सम्बन्धों, विवाह-पूर्व यौन सम्बन्धों और विवाहेत्तर यौन सम्बन्धों को बढ़ावा देते हों उन्हें कठोरतापूर्वक कुचल देना चाहिए। ईश-भय, नैतिक मूल्यों का सम्मान और उत्तरदायित्व की भावना को समाज के दिशा-निर्देशक सिद्धान्तों के रूप में विकसित करना चाहिए।

इस्लाम ने महिलाओं को जो अधिकार प्रदान किए हैं उनपर हम एक दृष्टि डालते हैं। 21वीं शताब्दी में मुस्लिम समाजों में व्यवहारिक रूप से महिलाओं की जो सामाजिक और आर्थिक दशा है उसमें और इस्लाम ने उन्हें जो अधिकार प्रदान किए हैं उनके बीच अन्तर को ध्यान में रखना आवश्यक है।

महिलाओं के सम्बन्ध में इस्लामी दृष्टिकोण
(सीधे मौलिक स्रोतों से)

क़ुरआन के अवतरण के प्रारम्भ से ही इस्लाम ने महिलाओं के अधिकार को बहाल किया और पुरुषों के साथ उनके लिए पूर्ण आध्यात्मिक समानता सुनिश्चित किया। इस्लाम में स्त्री और पुरुष को जीवन में भागीदार के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिनमें प्रत्येक भिन्न परन्तु पूरक भूमिकाएँ और उत्तरदायित्व रखता है जो उनकी विशेष योग्यताओं और क्षमताओं के अनुरूप होती हैं। जब पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की शिक्षाएँ अरब की महिलाओं के पास पहुँचीं तो वह जान गयीं कि इन शिक्षाओं में उनके लिए मुक्ति का साधन होगा। वास्तव में जिस पहले व्यक्ति ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया वह महिला (पैग़म्बर सल्ल0 की बीवी हज़रत ख़दीजा) थीं। एक अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण हज़रत उमर की बेटी फ़ातिमा हैं जिन्होंने अपने भाई से पहले इस्लाम धर्म स्वीकार किया और फिर उन्होने उनके इस्लाम धर्म स्वीकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जब वे अल्लाह के बन्दे बन गए तो वह मनुष्य द्वारा बनायी हुई चीज़ों की पूजा करने से मुक्त हो गए।

इस्लाम में महिलाएँ उस समय मौजूद दमन के शिकंजे से मुक्त हुईं। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने अपने मिशन के दौरान महिलाओं की रक्षा की और उनके अधिकारों को मजबूत किया। आपने यह काम अपने जीवन के अन्त तक किया और अपने अलविदाई भाषण में भी किया। (अपने अन्तिम जन-सम्बोधन में पैग़म्बर (सल्ल0) ने इस्लाम के महत्वपूर्ण पहलूओं पर बल दिया)।

"ऐ लोगों यह सत्य है कि तुम्हारे अपनी महिलाओं के ऊपर निश्चित रूप से कुछ अधिकार हैं। लेकिन तुम्हारे ऊपर उनके भी कुछ अधिकार हैं। याद रखो तुमने उन्हें केवल अल्लाह की अमानत के रूप में और उसकी अनुमति से उन्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया है। यदि वह तुम्हारे अधिकारों का ध्यान रखें और उनका पालन करें तो तुम्हारें ऊपर प्रेमपूर्वक उन्हें खिलाने और पहनाने की ज़िम्मेदारी है। अपनी महिलाओं के साथ अच्छा व्यवहार करो और उनके साथ दयालु और सज्जन व्यवहार करो क्योंकि वे तुम्हारी जीवनसाथी और सहयोगी हैं और यह तुम्हारा अधिकार है कि वे उन लोगों को अपना मित्र न बनाएँ जिनको तुम पसन्द नहीं करते और वह अपने सतीत्व को कभी नष्ट न करें।"

मुक्ति

जीवन के सभी क्षेत्रों में दूसरी श्रेणी की नागरिक रह चुकने के बाद महिलाएँ अन्ततः स्वतन्त्र हो गयी हैं। इस्लाम उनके अधिकारों को स्थापित करते हुए और उन्हें पुरुषों के समान और उनका साथी और सहयोगी बनाते हुए आया। इसने प्रत्येक महिला के लिए विशेष और पवित्र अधिकारों को स्थापित किया और उसको उस स्तर तक ऊँचा उठाया जिसका उसे अधिकार था। ये व्यापक और मुक्ति प्रदान करने वाले परिवर्तन किस प्रकार आये?

इस्लाम में महिलाओं की स्वतन्त्रता, स्त्रियों और पुरुषों के संघर्ष का परिणाम नहीं है। यह अल्लाह द्वारा मानवता पर अवतरित किया गया है। जब पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने क़ुरआन के संदेशों को प्राप्त किया तो आपने उन्हें लोगों तक पहुँचाया और लोग उन्हें तुरन्त लागू करने के लिए काम करते थे। इस प्रकार महिलाओं के अधिकार और महिलाओं के साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार के सम्बन्ध में क़ुरआनी संदेशों को हल्के से नहीं लिया जाता था। मुस्लिम पुरुष महिलाओं के बारे में जो दृष्टिकोण और व्यवहार रखते थे उसमें, अल्लाह की ओर से जो संदेश आते, उसके अनुसार ज्यों ही उनके ऊपर क़ुरआन की आयतें पहुँचतीं परिवर्तन कर लेते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि महिलाओं को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ा। न कोई विद्रोह होता था, न रैली निकलती थी और विरोध प्रदर्शन की कोई आवश्यकता नहीं थी। वही पुरुष जो इस्लाम से पहले अरब समाज में पले-बढ़े थे और अपनी बेटियों को जीवित दफन करते थे और महिलाओं के साथ लैंगिक उन्मुक्तता में लिप्त थे। अब वह दयालु, अल्लाह से डरने वाले और अपने पिछले गुनाहों की तौबा करने वाले बन गए। जब पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) आदेश देते तो वे ध्यानपूर्वक सुनते और उन आदेशों का पालन करते जैसा कि आपने फ़रमायाः ''तुममें सबसे बेहतर वह है जो अपनी पत्नी के लिए सबसे अच्छा है।''

और पैग़म्बर (सल्ल0) ने यह भी फ़रमायाः

''जिस किसी को, अल्लाह ने दो बेटियाँ दी और वह उनके साथ दयालु है; तो वे उसके जन्नत में प्रवेश का माध्यम बनेंगी।''

समाज का सुधार कर लेने के बाद, पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने बलात्कार, हत्या और नवजात कन्याओं की हत्या पर कठोर मृत्युदण्ड लागू किया और आपने वेश्यावृत्ति, जूआ, नृत्य और शराब की महफिलों पर पूर्णः प्रतिबन्ध लगा दिया। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) फजूलखर्ची और लैंगिक उन्मुक्तता (अर्थात अनेक लोगों के साथ लैंगिक सम्बन्ध) पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। आपने महिलाओं को हेय दृष्टि से देखने, आर्थिक बोझ बनने और खेल या भोग का साधन बनाने की अनुमति नहीं दी।

इस्लामी क़ानून के अन्तर्गत महिलाओं के अधिकार

1. इस्लाम विवाह को भावनात्मक और लैगिंक सन्तोष, वैध प्रजनन और अन्तर पारिवारिक सम्बन्धों और पारिवारिक एकता का माध्यम मानता है। महिलाओं की स्थिति के सम्बन्ध में इस्लाम ने विवाह को पति के स्वामित्व में देने के बजाए दम्पति के बीच समझौते की प्रकृति के रुप में रखा है। इससे महिलाओं की दशा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।
2. इस्लाम एक मात्र धर्म है जिसने महिलाओं के अधिकारों और कर्त्तव्यों का क़ानून दिया है और महिलाओं के अधिकारों के सम्बन्ध में एक अलग धर्म-शास्त्र प्रदान किया है।
3. जब किसी मुस्लिम महिला का विवाह होता है तो वह अपना पारिवारिक नाम नहीं छोड़ती बल्कि वह अपनी अलग पहिचान क़ायम रखती है।
4. अपने होने वाले पति के चुनाव के सम्बन्ध में उसकी स्वीकृति लेना आवश्यक है।
5. मुस्लिम विवाह में दूल्हे को अपनी होने वाली दुल्हन को स्वयं महर अदा करना होता है। यह महर उसके पिता को नहीं दिया जा सकताः वह अपना महर माँग सकती है, निर्धारित कर सकती है और विवाह के समय उसे प्राप्त कर सकती है। यह महर उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति होता है जिसे वह निवेश कर सकती है या खर्च कर सकती है और इस सम्बन्ध में वह अपने पुरुष सम्बन्धियों के आदेशों का पालन करने के लिए विवश नहीं होती।
6. वह अपने माता-पिता से विरासत या उपहार प्राप्त करती है और वह उसका पूर्णतः स्वामिनी बनती है और इसे वह अपने पति या ससुराली रिश्तेदारों को देने के लिए विवश नहीं होती। इस प्रकार वह अपने पति की सम्पत्ति में भी विरासत प्राप्त करने का अधिकार रखती है और अपने माता-पिता की सम्पत्ति से भी। (देखिए क़ुरआन, 4:7, 32, 176)

7. क़ुरआन पुरुषों पर अपनी सभी महिला सम्बन्धियों की सुरक्षा और उनके खिलाने पहनाने की ज़िम्मेदारी डालता है। इसका अर्थ यह भी है कि पुरुष अपनी पत्नी और परिवार का खर्च उस समय भी उठाएगा जब उसकी पत्नी के पास उसका अपना धन मौजूद हो। अपने परिवार को चलाने के लिए उस पर अपना धन खर्च करने का कर्त्तव्य नहीं डाला गया है। इसके बदले में महिलाओं से यह आशा की गयी है कि वह अपने पति के प्रति वफ़ादार रहेंगी और अपने सतीत्व की रक्षा करेंगी। (देखिए क़ुरआन, 4:34)
8. यदि पति के साथ जीवन व्यतीत करना असंभव हो जाए और पति तलाक़ देने के लिए तैयार न हो तो वह पति से खुलअ अथवा तलाक़ ले सकती है।
9. विधवाएँ और तलाक़शुदा महिलाएँ पुनःविवाह कर सकती हैं। यदि परिस्थिति के अनुसार उनको काम करना पड़े तो वह काम करके, यदि चाहें तो, धन कमा सकती हैं।

प्रचलित धारणा के विपरीत इस्लाम महिलाओं की भूमिका घर की चारदीवारी के अन्दर सीमित नहीं करता। इस्लाम, यदि महिलाएँ कोई व्यवसाय करना चाहें तो उसपर प्रतिबन्ध नहीं लगाता।

11. महिला अपनी इच्छा के अनुसार धन कमा सकती है ओर उसे ख़र्च कर सकती है, वह अपनी कमाई हुई आय को अपने माता-पिता पर ख़र्च कर सकती है या दान में दे सकती है। इसके लिए उसे अपने पति या ससुराली रिश्तेदारों से अनुमति की आवश्यकता नहीं होती।
12. विवाह के बाद यदि पति कोई उपहार, सामान अथवा नक़दी के रूप में अपनी पत्नी को देता है और उसे इसका स्वामी बना देता है तो वहअपनी तलाक़ दी हुई पत्नी से वापस नहीं माँग सकता।
13. इस्लाम शिक्षा प्राप्त करने के मामले में महिलाओं और पुरुषों को समान मानता है और इस बात पर बल देता है कि ज्ञान प्राप्त करना पुरुषों और स्त्रियों, दोनों का कर्त्तव्य है।

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) और क़ुरआन ने एक ऐसी ही सभ्यता का सूत्रपात किया था। अल्लाह ने मनुष्य के लिए जीवन की ऐसी ही योजना निर्धारित की है। और अल्लाह से बेहतर कौन जानता है?

यह सभी अधिकार महिला को समाज की ओर से दान के रूप में नहीं दिए गये हैं जिन्हें किसी की इच्छा के अनुसार कभी भी वापस लिया जा सकता हो। इन सभी अधिकारों की गारण्टी इस्लामी क़ानून ने दी है जो शाश्वत है और धरती पर कोई सत्ता

इसमें कोई संशोधन नहीं कर सकती। इस्लाम महिला की प्रतिष्ठा की रक्षा इसी तरह करता है। इस्लाम ने यह सभी अधिकार उस युग में प्रदान किए जब पश्चिमी संसार में उन्हें सम्पत्ति समझा जाता था और इस बात में गंभीर संदेह प्रकट किया जाता था कि महिला के अन्दर आत्मा भी होती है?

इस्लाम महिला को इतना मूल्यवान मानता है कि उसका अपमान या अनादर नहीं किया जा सकता। कुछ मध्य-पूर्वी देशों या भारतीय उपमहाद्वीप या मुस्लिम परिवारों में महिलाओं के साथ जो दुर्व्यवहार होता है वह उन सांस्कृतिक रीतियों के कारण होता है जिनका कुछ मुसलमान ग़लती से पालन करते हैं और ऐसा इस्लाम के कारण नहीं होता। यदि इस्लाम दमनकारी धर्म है तो दुनिया में अनेक महिलाएँ अपनी इच्छा से इस्लाम धर्म क्यों अपना रही हैं?

इस्लाम में महिलाओं के कर्त्तव्य

इस्लाम एक न्यायपूर्ण और संतुलित जीवन व्यवस्था है। यदि यह महिलाओं के अधिकारों की ओर संकेत करता है तो यह उनके कर्त्तव्यों को भी निर्धारित करता है। एक मुस्लिम महिला से आशा की जाती है कि वह निम्नलिखित कर्त्तव्यों का पालन करेगीः

1. एक अल्लाह पर विश्वास और इस्लाम का पालन उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है। एक मुस्लिम महिला को नमाज़ पढ़नी चाहिए, रमज़ान में रोज़ा रखना चाहिए। अपनी सम्पत्ति पर ज़कात देना चाहिए। और यदि वह समर्थ हो तो उसे हज के लिए जाना चाहिए।

2. उससे आशा की जाती है कि वह सदैव अपने सतीत्व की रक्षा करेगी। वह विवाहेत्तर लैंगिक सम्बन्ध कभी नहीं रखेगी।

3. वह शालीन वस्त्र पहनेगी और हिजाब पहनेगी। और जब बाहर निकलेगी या अपने निकट सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य वयस्क पुरुषों से मिलेगी तो हिजाब पहनेगी। हिजाब का अर्थ एक लम्बा बाहरी परिधान है अथवा सिर पर लगाने वाला स्कार्फ। (देखिए क़ुरआन 33:59, 24:30-31)

4. यह उसका कर्त्तव्य है कि इस्लाम के नियमों के अनुसार अच्छे चरित्र के साथ बच्चों का पालन-पोषण करेगी। वह परिवार की देख-रेख करेगी और उसे घरेलू मामलों पर लगभग पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त होगा। हालाँकि परिवार आपसी परामर्श और सहयोग से चलाया जाता है। वह परिवार की रानी है।

5. वह अपने पति की संगिनी है। एक वफादार पत्नी अपने पति के लिए एक परिधान, शान्ति का स्रोत, प्यार, खुशी और सन्तुष्टि का साधन है। (देखिए क़ुरआन, 30:21, 2:187)

6. यदि उसे अल्लाह के आदेशों के विरुद्ध जाने के लिए कहा जाए तो उसे अपने पति, पिता या भाई की अवज्ञा करने का अधिकार है। (देखिए क़ुरआन, 9:23)

7. इस्लाम पति और पत्नी को एक-दूसरे का पूरक मानता है। कोई दूसरे के ऊपर हावी नहीं है। प्रत्येक को अपने व्यक्तिगत अधिकार और कर्त्तव्य प्राप्त हैं। वे दोनों मिलकर एक शान्तिपूर्ण और प्रसन्न परिवार बनाते हैं जो गंभीर स्थायी और शान्तिपूर्ण समाज के लिए महत्वपूर्ण है।

इस्लाम में मातृत्वः ' एक गृहिणी ' से बढ़कर

आधुनिक युग के सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रमों में से एक यह है कि जो महिलाएँ अपने आप को घर बसाने और बच्चों के पालन-पोषण में समर्पित करने का चुनाव करती हैं, उनके प्रति अपमानजनक और हेय व्यवहार का प्रदर्शन है। अक्सर जब कभी एक औरत किसी सामाजिक समारोह में बाहर जाती है जहाँ अन्य महिलाएँ गर्वपूर्वक अपने कैरियर का बखान करती हैं, वहाँ अधिकतर हीन भावना के साथ कुछ महिलाओं को यह कहना पड़ता है कि मैं मात्र एक गृहणी हूँ। तभी से नयी पीढ़ी की तैयारी और उसके पालन-पोषण के प्रति समर्पण लज्जा और हीन-भावना का कारण बनता है। यही वास्तविकता है जिसने जिसके कारण बहुत से बच्चों की आज अजनबी लोग परवरिश करते हैं जैसे क्रेशे, नेनी और बेबी सिस्टरर्स, जबकि माता-पिता अपने कारपोरेट और बौद्धिक आकांक्षाओं के पीछे दौड़ रहे होते हैं। तो क्या ऐसी स्थिति में परिवार के ढाँचे का पतन और बचपन के गर्भ (हमारे नौजवानों में बड़े पैमाने पर बहुत अधिक लैंगिक उन्मुकतता का संकेत) कोई आश्चर्यजनक चीज़ें नहीं हैं। वास्तव में हमने आज के भौतिकवादी समाज में माँ के नाजुक महत्व को नजरअंदाज कर दिया है।

इसके बावजूद इस्लाम में जो सम्मान और आदर मातृत्व के साथ जुड़ा हुआ है, वह अद्वितीय है। क़ुरआन अपने माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य और उनके साथ प्रेम और दयालुता के व्यवहार को अल्लाह की इबादत के तुरन्त बाद बयान किया गया हैः

> ''तुम्हारे रब ने फ़ैसला कर दिया है कि उसके सिवा किसी की बन्दगी न करो और माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करो। यदि उनमें से कोई एक या दोनों ही तुम्हारे सामने बुढ़ापे को पहुँच जायें तो उन्हें उँह तक न कहो ओर न उन्हें झिड़को, बल्कि उनसे शिष्टतापूर्वक बात करो। और उनके आगे दयालुता से नम्रता की बाहें बिछाये रखो और कहोः ''मेरे रब! जिस प्रकार उन्होंने मुझे बालकाल में पाला है, तू भी उनपर दया कर।'' (क़ुरआन, 17:23-24)

अल्लाह के पैग़म्बर जब अपने साथियों और अनुयायियों से बात करते थे तो माता-पिता के साथ आदर और सम्मान का व्यवहार अधिकतर आपकी जुबान पर होता था। पैग़म्बर (सल्ल0) ने फ़रमाया,

> ''निस्सन्देह जन्नत हमारी माँ के कदमों के नीचे है।''

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने अपने साथियों से कहा कि वह अपने माता-पिता के साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार करें चाहे उनका धर्म कुछ भी हो। आपकी सहाबिया हज़रत

अस्मा कहती हैं कि ''मेरी माँ जो ईमानवाली नहीं हैं, वह मुझसे मिलने के लिए मक्का से मदीना आयीं हैं और वह मुझसे कुछ माँग रही हैं, मैंने पैग़म्बर (सल्ल0) से पूछा, ''मेरी माँ मुझसे मिलने आयी हैं और वह मुझसे कुछ माँग रही हैं तो क्या मैं उनकी माँग को पूरा करुँ?'' पैग़म्बर (सल्ल0) ने फ़रमाया, ''हाँ, अपनी माँ के साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार करो।

जब एक व्यक्ति ने आकर मुहम्मद (सल्ल0) से पूछा तो आप (सल्ल0) ने बहुत सुन्दर ढंग से बताया कि इस्लाम में एक महिला की कैसी विशेष प्रतिष्ठा है। ''ऐ अल्लाह के पैग़म्बर मेरे द्वारा सबसे अधिक अच्छा व्यवहार और साथ रहने का अधिकारी कौन है?''

पैग़म्बर (सल्ल0) ने फ़रमाया, ''तुम्हारी माँ''

उस व्यक्ति ने पूछा, ''उसके बाद कौन?''

पैग़म्बर (सल्ल0) ने दुहराया, ''तुम्हारी माँ''

उस व्यक्ति ने पूछा, ''इसके बाद कौन?''

पैग़म्बर (सल्ल0) ने फिर उत्तर दिया, ''तुम्हारी माँ''

फिर उस व्यक्ति ने चौथी बार पूछा, ''इसके बाद कौन?''

इस पर पैग़म्बर (सल्ल0) ने फ़रमाया, ''इसके बाद तुम्हारा बाप''।

इसके बढ़कर पैग़म्बर (सल्ल0) उस समय अपनी फर्ज़ नमाज़ों को छोटा कर देते जब आप अपने अनुयायियों के साथ नमाज़ पढ़ रहे होते, क्योंकि माँओ द्वारा बच्चों के पालन-पोषण की याद माँओं को नमाज़ में भी आती है। आप यह कहतेः

''जब मैं नमाज़ के लिए खड़ा होता हूँ तो मेरी नीयत होती है कि लम्बी नमाज़ पढ़ू। लेकिन किसी बच्चे के रोने की आवाज़ सुनने के बाद मैं नमाज़ को छोटी कर देता हूँ क्योंकि मैं बच्चे की माँ को कोई कष्ट देना पसन्द नहीं करता।''

हिजाब या बुर्का

आज मुस्लिम महिला की सबसे अधिक आलोचना उसके पहनावे के सिलसिले में की जाती है। आज बहुत से लोगों के मन में महिलाओं की स्वतन्त्रता अथवा महिला मुक्ति उसका कपड़ा कम करने में देखते हैं। यदि कोई महिला कम से कम कपड़ा पहनती है और अपने शरीर का जितना अधिक प्रदर्शित करती है उतना ही अधिक स्वतन्त्र समझी जाती है। हालाँकि प्राचीन समाजों की दलित महिलाओं को अपने शरीर को हर संभव समाज में प्रदर्शित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था और यदि वह ऐसा नहीं करतीं तो उनपर दबाब डाला जाता था। वास्तव में यह उनके लिए स्वतन्त्रता का प्रतिनिधित्व अथवा अधिकारों की प्राप्ति नहीं थी। बल्कि इसे उनके चारों ओर रहने वाले पुरुषों की कामुक इच्छाओं की प्राप्ति समझा जाता था और जो कामुकतापूर्वक महिलाओं के शरीर पर उसी तरह टकटकी लगाते थे जिस तरह से आजकल के पुरुष उनके शरीर को देखते हैं।

इस्लाम में महिलाओं के सम्बन्ध में अधिकतर वार्त्ताएँ बुर्क़ा, हिजाब या पर्दा के बारे में होती हैं जिसे अधीनता, महरूमी का माध्यम और पिछड़ेपन का प्रतीक समझा जाता है। हिजाब से प्रेम करने वाले इसका भावुकतापूर्वक बचाव करते हैं और इन बचाव करने वालों पर हिजाब के आलोचकों द्वारा भावुक और कठोर आक्रमण किए जाते हैं। हिजाब के शब्द का मुस्लिम महिला का धिसी-पिटी शब्दावली में प्रतिनिधित्व करने के लिए सदियों से प्रयोग किया जाता रहा है। आज-कल इसने प्रतीकात्मक तथा राजनैतिक महत्व प्राप्त कर लिया है लेकिन क़ुरआन पर्दे के सम्बन्ध में क्या कहता है?

क़ुरआन में पर्दे के सम्बन्ध में जिस शब्दावली का प्रयोग किया जाता है वह हिजाब है। यह शब्द पवित्र क़ुरआन में आठ बार प्रयोग हुआ है जैसे 19:17, 38:32, 17:45, 42:51, 7:46, 33:53, 83:15। हिजाब का शाब्दिक अर्थ पर्दा, विभाजक, या स्क्रीन है। हिजाब का जिस अर्थ में परम्परागत रूप से प्रयोग किया जाता है और जिसे मुस्लिम समाज में समझा जाता है, वह कपड़े का एक ऐसा टुकड़ा है जो सिर और पूरे शरीर को ढांकता है।

महिलाओं के सतीत्व और सम्मान की रक्षा के लिए और एक पवित्र समाज विकसित करने के लिए यह आदेश दिया गया है कि महिलाएँ ढीला परिधान पहनें। भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिम महिला को सिर से पैर तक ढाँकने वाला कपड़ा बुर्का कहा जाता है। मध्य-पूर्व में इसे निकाब कहा जाता है, ईरान में पूरा शरीर ढंकने वाली काली चादर होती है और अरब देशों में जिस पर्दे को मुस्लिम महिला प्रयोग करती हैं उसे अबाया कहा जाता है और विश्व के अन्य देशों में इसे स्कार्फ कहा जाता है, जिससे मुस्लिम महिलाएँ अपने सिर को ढाँकती हैं।

हिजाब: अल्लाह को खुश करने के लिए महिलाओं की पसन्द

हिजाब, ढीले परिधान और शरीफ़ कपड़े दिखाई देना दुर्लभ नहीं है। आज भी वह महिलाएँ जो अपने शारीरिक आकार को चुस्त कपड़े पहनकर नहीं दिखाना चाहतीं, जिससे उनका शरीर दिखाई दे, उनके साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार किया जाता है। इसके विपरीत वह महिलाएँ जो फिल्म, नृत्य और नग्न होने का साहस करती हैं, उनको विज्ञापनों के माध्यम से वस्तु के रूप में प्रयोग किया जाता है और वह लालच की वस्तु बन जाती हैं। श्रृँगार के साधन, साबुन, शैम्पू, लिंगरी, वैनिटी बैग, परिधान और अत्यन्त व्यक्तिगत चीज़ें जैसे शौचालय में प्रयुक्त नैपकिन और गर्भ निरोधक गोलियों और साधनों का उत्पादन करने वाला करोड़ों डॉलर का उद्योग महिलाओं की नग्नता के प्रदर्शन पर भरोसा करता हैं। जब शारीरिक सौन्दर्य प्रदर्शन की बात आती है तो पश्चिम के लोग कम से कम कपड़े पहनने वाली महिलाओं और शूट पहने हुए पुरुषों का चुनाव करते हैं, यह उनके महिला विरोधी भेद-भाव के सम्बन्ध में बहुत कुछ बयान करता है।

पश्चिमी देशों के भौतिकतावादी समाज द्वारा मुस्लिम महिलाओं के दमन पर विलाप और पर्दा और बुरका पर प्रतिबन्ध लगाने के सम्बन्ध में उठाये गये कदम इस सन्दर्भ में सामान्य बात हैं। यह सामान्य बात है कि सौन्दर्य प्रसाधन बनाने वाले आठ बिलियन डॉलर के उद्योग धन्धे उस समय घाटे में पड़ जायेंगे जब महिलाएँ अपने सौन्दर्य को सामाजिक नज़रों और टेलीविजन के पर्दों से परे अपने पतियों के लिए सुरक्षित कर लें। अतः इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि पश्चिम के लोग महिलाओं के पश्चिमी संस्कृति से फ़रार होकर इस्लाम के दामन में पनाह लेने पर चिन्तित महसूस करते हैं। जहाँ उनका नारीत्व मीडिया की चमक और शिकारी आँखों से सुरक्षा प्रदान करता है।

भौतिकतावादी समाज, जो महिला स्वतन्त्रता की बातें करता है वह और कुछ नहीं

बल्कि यह स्वतन्त्रता उनके शरीर के शोषण का एक बदला हुआ रूप है और उनकी आत्मा का मान घटाना और उन्हें सम्मान से वंचित करना है। पश्चिमी समाज दावा करता है कि उसने महिला का स्थान ऊपर उठाया है, इसके विपरीत इसने वास्तव में इस समाज में महिला को रखैल, गर्ल-फैण्ड और सामाजिक तितली के स्थान पर पहुँचा दिया है जो आनन्द की तलाश करने वालों और देह व्यापार करने वालों के हाथों का यन्त्र मात्र हैं ,जो कला के रंगारंग पर्दे और संस्कृति और फैशन परेड के पीछे छिपे हुए हैं।

एक ऐसा युग जिसमें महिलाओं के पास अपनी पसन्द का चुनाव करने की अधिक से अधिक स्वतन्त्रता है यह विडंबना है कि उन्हें अत्यन्त मौलिक स्वतन्त्रता से वंचित किया गया है। उन्हें अनेक आधुनिक समाजों में अपने पहनावे का चुनाव करने की आज़ादी नहीं है। यदि किसी को बुर्का पहनने के लिए विवश करना अत्याचार है तो क्या बुरका हटाने पर विवश करना वैसा ही अत्याचार नहीं है? समता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व का नारा लगाने वाले इस्लाम के अनुयायियों पर क्यों परिधान का अत्याचारपूर्ण विधान थोपना चाहते हैं?

हिजाब या बुर्क़ा मुस्लिम महिला का व्यक्तिगत चुनाव है और दूसरों को इसका सम्मान करना चाहिए। अन्य धार्मिक, सांस्कृतिक और व्यवसायिक प्रतीकों या परिधानों जैसे ईसाई ननों का परिधान, पास्टर का रोब, डाक्टर का ऐपरन, न्यायाधीश और वकीलों की काली कोट, पगड़ी, टोपी, क्रॉस बने हुए लॉकेट आदि को सहन ही नहीं किया जाता है बल्कि उनका सम्मान भी किया जाता है। बुर्का उस परिधान से अलग नहीं है जो ईसाई नन पहनती हैं, तो इस्लामी हिजाब के मामले में और शालीनता के सिद्धान्तों के मामले में ही दोहरा मानदण्ड क्यों अपनाया जाता है।

सहनशील होने का अर्थ केवल यह नहीं है कि ऐसे ही लोगों को स्वीकार किया जाए जो पूर्ण रूप से उसी जैसे दिखायी दे रहे हों बल्कि अन्य लोगों की पसन्द को स्वीकार करना सहनशीलता है। विशेष रूप से उस समय जब आप उनसे न सहमत हों और न उन्हें समझ रहे हों।

ग्लैमर की दुनिया की बहुत सी महिलाएँ और सामान्य महिलाएँ तथाकथित महिला स्वतन्त्रता के आन्दोलनों और भौतिकवादी सभ्यता के भ्रम से निराश हैं। ये सम्मानित आत्माएँ इस्लाम और हिजाब में शान्ति प्राप्त करती हैं, इसीलिए पश्चिम में हज़ारों महिलाएँ हिजाब को स्वीकार कर रही हैं। यदि टोनी ब्लेयर की पत्नी की बहन लारेन बूथ, मरियम जमीला (पूर्व मार्ग्रेट मारकीज़), ब्रिटिश पत्रकार अथवा मलयालम कवयित्री

कमला सुरैय्या इस्लाम में शान्ति प्राप्त करती हैं तो यह आश्चर्य की बात नहीं। यहाँ तक कि हमारे देश में भी सीएनएन-आईबीएन द्वारा कराए गये सर्वेक्षण से यह तथ्य सामने आया कि महिलाएँ अपनी शालीनता की रक्षा के लिए अपनी इच्छा से बुर्का स्वीकार करती हैं और वह इसमें छेड़छाड़ और धोखा देने वालों से अपने आप को सुरक्षित महसूस करती हैं।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सिर पर स्कार्फ पहनने के परिणामस्वरूप अधिकतर मुस्लिम महिलाओं ने नकारात्मक भावना नहीं उभरती। जब पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने इस्लाम का संदेश पहुँचाया। उसके बाद 1400 वर्षों के दौरान यह तथ्य स्पष्ट है कि आज भी महिलाएँ शालीनता और धार्मिक पहिचान वाले वस्त्र को गर्व के साथ पहनती है। इससे बढ़कर मुस्लिम महिलाओं द्वारा अपने सिर को ढँकने का अमल उनके लिए अपनी पसन्द है जो वह स्वतन्त्र रूप से करती हैं और यह किसी दबाब में नहीं करतीं जैसा कि पश्चिमी देशो में अक्सर चित्रित किया जाता है। एक महिला के शब्दों में, ये महिलाएँ इस तरह वस्त्र पहनने का चुनाव अल्लाह को खुश करने के लिए करती हैं। जबकि अन्य महिलाएँ जो वस्त्र पहनती हैं वह उस समाज को खुश करने के लिए पहनती हैं जिसमें वह रहती हैं।

हिजाब
बुद्धिमानी और सुविज्ञता का शिखर

यमन की महिला कार्यकर्त्ता और 2011 की नोबल पुरस्कार विजेता तवक्कुल कारमेन से अधिक शायद किसी महिला ने उस सम्मान को मूर्त रूप नहीं दिया जो महिलाओं को इस्लाम में प्राप्त हैं। उन्होंने नार्वे की राजधानी ओस्लो के सिटी हॉल में नोबल पुरस्कार समारोह में अबाया और स्कार्फ पहनकर मंच पर आकर अर्न्तराष्ट्रीय समाचार पत्रों और इलेक्ट्रानिक मीडिया को चकित कर दिया। उन्होंने उनसे पूछाः ''क्या वह महसूस नहीं करतीं कि उनका परिधान उनकी शिक्षा और बौद्धिक स्तर को देखते हुए उसके विपरीत है। क्योंकि हिजाब को महिलाओं के दमन और पिछड़ेपन के प्रतीक के रूप में देखा जाता है?'' तवक्कुल कारमेन ने उत्तर दियाः ''प्रारम्भ में मनुष्य लगभग नग्न रहता था, समय के साथ अपने चिन्तन के विकास के साथ उसने कपड़े पहनना प्रारम्भ किया। आज मैं जो कुछ हूँ और जो कुछ मैंने पहना है वह बुद्धि और सुविज्ञता का शिखर है जिस पर मनुष्य युगों की यात्रा के बाद पहुँचा है, यह पिछड़ापन नहीं है। नग्नता पिछड़ेपन का प्रतीक है और इस बात का प्रतीक है कि मनुष्य का चिन्तन आदिकाल की ओर पीछे चला गया है''।

महिलाओं की रजामन्दी; इस्लामी दृष्टिकोण

यह अनिवार्य है कि जो औरत पुरुष के चुनाव की वस्तु है वह विवाहित जीवन में प्रवेश करने के लिए इच्छुक हो। महिलाओं की अनुमति लेने के बाद ही विवाह सम्पन्न हो सकता है। किसी महिला का विवाह जबरदस्ती कर देना ग़ैर-क़ानूनी है। इस्लाम के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है, कि किसी पुरुष को किसी महिला को विवाह करने के लिए विवश करने की अनुमति दी गयी हो।

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) का अपना दृष्टिकोण यह था कि ''किसी अविवाहित लड़की का विवाह उसकी अनुमति लिये बिना नहीं किया जा सकता था''। पैग़म्बर (सल्ल0) के एक साथी और क़ुरआन के व्याख्याकार अब्दुल्लाह बिन अब्बास एक लड़की की कहानी रिवायत करते हैं जो पैग़म्बर (सल्ल0) के पास यह शिकायत करने आयी थी कि उसके पिता ने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह कर दिया है। पैग़म्बर (सल्ल0) ने उसे अनुमति दी कि वह स्वयं चुनाव कर ले कि इस विवाह बन्धन में रहेगी अथवा अपने आप को अलग कर लेगी।

अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने एक अन्य ऐसी घटना की रिवायत की है जो एक महिला की है जिसका नाम बुरैरा था और उसके पति का नाम मुग़ीस था जो एक काले दास थे। ''अब्दुल्लाह बिन अब्बास इस कहानी को इस प्रकार वर्णन करते हैं मानों यह उनके आँखों के समक्ष घटित हुई हो: ''मदीना के रास्तों पर मुगीस बुरैरा के पीछे भाग रहे हैं। वह चिल्ला रहे हैं और उनकी आँखों से आँसू बहकर दाढ़ी पर आ रहे हैं, उनको देखकर पैग़म्बर (सल्ल0) ने मुझसे कहा: 'ऐ अब्बास क्या तुम्हें मुग़ीस के बुरैरा से प्रेम और बुरैरा की मुगीस से घृणा पर आश्चर्य नहीं होता? फिर पैग़म्बर (सल्ल0) ने बुरैरा से कहा, मेरी इच्छा है कि तुम उन्हें पुनः अपना पति बना लो' बुरैरा ने पैग़म्बर (सल्ल0) से पूछा, 'क्या यह अल्लाह का आदेश है' पैग़म्बर (सल्ल0) ने उत्तर दिया, 'नहीं, यह मात्र

एक परामर्श है' तो बुरैरा ने शालीनतापूर्वक मना कर दिया कि 'मुझे इस परामर्श की आवश्यकता नहीं है।'

हज़रत उमर के शासनकाल काल में बहुविवाह का एक रोचक मामला सामने आया। एक विधवा जिनका नाम उम्मे अमान था और वह उत्बा की बेटी थीं, उनको चार लोगों ने विवाह का सन्देश दिया। इनमें से चारों- उमर (रज़ि0), अली (रज़ि0), ज़ुबैर (रज़ि0), और तलहा (रज़ि0)- पहले से ही विवाहित थे। उम्मे अमान ने तलहा (रज़ि0) के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और अन्य तीनों के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। फिर उनका विवाह तलहा (रज़ि0) से कर दिया गया।

यह घटना इस्लामी राज्य की राजधानी मदीना में घटित हुई, जिन प्रस्तावकों को ठुकरा गया था उनमें इस्लामी राज्य के शासक उमर (रज़ि0) भी थे परन्तु किसी ने न तो आश्चर्य प्रकट किया और न नापसन्द किया क्योंकि इस्लाम में महिला अपने फैसले स्वयं करने के लिए पूर्णतः स्वतन्त्र है। यह ऐसा अधिकार है जो उससे कोई छीन नहीं सकता- यहाँ तक कि उस समय का शासक भी नहीं।

यह घटनाएँ दर्शाती हैं कि जो इस्लामी आदेश चार विवाहों तक ही अनुमति देते हैं उनका अर्थ यह नहीं कि उन्हें यह अधिकार है कि चार महिलाओं को पकड़ लें और उन्हें अपने घर में बन्द कर दें। विवाह परस्पर रजामंदी का मामला है। सिर्फ उसी महिला को दूसरी अथवा तीसरी पत्नी बनाया जा सकता है जो दूसरी अथवा तीसरी पत्नी बनना चाहे। और जब यह मामला पूर्णतः महिला की इच्छा पर आधारित है तो इस पर आपत्ति करने का कोई कारण नहीं है।

वर्तमान युग चुनाव की स्वतन्त्रता को अत्यधिक महत्व देता है। इस्लामी क़ानून इस मूल्य का पूर्ण रूप से समर्थन करता है। दूसरी तरफ "नारीवाद" के समर्थक चुनाव की स्वतन्त्रता को चुनाव की सीमितता से बदलना चाहते हैं।

मुस्लिम महिलाओं के सम्बन्ध में आज के कुछ विवादित मामले

प्र0 और उ0

इस्लामी क़ानून में क्यों महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले विरासत आधी मिलती है?

इस्लाम से पहले अरब समाज में केवल बेटे ही अपने बाप से विरासत में हिस्सा पाते थे। लेकिन क़ुरआन ने आदेश दिया कि बेटियों को भी पिता की सम्पत्ति से बेटों के मुक़ाबले विरासत में आधा हिस्सा दिया जाए। उस समय के समाज में यह एक क्रान्तिकारी कदम था, जहाँ औरतें स्वयं सम्पत्ति समझी जाती थीं और उन्हें विरासत में बाप से बेटे को स्थान्तरित किया जाता था। इसके दो उद्देश्य थे। पहला यह कि औरतों को स्वतन्त्र और स्वाधीन व्यक्तित्व के रूप में स्वीकृति दी जाए और दूसरे उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जाए।

क़ुरआन ने आदेश दिया कि महिलाओं को अपने बाप, अपने पति और अपने बेटों के द्वारा छोड़ी हुई सम्पत्ति में हिस्सा दिया जाए, यहाँ तक कि बेऔलाद भाईयों की सम्पत्ति में से भी। तीन आयतें जिनमें निकट सम्बन्धियों के हिस्सों के बारे में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है वह सूर अन-निसा (आयत 11-12 और 176) हैं। इन तीन आयतों में अल्लाह तआला ने बच्चों, माता-पिता और दम्पत्ति के अधिकारों को विशेष हिस्से के अनुसार निर्धारित कर दिया है और इसे मनुष्य के फैसले और इसकी भावनाओं पर नहीं छोड़ा गया है। विरासत की इस्लामी व्यवस्था पूर्ण रूप से रचयिता के पास मानवीय आवश्यकताओं का सर्वोत्तम ज्ञान होने के कारण पूर्णतः सन्तुलित है।

यदि आज के सन्दर्भ में देखा जाए तो महिलाओं को पुरुषों की तुलना में अपने पिता की विरासत से आधा हिस्सा दिया जाना अन्यायपूर्ण प्रतीत हो सकता है परन्तु

जब कोई सातवीं शताब्दी के अरब समाज की स्थिति पर विचार करे तो यह स्पष्ट होगा कि यह पैग़म्बर और इस्लाम की ओर से एक विशेष आरम्भ था और महिलाओं को सम्पत्ति और संसाधनों का स्वामी बनाने का एक क़दम था। उससे पहले वह सम्पत्ति के स्वामित्व, नियन्त्रण, प्रयोग और उपयोग तथा निवेश के बारे में कल्पना भी नहीं कर सकती थीं। हमें इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए कि महिलाओं को अपने भाईयों की तुलना में आधा हिस्सा दिया गया है और उनका हिस्सा आधा नहीं कर दिया गया है। यदि इस सन्दर्भ में देखा जाए तो कोई भी व्यक्ति इस कदम की प्रशंसा करेगा।

अब हम अपना ध्यान महिलाओं की भूमिका की ओर आकर्षित करते हैं और महिलाओं को विरासत में जो हिस्सा मिल रहा है उसके उपयुक्त होने पर विचार करते हैं। यदि हम महिलाओं की समाज में भूमिका पर ध्यान दें तो मालूम होगा कि इस्लाम और क़ुरआन ने उन्हें जो कुछ दिया था वह अन्यायपूर्ण नहीं था। यह उनकी वित्तीय और आर्थिक ज़िम्मेदारियों के तार्किक रूप से अनुरूप है, क्योंकि उनकी ज़िम्मेदारियाँ पुरुष वारिसों की तुलना में बहुत कम हैं। इस्लाम परिवार को चलाने और उसका ख़र्च उठाने की ज़िम्मेदारी पुरुष पर डालता है। यह पुरुषों की ज़िम्मेदारी है कि वह अपनी पत्नियों, बच्चों और माता-पिता की देखभाल करें। यह वही लोग हैं जो उन्हें खाना, कपड़ा और घर देते हैं, उन्हें शिक्षा देते हैं और उनका विवाह भी करते हैं। अतः महिलाओं को वास्तविक जीवन के ख़र्चों से पुरुषों की तुलना में मुक्त रखा गया है। इन परिस्थितियों में यदि वह अपने पुरुष रिश्तेदारों की तुलना में यदि आधा पाती हैं तो इसे उनके उपयुक्त हिस्से से अधिक समझा जाना चाहिए और इसे उपयुक्त रूप से न्याय कहा जाना चाहिए। अतः जब हम महिलाओं की अनेक भूमिकाओं पर दृष्टि डालते हैं, तो वह बेटी के रूप में बाप की देखभाल में होती हैं, पत्नी के रूप में अपने पति की देखभाल में रहती हैं और माँ के रूप में अपने बेटों की देखभाल में होती हैं, अतः उनकी आर्थिक ज़िम्मेदारियाँ शून्य होती हैं। उनको जो कुछ प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है वह उनके लिए काफी है।

अतः लिंग के आधार पर भेदभाव के आरोप में कोई वज़न नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि इस्लाम स्त्रियों और पुरुषों के बीच उनके धार्मिक दायित्वों और अधिकारों के बीच सन्तुलन स्थापित करना चाहता था। पुरुष अपनी सम्पत्ति महिलाओं और अपने बच्चों पर ख़र्च करने के लिए बाध्य होते हैं जबकि महिलाएँ अपनी सम्पत्ति को बचा सकती हैं, निवेश कर सकती हैं। सम्पत्ति में हिस्से के अतिरिक्त पुरुषों से कहा गया है कि वह विवाह के समय अपनी पत्नियों को महर अदा करें।

मान लीजिए कि कोई एक बेटा और एक बेटी छोड़कर मर जाता है। जब बेटा अपनी पत्नी को महर देगा तो उसकी विरासत में पायी हुई सम्पत्ति कम हो जाएगी क्योंकि वह अपने परिवार और बहन पर खर्च करता रहेगा जब तक कि उसका विवाह नहीं हो जाता। अतः उसे काम करके अतिरिक्त आय कमानी होगी। जबकि उसकी बहन का हिस्सा पूरी तरह बचा रहेगा और अगर वह निवेश कर देती है तो वह बढ़ भी जाएगा। जब उसका विवाह होगा तो वह अपने पति से महर प्राप्त करेगी और उसका पति उसका ख़र्च भी चलाएगा और उसके ऊपर कोई आर्थिक ज़िम्मेदारी नहीं होगी। इस प्रकार कोई पुरुष यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि इस्लाम ने पुरुषों की तुलना में महिला का पक्ष लिया है।

यद्यपि सभी पश्चिमी देशों में महिलाओं ने मताधिकार प्राप्त कर लिया है, अनेक मुस्लिम देशों में महिलाओं को अभी तक यह अधिकार क्यों नहीं दिया गया है?

सभी मुस्लिम देश जिन्होंने लोकतन्त्र को अपनाया है। वह महिलाओं और पुरुषों को वोट देने और चुनाव लड़ने का समान अधिकार प्रदान करते हैं। महिलाओं ने न केवल वोट दिया है बल्कि उन्होंने कुछ देशों जैसे तुर्की (कु0 तानसु सिलर 1993 से 1996 तक प्रधानमन्त्री रहीं), बंग्लादेश (सन् 1991 से लगातार सरकार का नेतृत्व दो बेगमात करती हैं), पाकिस्तान (बेनजीर भुट्टों दो बार प्रधानमन्त्री बनीं) और सबसे अधिक मुस्लिम जनसंख्या वाला देश इण्डोनेशिया (जहाँ मेघावती सुकार्नोपुत्री चार वर्ष के लिए राष्ट्राध्यक्ष रहीं) आदि का नेतृत्व किया है। केवल छः खाड़ी के देशों में जहाँ राजा राज करते हैं। वहाँ स्त्री और पुरुष किसी को वोट देने का अधिकार नहीं है। बहरहाल कुवैत में एक चुनी हुई संसद है जहाँ महिलाओं को वोट देने की भी अनुमति है और चुनाव लड़ने की भी। बहरहाल कुवैत की संसद के पास सीमित अधिकार हैं और इसके फैसलों को कुवैत का अमीर रद्द् कर सकता है। सऊदी अरब ने निकायों से लोकतान्त्रिक प्रक्रिया का आरम्भ किया है जहाँ केवल पुरुष ही मताधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। महिलाओं से 2015 के बाद मताधिकार का वादा किया गया है। आशा है कि शाहों द्वारा शासित यह देश जल्द ही अन्य देशों का अनुकरण करते हुए महिलाओं को वोट देने और चुनाव लड़ने का अधिकार देंगे। बहरहाल लोगों को मताधिकार देने से पहले लोकतन्त्र आना चाहिए। यह याद रखना लाभदायक होगा कि अधिकतर पश्चिमी लोकतन्त्रों में महिलाओं को मताधिकार पिछली सदी के प्रारम्भ में ही मिल सका था।

लेकिन राजशाही केवल मुस्लिम देशों तक ही सीमित नहीं है। चीन दुनिया की एक शक्ति होने के बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी की तानाशाही के अन्तर्गत है और वहाँ किसी को वोट देने का अधिकार नहीं है।

जहाँ तक इस्लाम का सम्बन्ध है, वह राजनीतिक परामर्श के मामले में पुरुषों और महिलाओं में अन्तर नहीं करता। पैग़म्बर (सल्ल0) की मृत्यु के बाद ख़िलाफत काल में ख़लीफा की नियुक्ति परामर्श (सूरा) की प्रक्रिया के बाद होती थी जिसमें महिलाओं और पुरुषों दोनों से परामर्श लिया जाता था। एक बार जब ख़लीफा की नियुक्ति हो जाती तो महिलाएँ और पुरुष दोनों उनसे बैअत करने के लिए आते थे।

जब हम इस्लामी इतिहास के आरम्भिक काल में जाते हैं तो हम देखते हैं कि तीसरे ख़लीफा की चुनाव प्रक्रिया में प्रसिद्ध सहाबी अब्दुल रहमान इब्ने औफ ने मदीना के प्रत्येक व्यक्ति से मत लेने की जिम्मेदारी ली थी कि वह मालूम करें कि इस्लामी राज्य की जिम्मेदारी के मामले में लोगों का दृष्टिकोण क्या है? वास्तव में इस प्रक्रिया में उन्हें मदीना के प्रत्येक महिला और पुरुष से और उनसे दृष्टिकोण मालूम करना था। अपने प्रयासों के बाद उन्होंने घोषणा कीः

"मैंने मदीना के प्रत्येक व्यक्ति- पुरुष, महिला और युवक- से दृष्टिकोण मालूम किया और यह पाया कि उनमें से सभी अली से पहले उस्मान को ख़लीफा बनाना पसन्द करते हैं।" (अवासिम मिनल-कवासिम)

इससे हमें संकेत मिलता है कि उन महिलाओं से भी परामर्श लिया गया जो अपने घरों में छिपी हुई थीं। इस प्रकार महिलाओं को मताधिकार से वंचित करना किसी भी इस्लामी साक्ष्य पर आधारित नहीं है। और वास्तव में यह पैग़म्बर के सहाबियों ने निश्चित रीति के विरुद्ध है जो सर्वसम्मति के लिए उपयुक्त है।

इस्लाम की पहली दो सदियों के बाद महिलाओं का स्थान कम हो गया और इसके कारण उनकी भूमिका दूसरे दर्जे की हो गयी।

महिलाओं की शिक्षा और वाहन चलाने का अधिकार

जहाँ तक महिलाओं के कार चलाने का प्रश्न है तो इस मामले में केवल सऊदी अरब ही कठोर नियम रखता है। इसे हम सऊदी अरब का क़ानून कह सकते हैं। सऊदी अरब एक रुढिवादी राजतन्त्र है इसके शासक डरते हैं कि महिलाओं को कार चलाने की अनुमति देने से महिलाओं और पुरुषों दोनों का मेल-जोल बढ़ेगा और पश्चिमी सभ्यता की बाढ़ का प्रभाव इस इस्लामी देश को अपनी लपेट में ले लेगा।

बहुविवाह और एकल विवाह

बहुविवाह का अर्थ स्पष्ट रूप से एक से अधिक पत्नियाँ होना है और अधिक स्पष्ट शब्दों में यदि कोई पुरुष एक ही समय में एक से अधिक पत्नियाँ रखता है तो इसे बहुविवाह कहा जाता है। एकल विवाह एक समय में मात्र एक विवाहित जीवन साथी रखने की रीति का नाम है।

पश्चिमी हथियार

इस्लाम के शत्रु और अज्ञानी लोगों ने कई विवाहों को लेकर पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की आलोचना की जबकि उन्होंने गम्भीरतापूर्वक उनकी प्रकृति, उनके रहन-सहन और इन विवाहों के उद्देश्य पर गम्भीर अध्ययन नहीं किया। सभी आलोचनाएँ बिना किसी ऐतिहासिक प्रमाण के की गयीं। उनके लिए कोई तर्कपूर्ण दलील भी नहीं है जिस पर विचार किया जा सके। यह आलोचना घोर अज्ञानता, धार्मिक पूर्वाग्रह अथवा इस्लाम के पैग़म्बर से घृणा और उनके विचित्र जीवन दर्शन के कारण है जिससे आलोचक इसे मान्यता दिये बिना लाभान्वित हो रहे हैं, ऐसा विवाद कभी-कभी इसलिए उठाया जाता है कि पैग़म्बर (सल्ल0) द्वारा मानव सभ्यता और संस्कृति पर किये गये सच्चे योगदान की अनदेखी की जा सके।

सबसे पहले हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि नैतिकता लागू करने के लिए एकल विवाह एक पश्चिमी हथियार है और यह पिछले ही दिनों का परिदृश्य है; मध्य काल में संसार के अधिकतर भागों में बहुविवाह प्रचलित था। पुरुष सैकड़ों पत्नियाँ रखते थे क्योंकि यह सामाजिक प्रतिष्ठा का पैमाना था। पैग़म्बर ईसा (अलै0) जिन्होंने विवाह नहीं किया था के अतिरिक्त अधिकतर पैग़म्बरों ने कई विवाह किये थे, यहाँ तक कि सन्त लोग भी रखैल रखते थे। अरब में महिलाओं को व्यक्तिगत सम्पत्ति से भी कमतर समझा जाता था। पिता अपनी नवजात बेटियों को जीवित दफन कर देते थे। विवाह सामाजिक सुगमता के लिए किये जाते थे और तलाक सामान्य रूप से होते थे और इनको बुरा नहीं समझा जाता था; आज के पश्चिमी जगत में व्यभिचार, सामान्य हो गया है (आकस्मिक लैगिंक सम्बन्ध रखने में विभिन्न साथियों में अन्तर नहीं किया जाता)।

आज भी बहुविवाह मुसलमानों में, ग़ैर मुस्लिमों में, पश्चिम में और पूर्व में वैध और कुछ अवैध और कुछ कपटाचार के साथ अपनाया जाता है। कुछ लोग गुप्त रूप से करते हैं और कुछ सार्वजनिक रूप से। इस पर अधिक शोध करने की आवश्यकता नहीं कि यह मालूम किया जाए कि कहाँ और कैसे अधिक संख्या में विवाहित लोग निजी रखैलें रखते हैं और अपनी प्रेमिकाओं के चक्कर लगाते हैं अथवा सामान्य रूप से अन्य महिलाओं के चक्कर लगाते हैं। नैतिकतावादी चाहे इसे पसन्द करें अथवा न करें। मामला यह है कि अवैध बहुविवाह प्रचलित है और इसे हर जगह देखा जा सकता है।

यहूदी धर्म में बहुविवाह

बाइबिल और तलमूद के युग दर्शाते हैं कि प्राचीन इस्राईली बहुविवाह करते थे और कुछ के पास सैकड़ों पत्नियाँ होती थीं। तलमूद का क़ानून और मूसा का क़ानून इसे प्रोत्साहित करता था और उनके अधिकतर पैग़म्बर एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे। विकीपीडिया के अनुसार पैग़म्बर इब्राहीम (अलै0) के दो पत्नियाँ (सारा और हाजरा) थीं, पैग़म्बर सुलेमान (अलै0) के सात सौ पत्नियाँ थीं और तीन सौ दासियाँ थीं। पैग़म्बर याक़ूब (अलै0) के चार पत्नियाँ थीं। पैग़म्बर दाऊद (अलै0) के आठ और पैग़म्बर मूसा (अलै0) के चार पत्नियाँ (सफिया, गिबशिया, बिन्त किनि, बिन्त हुबाब) थीं। इन्साइक्लोपीड़िया बिबलिका के अनुसार, ''एक सामान्य यहूदी चार पत्नियाँ रख सकता है और एक राजा अठारह पत्नियाँ रख सकता है''।

बहुविवाह की प्रथा रब्बी जरसौन बिन यहूदा (960 ई0 से 1030 ई0) तक थी जिसने बहु-विवाह के विरुद्ध एक आदेश जारी किया। चरवाहे यहूदी सम्प्रदाय इस रीति पर 1950 तक कायम रहे जब इस्राईल के चीफ रब्बीनेट के एक क़ानून ने एक से अधिक विवाह करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

तथापि यह ठीक नहीं कि यहूदी धर्म और ईसाई धर्म सदैव एकल विवाह के समर्थक रहे हैं अथवा बहुविवाह के पूर्णतः विरोधी रहे हैं और न तो आज हैं। कुछ प्रसिद्ध यहूदी विद्वानों, जैसे एस.डी.ग्वायटीन की किताब 'ज्यूज एण्ड अरब्स'' (यहूदी और अरब), एल.टी. हॉबहाऊस की किताब ''मोरल्स इन इवोलूशन'' (उत्पत्ति में नैतिकता), और इ. ए. वेस्टमार्क की किताब ''ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मैरिज'' (विवाह का एक संक्षिप्त इतिहास), द्वारा हमें मालूम होता है कि बहुविवाह करने वाले यहूदी प्रवासी इस्राईली

हाउसिंग प्राधिकरणों के लिए कठिनाईयों और लज्जा का कारण बन रहे हैं। मार्मन ईसाईयों की स्थिति सर्वविदित हैं। इसी तरह अफ्रीकी और एशियाई पादरियों का दृष्टिकोण है जो बहुविवाह को बेवफाई, व्यभिचार और अवैध सम्बन्धों पर वरीयता देते हैं।

औपचारिक रूप से दृढ़तापूर्वक एकल विवाह और देह व्यापार, समलैंगिकता, अवैध सम्बन्ध, वेवफाई और सामान्य लैंगिक उन्मुकक्ता के बीच जब हम अध्ययन करते हैं तो इन दोनों के बीच परस्पर सहसम्बन्ध पाते हैं। ग्रीक-रोमन और यहूदी ईसाई संस्कृतियों का ऐतिहासिक विवरण इस सम्बन्ध में इससे भी अधिक अर्थपूर्ण है जैसा कि परिवार के किसी भी स्तरीय सामाजिक-इतिहास से पता चलेगा।

ईसाई धर्म में बहुविवाह

बाइबिल के अवतरण के दौरान बहुविवाह को साधारण रूप से स्वीकार किया जाता था और यह प्रचलित भी था। ऐसा कुछ ज्ञात नहीं है कि ईसा मसीह ने बहुविवाह के विरुद्ध कुछ कहा हो। इसे धार्मिक सामाजिक और नैतिक रूप से स्वीकार किया जाता था और इसपर कोई आपत्ति नहीं की जाती थी। संभवतः यही कारण है कि स्वयं बाइबिल ने भी इस विषय पर कोई वार्त्ता नहीं की है। बाइबिल न तो इसे मना करती है न नियमित करती है और न इसकी सीमाएँ निर्धारित करती है। कुछ लोगों ने "टेन वर्जिन" (दस कुँवारियाँ) की कहानी की व्याख्या इस प्रकार की है मानो उस समय दस पत्नियाँ रखना वैध था। पैग़म्बरों, राजाओं और नवाबों के सम्बन्ध में बाइबिल की कहानियाँ अविश्वसनीय हैं।

ईसाई राजाओं के एक से अधिक महिलाओं से विवाह के अनेक उदाहरण मिलते है। फ्रेड्रिक विलहेम द्वितीय और फिलिप और सेन्ट लूथर ने स्वयं चर्च के अनुमोदन से एक से अधिक विवाह किये। कम जनसंख्या की समस्या का समाधान करने के लिए न्यूरेमबर्ग में 1650 में आयोजित सम्मेलन में लोगों को एक से अधिक विवाह करने की अनुमति देने पर सहमति व्यक्त की गयी।

अभी 17वीं शताब्दी तक ईसाई चर्च बहुविवाह के प्रचलन को मान्यता देता रहा है। मारमनो (बाद के सन्तों के चर्च ऑफ जेसस क्राइस्ट) ने बहुविवाह के प्रचलन की अनुमति दी थी।

इससे प्रर्दशित होता है कि बहुविवाह की रीति एक वैध रीति के रूप में सभी देशों और युगों में प्रचलित रही है। यहाँ तक कि यहूदियों के पैग़म्बरों ने एक से अधिक विवाह किये और पैग़म्बर ईसा (अलै0) ने भी इससे मना नहीं किया।

एक विवाह का प्रचलन पाल के ज़माने में हुआ जब ईसाई धर्म में कई संसोधन हो चुके थे। एकल विवाह को चर्च ने इसलिए अपनाया कि ईसाई धर्म को ग्रीक और रोमन सभ्यताओं के अनुसार बनाना था। और उनकी सभ्यता की पुष्टि करनी थी जहाँ के पुरुष एक ही विवाह करते थे परन्तु उनके पास उपयोग के लिए अनेक दासियाँ होती थीं दूसरे शब्दों में उनके यहाँ बहुविवाह की कोई सीमा नहीं थी।

प्रारम्भिक ईसाईयों ने इस विचारधारा की खोज की थी कि महिलाएँ पाप से भरी हुई होती हैं और पुरुष के लिए यह श्रेष्यकर है कि वह कभी विवाह न करे। चूँकि ऐसा करने से मानवता समाप्त हो जायेगी अतः इन्हीं लोगों ने अपनी विचारधारा से समझौता कर लिया और कहा कि "विवाह करो परन्तु केवल एक"।

हिन्दू धर्म में बहुविवाह

प्राचीन काल से बहुविवाह मानव समाज की एक स्वीकृत संस्था रहा है और इतिहास में ज्ञात प्रत्येक संस्कृति का यह अंग रहा है। प्राचीन भारत में सामान्य परम्परा के अनुसार अनेक पत्नियाँ रखने की अनुमति ही नहीं थी अपितु इस रीति को साधारण रूप से अपनाया जाता था। वीकिपीडिया के अनुसार अनेक हिन्दूः धार्मिक व्यक्ति, ऋगवेद और अन्य हिन्दूः धार्मिक पुस्तकों में अनेक पत्नियों का उल्लेख मिलता है। राम के पिता राजा दशरथ के तीन से अधिक पत्नियाँ थीं जिनके नाम कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी थे। कृष्ण के पास 16,100 पत्नियाँ थीं उनमें से प्रसिद्ध पत्नियाँ राधा, रुकमिणी, सत्यभामा, जम्बावती, सत्या, लक्ष्मणा, कालिन्दी, भद्रा और मित्रविन्दा थीं।

हिन्दूः धर्म ग्रन्थों में चाहे वह वेद, रामायण, महाभारत, गीता कोई भी हों इनमें पत्नियों की संख्या पर किसी सीमा का उल्लेख नहीं है। इन धर्म ग्रन्थों के अनुसार कोई व्यक्ति चाहे जितनी भी महिलाओं से विवाह कर सकता है। अभी सन् 1955 में हिन्दूः विवाह अधिनियम पारित हुआ जिसने हिन्दुओं के लिए एक से अधिक विवाह करना अवैध घोषित कर दिया। वर्तमान समय में वह भारतीय संविधान है जो हिन्दू पुरुष के लिए एक से अधिक विवाह करने पर प्रतिबन्ध लगाता है जबकि हिन्दू धर्म ग्रन्थ उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाते।

पश्चिमी समाज में बहुविवाह

पश्चिमी समाज में अधिकतर जब दाम्पत्य सम्बन्ध तनावपूर्ण हो जाते हैं तो पति साधारणतः अपनी पत्नी को छोड़ देता है। इसके बाद वह बिना विवाह किये अन्य महिलाओं के साथ रहता है। पश्चिमी समाज में तीन प्रकार के बहुविवाहों का प्रचलन है। (1) क्रमिक बहुविवाह अर्थात विवाह तलाक, विवाह तलाक और यह तारतम्य चलता रहता है। (2) एक पुरुष एक महिला से विवाह करता है परन्तु एक या एक से अधिक रखैलें रखता है। (3) एक अविवाहित पुरुष अनेक महिलाओं से सम्बन्ध रखता है।

पश्चिमी समाज बहुविवाह को स्वीकार नहीं करता परन्तु व्यवहारिक रूप से यह समाज बहुविवाह करने वाला समाज है। डा0 एनी बेसेन्ट के शब्दों में "पश्चिम में एकल विवाह मात्र बहाना है बल्कि यहाँ वास्तव में ऐसा बहुविवाह होता है जिसमें कोई उत्तरदायित्व नहीं। रखैलों को उस वक्त छोड़ दिया जाता है जब पुरुष का उनसे मन भर जाता है तो उसे धीरे-धीरे गली की महिला के रूप में पतित छोड़ देता हैं क्योंकि उसका पहला प्रेमी उसके भविष्य के सम्बन्ध में उत्तरदायी नहीं होता और वह बहुविवाह वाले घर में एक शरण प्राप्त पत्नी और माँ से 100 गुना दयनीय हो जाती है। जब हम पश्चिमी शहरों में रात के समय दयनीय महिलाओं की भीड़ देखते हैं तो हमें अवश्य यह एहसास होता है कि पश्चिम वालों के मुँह से यह शोभा नहीं देता कि वह बहुविवाह के लिए इस्लाम की आलोचना करें। महिलाओं के लिए पतित होकर गलियों में फेंक दिये जाने की तुलना में यह श्रेयष्कर और अधिक सम्मानपूर्ण है कि वह बहुविवाहित जीवन व्यतीत करें और वह मात्र एक पुरुष से जुड़ी रहें और उनकी गोद में वैध बच्चा हो और वह समाज में सम्मानित रहे- संभवतः नियम क़ानून से बाहर एक अवैध बच्चे के साथ निराश्रित और बिना संरक्षक के, एक रात के बाद दूसरी रात किसी पथिक का शिकार होने और माँ बनने के अयोग्य हो जाने और सबके लिए घृणित होने से सौतन बनना श्रेयष्कर है।

वर्तमान पश्चिमी समाज सहमति के साथ दो प्रौढ़ व्यक्तियों को लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति देकर ग़ैर ज़िम्मेदाराना लैगिंक सम्बन्धों, बिना बाप के बच्चों की बहुतायत और अनेक अल्पायु और अविवाहित माँओं को बढ़ावा दिया है जो पश्चिमी देशों की कल्याणकारी व्यवस्था के लिए बोझ बन रहे हैं।

कुछ पश्चिमी पुरुष यह दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं कि एक विवाह से महिलाओं के अधिकारों की रक्षा होती है। परन्तु क्या ये पुरुष वास्तव में महिलाओं के अधिकारों

के सम्बन्ध में चिन्तित हैं? समाज में अनेक ऐसी रीतियाँ हैं जो महिलाओं का शोषण और दमन करती हैं जिसके कारण बीसवीं सदी के प्रारम्भ में महिला मताधिकार आन्दोलन से लेकर आज तक की महिला मुक्ति आन्दोलन की संस्थाएँ बनी हैं।

पश्चिमी समाज की सच्चाई यह है कि एकल विवाह पुरुषों की रक्षा करता है और उन्हें बिना किसी उत्तरदायित्व के हर जगह खेलने की अनुमति देता है। सरल गर्भ निरोधक और वैध गर्भपात ने महिलाओं के लिए अवैध लैगिंक सम्बन्धों के द्वार खोल दिये हैं और उसे तथाकथित लैंगिक क्रान्ति के लिए बहला-फुसला लिया गया है। परन्तु वही है जो गर्भपात का मानसिक आघात झेलती है और गर्भनिरोधक उपायों के बुरे प्रभावों का शिकार होती है। पुरुष यौन बीमारियों की महामारी हरपीज़ और एड्स की अनदेखी करते हुए निश्चिन्त होकर निरन्तर आनन्द ले रहा है। पुरुष ऐसे लोग हैं जिनकी रक्षा एकल विवाह व्यवस्था करती है जबकि महिलाएँ निरन्तर पुरुषों की कामुकता का शिकार हो रही हैं। पुरुष प्रधान समाज बहुविवाह का अत्यधिक विरोध करते हैं क्योंकि इसके कारण पुरुष उत्तरदायित्व और वफ़ादारी के लिए विवश हो जायेंगे। अपनी बहुविवाह की प्रवृत्तियों के कारण उसको उत्तरदायित्व का सामना करना पड़ेगा और पत्नी और बच्चों को भरण-पोषण देना और उनकी रक्षा करनी पड़ेगी।

इस्लाम धर्म में बहुविवाह

अब इस्लाम के मामले की ओर लौटते हैं, हम पश्चिमी और पूर्वी देशों में बहुत से ऐसे लोगों को पाते हैं जो समझते हैं कि मुसलमान एक ऐसा व्यक्ति होता है जो भौतिक उत्तेजनाओं में ग्रस्त होता है और स्वयं वह अनेक महिलाओं से विवाह करता है चाहे उनकी संख्या सीमित हो अथवा असीमित हो। वह लोग सोचते हैं कि मुसलमान एक पत्नी से दूसरी पत्नी बदलने के लिए पूर्णतः स्वतन्त्र हैं और यह उतना ही सरल है जितना एक घर से बदलकर दूसरे घर में जाना है अथवा एक परिधान को बदलकर दूसरा परिधान धारण करना। मुसलमानों के बारे में यह विचारधारा भावुक फिल्मों, टी0वी सीरियलों, सस्ती पेपरबैक कहानियों मीडिया में मुसलमानों का गलत चित्रण और किसी सीमा तक मुस्लिम व्यक्तियों के ग़ैर ज़िम्मेदाराना व्यवहार के कारण और अधिक बढ़ गयी है।

इस्लाम के लिए दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि क़ुरआन ने जो कुछ आदेश दिया और पैग़म्बर (सल्ल0) ने उसके अनुसार जो व्यवहार किया अधिकतर मुस्लिम शासकों ने उसकी

अवहेलना की और किसी दण्ड से बचकर उन्होंने अपनी चेतना को तसल्ली देने के लिए मुहम्मद (सल्ल0) के नाम से हदीसें गढ़ीं जिनकी वजह से पैग़म्बर (सल्ल0) की छवि धूमिल हुई और दोषारोपण के लिए उन्होंने रंगारंग सामग्री उपलब्ध करायी।

इस परिस्थिति का अपरिहार्य परिणाम यह हुआ कि ऐसे अस्थायी अवरोध पैदा कर दिये गये है कि लाखों लोग इस्लाम की ज्योति और इसके सामाजिक दर्शन को देखने से वंचित हो रहे हैं। और ऐसे ही लोगों के लिए इस प्रश्न पर निम्न में स्पष्ट वार्त्ता करने का प्रयास किया गया है जिसको पढ़ने के बाद कोई भी व्यक्ति अपना निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतन्त्र है।

जब पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने इस्लाम धर्म को लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया तो बहुविवाह सामान्य रूप से प्रचलित था और वहाँ के सामाजिक जीवन में इसकी जड़ें गहरी थीं। क़ुरआन ने इस रीति की अनदेखी नहीं की अथवा इसे बन्द नहीं किया और इसे असीमित रूप से जारी रहने की अनुमति भी नहीं दी। क़ुरआन बहुविवाह से सम्बन्धित अनियमितताओं और ग़ैर ज़िम्मेदारियों से तटस्थ नहीं रह सकता था। जिस प्रकार क़ुरआन ने उस समय व्याप्त अन्य सामाजिक परम्पराओं और रीतियों के साथ किया था उसी तरह उसने बहुविवाह की संस्था को भी संगठित किया। इसे इस प्रकार परिष्कृत किया कि इसकी पारम्परिक बुराईयों का उन्मूलन हो सके और इसके लाभों को सुनिश्चित किया जा सके। क़ुरआन ने इसमें हस्तक्षेप इसलिए किया कि क़ुरआन को इसे व्यवहारिक बनाना था और क़ुरआन पारिवारिक ढाँचे में अव्यवस्था की अनुमति नहीं दे सकता था जो किसी भी समाज की नींव होती है।

क़ुरआन एक मात्र धर्म-ग्रन्थ है जो कहता है कि *'मात्र एक विवाह करो'।*

इस अनुच्छेद 'मात्र एक विवाह करो' का सन्दर्भ क़ुरआन के चौथे अध्याय की सूर अन्-निसा हैः

> ''जो महिलाएँ तुम्हें अच्छी प्रतीत हों उनसे दो अथवा तीन अथवा चार से विवाह कर लो और यदि तुम्हें भय हो कि तुम उनके बीच न्याय न कर सकोगे तो मात्र एक से विवाह करो''।

क़ुरआन के अवतरण से पहले बहुविवाह की कोई सीमा नहीं थी और पुरुष बहुत सारी पत्नियाँ रख सकता था और कुछ लोग सौ तक पत्नियाँ रखते थे। क़ुरआन किसी भी स्थिति में चार पत्नियों की सीमा निर्धारित करता है और वह भी अनेक शर्तों के साथ। एक पुरुष को अपनी सभी पत्नियों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए यहाँ तक कि प्यार में भी, और इसके साथ यह स्पष्ट निर्देश भी है और घोषणा भी, कि ऐसा करना संभव नहीं है।

"और तुम कदापि औरतों को समान नहीं रख सकते यद्यपि तुम ऐसा करना चाहो। अतः पूर्णतः एक की ओर न झुक पड़ो कि दूसरी को लटकी हुई की तरह छोड़ दो"। (क़ुरआन, 4:129)

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) से रिवायत है कि आपने कहा कि यदि एक पुरुष के पास दो पत्नियाँ हों और वह अनुपयुक्त रूप से एक की क़ीमत पर दूसरी की तरफ़ झुक जाए तो क़यामत के दिन उसका आधा शरीर अपंग होकर एक तरफ़ लटक जायेगा। इस प्रकार इस्लाम एकल विवाह को एक नियम और बहुविवाह को एक अपवाद के रूप में कुछ असाधारण परिस्थितियों में अनुमति देता है। इस्लामी धर्मशास्त्री इमाम अबू हनीफा (रह0) उल्लेख करते हैं कि पैग़म्बर (सल्ल0) ने कहा, "एक व्यक्ति जिसके पास एक पत्नी हो वह सुखी और सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करता है जबकि एक व्यक्ति दो पत्नियाँ रखने के बाद परेशानियों और मुसीबतों का शिकार हो जाता है। साधारण रूप से समस्त संसार के मुसलमानों में नियम के रूप में एकल विवाह प्रचलित है। इस प्रकार इस्लाम धर्म में बहुविवाह कोई नियम नहीं बल्कि एक अपवाद है। यह एक सशर्त अनुमति है यह आस्था अथवा आवश्यकता का मामला नहीं है। कुछ लोग इस ग़लतफ़हमी में हैं कि मुस्लिम पुरुष के लिए एक से अधिक विवाह करना अनिवार्य है।

क़ुरआन की उपरोक्त आयत उहद के युद्ध के अवसर पर अवतरित हुई जब अनेक मुसलमान मारे गये थे और इसके कारण अनेक विधवाओं और अनाथों का पालन-पोषण करना बचे हुए मुसलमानों के लिए अनिवार्य था। उन विधवाओं और अनाथ बच्चों की रक्षा का एक साधन विवाह भी था।

इस पृष्ठभूमि के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम ने बहुविवाह की खोज नहीं की है और इसके लिए ऐसे नियम बनाकर इसे एक नियम के रूप में प्रोत्साहित नहीं किया है। इस्लाम ने इसका उन्मूलन इसलिए नहीं किया क्योंकि यदि यह समाप्त हो जाता तो यह मात्र सिद्धान्त के रूप में समाप्त होता और लोग इस रीति को अपनाते रहते जैसा कि दूसरे लोग अपनाते हैं, जिनके संविधान और सामाजिक मानक बहुविवाह का अनुमोदन नहीं करते। इस्लाम जीवित रहने के लिए आया है। व्यवहार में रहने के लिए आया है। यह निलम्बित रहने के लिए नहीं आया है और न मात्र एक सिद्धान्त रहने के लिए आया है। यह व्यवहारिक है और जीवन के प्रति इसका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यवहारिक है। यही कारण है कि इस्लाम बहुविवाह की सशर्त अनुमति देता है। क्योंकि यदि बहुविवाह के बिना जीवन व्यतीत करना सम्पूर्ण मानवता के हित में होता तो अल्लाह ने अवश्य इस संस्था को समाप्त करने का आदेश दिया होता। परन्तु अल्लाह से बेहतर कौन जानता है।

पवित्र पैग़म्बर और उनका पारिवारिक जीवन

पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) के पारिवारिक जीवन को अधिकतर इस्लाम के आलोचकों और विरोधियों द्वारा जाँच-पड़ताल की जाती है। इस मामले में तुलना की जाती है कि ईसा मसीह अविवाहित रहे और पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) ने बारह महिलाओं से विवाह किये। धार्मिक चिन्तन इस विश्वास अथवा अविश्वास पर आगे बढ़ा कि विवाह से परे जीवन व्यतीत करना पैग़म्बरी का आदर्श होना चाहिए जबकि विवाह करना और पारिवारिक जीवन व्यतीत करना ऐसे सामान्य व्यक्तियों की पहिचान बतायी जाती है जो इच्छाओं और भावनाओं के पीछे चलते हैं।

इस्लाम जीवन के आध्यात्मिक और सांसारिक पक्षों को मिलाकर एक कर देता है। यह दोनों के बीच भेद नहीं करता और मनुष्य का मार्गदर्शन दोनों क्षेत्रों में करता है और आदेश देता है कि वह एक-दूसरे को अलग न करें। यह मनुष्य की आध्यात्मिक और शारीरिक दोनों अभिलाषाओं को मान्यता देता है और ऐसे मानक निर्धारित करता है जिनके अन्दर रहते हुए अभिलाषाएँ पूरी की जा सकें और इन सीमाओं का उल्लघंन न किया जाए। इस्लाम इस तथ्य को भी स्वीकार करता है कि यदि वैध साधनों द्वारा नैतिक सीमाओं में रहते हुए शारीरिक इच्छाओं को सन्तुष्ट होने का अवसर नहीं दिया गया तो मानव जीवन में बिगाड़ घुस आएगा और नैतिक रूप से अन्दर से इसे खोखला बना देगा। इसी तरह इस्लाम एक ऐसा समाज विकसित करना चाहता है, जहाँ लोग अपनी शारीरिक अभिलाषाओं को सन्तुष्ट करते हुए पारदर्शी जीवन व्यतीत कर सकें। इस्लाम अविवाहित जीवन व्यतीत करते हुए अभिलाषाओं को दबाने के नैतिक जोखिम से भी भिज्ञ है, जिसने अतीत में अनेक समाजों को विनाश के रास्ते पर डाल दिया। विशेष रूप से खानकाहें और ईसाई मठ बुराईयों के केन्द्र बन गए और स्कैन्डलों में घसीट लिए गए। समाज को ऐसी नियति से सुरक्षित रखने के लिए इस्लाम ने अपने अनुयायियों से , विवाह करने और परिवार बसाने और जन्म और विवाह के बन्धन के आधार पर स्वस्थ समाज बनाने का आदेश दिया। इसे अनिवार्य भी समझा गया ताकि व्यक्तियों के आर्थिक कर्त्तव्य और अधिकार निर्धारित किए जा सकें और व्यक्ति एक दूसरे से कर्त्तव्यों और अधिकारों द्वारा जुड़े।

इससे अधिक उपयुक्त बात नहीं हो सकती थी कि पैग़म्बरों को अपने आप को आदर्श पति और आदर्श पिता के रूप में प्रस्तुत करने का आदर्श दिया जाता। इसी सन्दर्भ में पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) ने अनेक महिलाओं- यद्यपि अधिकतर विधवा महिलाओं- से विवाह किया और परिवार बसाया। यह बात मन में रखनी चाहिए कि पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) ने अपने आप को मात्र एक मनुष्य घोषित किया और न अपने आप को मनुष्य से कम और न अधिक बताया। मानव समाज का आदर्श एक मनुष्य ही हो सकता था कोई दैवीय व्यक्तित्व आदर्श नहीं हो सकता था। एक ऐसा अस्तित्व जो मानवीय अभिलाषाओं और गुणों से रिक्त हो वह फ़रिश्तों के वर्ग के लिए उपयुक्त हो सकता था और पवित्रता और सम्मान अर्जित कर सकता था। परन्तु वह मानवीय चरित्र का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता था। वह आश्चर्य और प्रेम का केन्द्र बन सकता था परन्तु अनुकरणीय नहीं हो सकता था। क्योंकि उसकी विशेषताओं की मौलिक कमी यह थी कि वह मनुष्य नहीं था। इसी तरह केवल ऐसा पैग़म्बर जिसने विवाह किया हो और परिवार बसाया हो वही इसकी कठिनाईयों की समझ रख सकता था और इसकी चुनौतियों को जान सकता था और ऐसा ही व्यक्ति अपने अनुयायियों को ऐसे जीवन की कठिनाईयों का समाधान किस तरह किया जाए इसका मार्गदर्शन कर सकता था। केवल ऐसा ही एक नायक पर्याप्त रूप से उपयुक्त माना जा सकता था और वह दूसरों के लिए आदर्श बन सकता था जिसने जीवन के इन गंभीर मामलों को झेला हो जिसे प्रत्येक सामान्य व्यक्ति आवश्यक रूप से झेलता है।

यदि पवित्र पैग़म्बर अविवाहित रहते तो संभवतः वह एक पूर्ण मनुष्य की छवि के लिए उपयुक्त न होते। एक नायक होना तो दूर की बात है। आदर्श समाज का उसका दृष्टिकोण अपूर्ण रहता। और उसे वह स्थान प्राप्त न होता जो उसे आज प्राप्त है। केवल अनुभव से भरा हुआ मार्गदर्शन ही इस शून्य को भरने योग्य हो सकता था। इससे बढ़कर वह एक सामान्य व्यक्ति के लिए लैंगिक पक्ष, शरीर, परिवार और समाज की चुनौतियों से पार पाने का काम अधिक कठिन बना देता क्योंकि उसमें एक अनुभवी नेता द्वारा उपयुक्त मार्गदर्शन की कमी होती। जहाँ तक दिव्य मार्गदर्शन का सम्बन्ध है इन क्षेत्रों को नैतिकता के रंग में रंगने का काम अपूर्ण रह जाता।

पैग़म्बर मुहम्मद (उनके ऊपर अल्लाह की दया और कृपा हो) द्वारा किए गए विवाहों पर आधारित अगला अध्याय इस बात पर पर्याप्त रोशनी डालता है कि सातवीं शताब्दी के अरब समाज के इस नायक ने पारिवारिक जीवन और सामाजिक क्षेत्र से अपने आप को किस तरह गुज़ारा और आने वाली नस्लों के अनुकरण के लिए एक स्वस्थ आदर्श छोड़ा।

पैग़म्बर (सल्ल0) के अनेक विवाह

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के जीवन के विस्तृत विवरण में इस्लाम को धर्म की संस्था के रूप में स्थापित करना और दैनिक जीवन की परम्पराओं और रीतियों को आकार देना केन्द्रीय महत्व रखता है। अतः यह बात आश्चर्यजनक नही हो सकती कि पश्चिमी ईसाई दुनिया में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के चरित्र की आलोचना उनके लिए केन्द्रीय महत्व की वाहक होनी ही चाहिए थी। इस नये धर्म के बारे में दमिश्क के जॉन (645/676 - 749) जो यज़ीद द्वितीय के दरबार का एक अधिकारी था, से लेकर 18वीं सदी के ज्ञानोदय के विचारक और 19वीं सदी के पूर्ववेत्ताओं जैसे विलियम म्योर और फादर हेनरी लामेन्स की आलोचनाओं में दो विषय लगातार सम्मिलित रहे हैं: वे विषय हैं, युद्ध और पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की पत्नियाँ।

उदाहरण के लिए ज्ञानोदय काल के दो प्रमुख विचारक वोल्टेयर और वाल्ने ने पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) का चित्रण अन्धकार युग के ही रंगों में किया है। वोल्टेयर के विचार में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) एक 'झूठे पैग़म्बर' थे जिन्होंने एक बर्बर धर्म की स्थापना की। सी.एफ वॉल्ने अपने उपन्यास 'ले-रुइन्स' में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) का चित्रण एक हिंसक नेता के रूप में करता है जो अरब के उन लोगों को ताकत से झुकाने के लिए दृढ़ संकल्प थे, जो उनके सिद्धान्तों में विश्वास करने से इंकार करते थे। इसी तरह अपने अनेक विवाहों के कारण पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) को एक उन्मुक्त व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया है। इस प्रकार की अनेक आलोचनाएँ 21वीं सदी में फिर सतह पर आ गयीं जो सलमान रुश्दी जैसे नव-परम्परावादी लेखकों के चरमपंथी समूह द्वारा की गयीं।

लेकिन विलियम म्योर पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) का उपन्यासिक चित्रण करने में उतना भद्दा और आक्रामक नहीं रहा जितना आक्रामक और भद्दा रुश्दी है। इसके

बावजूद विलियम म्योर की आलोचना उसके ज़माने के मुसलमानों ने कठोरता पूर्वक की थी। इन आलोचनाओं ने मुसलमानों की भावनाओं को निश्चित रूप से आहत किया जो पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की पत्नियों का सम्मान माँ की तरह करते हैं।

- बहस का बिन्दु यह नहीं है कि मुहम्मद (सल्ल0) की बीवियों की संख्या कितनी थी, बल्कि यह है कि उन्होंने उनसे विवाह क्यों किया, और इससे बढ़कर यह है कि उनके प्रति उनका व्यवहार कैसा था।
- इस्लाम में विवाह की संस्था को अत्यन्त उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त है। समाज के स्वस्थ अस्तित्व के लिए यह प्रशंसनीय और महत्वपूर्ण है।
- पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने पच्चीस वर्ष की आयु से पहले महिलाओं को कभी हाथ नहीं लगाया। जब उनका पहली बार विवाह हुआ तो आपने मक्का के समाज में सर्वाधिक सच्चे और विश्वसनीय व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी और एक ईमानदार और पारदर्शी व्यापारी के रूप में आपका सम्मान किया जाता था। आप सबसे स्नेह करने वाले मित्र थे और निर्धनों, अनाथों और विधवाओं के रक्षक थे।

बहुविवाह के कारण

यह स्थिति दयनीय है कि इस्लाम के कुछ आलोचक और शत्रु यह तर्क देते हैं कि पैग़म्बर (सल्ल0) के विविध विवाह लैंगिक सन्तुष्टि के लिए सम्पन्न किये गये थे और पैग़म्बर (सल्ल0) के मिशन के क्षेत्र और विवाह से पहले, फिर विवाह के बाद और बाद में मदीना में उनके जीवन स्तर की प्रकृति पर गंभीर विचार किये बिना वह निर्णय करते हैं।

मदीना में पैग़म्बर (सल्ल0) ने विभिन्न कारणों और विचारों के अन्तर्गत अधिक पत्नियों से विवाह किया, ये कारण व्यक्तिगत भी थे, क़बायली भी और राजनैतिक भी। जब उन्होंने अपने परिवार को बढ़ाना शुरु किया तो आपकी आयु पचपन वर्ष थी और वह पत्नियाँ एक किस्म की अथवा दूसरी किस्म की विधवाएँ थीं और दो पत्नियों के अतिरिक्त शेष सभी छत्तीस वर्ष से अधिक उम्र की थीं। क्या कोई यह विश्वास कर सकता है कि आपने महिलाओं से विवाह करना उस समय प्रारम्भ किया जब वह पचपन

वर्ष के आसपास थे। अपने और अपने जीवन के मिशन के लिए सर्वाधिक भयानक संघर्ष किया वह सभी दिशाओं से दुश्मनों से घिरे हुए थे और अन्दर से आपको कपटाचारियों और यहूदियों का खतरा था। क़ुरैश लगातार छापे मार रहे थे और मदीना शहर पर आक्रमण कर रहे थे। आपके आस-पास विरोधी क़बीले मदीना की सुरक्षा के लिए निरन्तर ख़तरा बने हुए थे। रातों में शान्तिपूर्वक सोना भी कठिन था। मुहम्मद (सल्ल0) जैसे पवित्र व्यक्तित्व की बात तो अलग है। कोई और व्यक्ति भी ऐसी परिस्थितियों में वासनाओं और आनन्दमय जीवन में कैसे लिप्त हो सकता था। ये सब बुरी सोच के लोगों के कटाक्ष हैं जो अपने निम्न विचारों और इच्छाओं के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु को देखते हैं। चूँकि उनके अन्दर स्वयं बुराई होती है, इसलिए वह प्रत्येक व्यक्ति को उसी की रोशनी में देखते हैं।

कुलीन और धनवानः विनम्रता, निर्धनता

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने अत्यन्त साधारण, विनम्र और निर्धनता का जीवन व्यतीत किया। आपका घरेलू सामान चटाइयों, जगों, कम्बल और इसी प्रकार की साधारण वस्तुओं पर आधारित था। दिन के समय वह अपने युग के सर्वाधिक व्यस्त व्यक्ति थे। क्योंकि आप अरब प्रायद्वीप के राज्याध्यक्ष और स्वामी की तरह थे। इसके साथ-साथ आप मुख्य न्यायाधीश, सेनापति और प्रशिक्षक भी थे। रात के समय आप सर्वाधिक इबादत करने वाले व्यक्ति थे।

क़ुरआन कहता हैः

> ''आप लगभग एक से दो तिहाई रात (नमाज़ के लिए) तक खड़े रहते हैं''।
>
> (क़ुरआन, 73:20)

आपके जीवन के अन्तिम वर्षों में मदीना में सभी दिशाओं से धनआ रहा था। आपकी अधिकतर बीवियाँ अरब के प्रतिष्ठित और धनवान परिवारों से आयी थीं और अपने अभिभावकों के यहाँ सुख और वैभव से रही थीं। परन्तु पैग़म्बर (सल्ल0) के घर में विलासिता की बात तो दूर, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी मुश्किल से होती थी। पैग़म्बर (सल्ल0) के दिन अक्सर भूख और उपवास में कटते थे और उनकी पत्नियों के लिए भरण-पोषण सन्तोष जनक नहीं होता था। मदीना में बड़ी मात्रा में

धन आता देखकर और लोगों के बीच बँटता देखकर,और यह देखकर कि उनको या तो थोड़ा दिया जाता था या नहीं दिया जाता था। अतः वह पैग़म्बर (सल्ल0) से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक हिस्सा माँगने लगीं। इस सम्बन्ध में क़ुरआन कहता है:

> "ऐ पैग़म्बर अपनी पत्नियों से कह दो कि यदि तुम लोग इस संसार की अभिलाषाओं और इसके सौन्दर्य को चाहती हो तो आओ! मैं तुम्हें तुम्हारे आनन्द के लिए दूँ और अच्छे ढ़ंग से तुम्हें विदा कर दूँ"।

इस तरह उन्हें विकल्प दिया गया कि यदि वह मुहम्मद (सल्ल0) के साथ रहना चाहती हैं तो उन्हें विनम्रता और निर्धनता का जीवन स्वीकार करना होगा अथवा जो कुछ वह चाहती हैं उसे लेकर उन्हें विदा होना होगा। उन्होंने स्वेच्छा से और सहृदय आपके साथ निर्धनता में रहना स्वीकार कर लिया। क्या ये आलोचक वास्तव में विश्वास कर सकते हैं कि ऐसा कामुक और आनन्द में लिप्त रहने वाला व्यक्ति इस स्तर के चरित्र का प्रदर्शन कर सकता है? ऐसे लोगों को चाहिए कि वह पहले अपने जीवन में झाँकें और देखें कि वह कहाँ खड़े हैं, और फिर पैग़म्बर (सल्ल0) की प्रकृति और जीवनशैली को समझने का प्रयास करें और इतिहास के ठोस तथ्यों के आधार पर फैसला करें।

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के विवाहों पर एक-एक करके दृष्टि डालने के बाद कोई व्यक्ति इन विवाहों के पीछे कारणों को आसानी से जान सकता है। इन विवाहों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है:

सामाजिक गठबन्धन

प्रारंभिक विवाहों का उद्देश्य पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) और उनके श्रद्धालुओं के प्रमुख समूह मेआपसी सम्बन्धों को प्रबल बनाना था। पैग़म्बर ने अपनी बेटियों का विवाह अपने सहाबा (साथियों) से किया। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की एक के बाद एक, दो बेटियों, हज़रत रुकय्या और उम्मे कुलसूम का विवाह हज़रत उस्मान से हुआ। फातिमा का विवाह आपने अपने चचेरे भाई हज़रत अली से किया जो पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के प्रबल समर्थकों में से एक थे। हज़रत आयशा के अतिरिक्त पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने हज़रत उमर की विधवा बेटी हफ्सा से भी विवाह किया। हज़रत अबू बक्र, हज़रत

उमर, हज़रत उस्मान और अली पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के घनिष्टतम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण साथी थे और ये सभी बाद में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के उत्तराधिकारी, ख़लीफा बने। ख़लीफा मुस्लिम समुदाय का मुखिया होता है। ये विवाह ऐसे मजबूत बन्धन थे जो पैग़म्बर को आपके साथियों से जोड़ते थे।

राजनैतिक गठबन्धन

बाद में होने वाले विवाहों ने क़बीलाई गठबन्धनों को मजबूत किया और वह क़बीलों के साथ सन्धि स्थापित करने का आधार बने। उदाहरण के लिए हज़रत जुबैरिया से आपका विवाह होने के बाद इस्लाम को पूरे बनी मुस्तलिक क़बीले और उसके सहयोगी क़बीलों का समर्थन प्राप्त हुआ। हज़रत सफीया (रज़ि0) के साथ विवाह के द्वारा आपने अरब समाज के विरोधी यहूदियों के एक बड़े समूह को निष्क्रिय कर दिया। मिस्र की एक ईसाई किब्ती महिला को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करके एक बड़े ईसाई राजा से राजनैतिक गठबन्धन स्थापित किया। एक पड़ोसी राजा के साथ मित्रता का एक संकेत यह भी था कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने हज़रत ज़ैनब से विवाह किया जिन्हें हब्शा के राजा नेगस ने उन्हें उपहारस्वरूप दिया था। यह वही नेगस हैं जिनके राज्य में मुसलमानों को सुरक्षित शरण प्राप्त हुआ था। उम्मे हबीबा मक्का के प्रतिष्ठित सरदार अबू सुफियान की बेटी थीं जो पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के कट्टर विरोधी थे। इस विवाह का उद्देश्य मक्का के एक सर्वाधिक प्रभावशाली नागरिक के साथ सम्बन्ध स्थापित करना था।

भ्रष्ट आचरण से बचाव

उहद के युद्ध में अनेक मुस्लिम सैनिक मारे गये और विधवाएँ और अनाथ छोड़ गये जिनका पालन-पोषण बचे हुए मुसलमानों पर अनिवार्य था। उनकी विधवाओं और छोड़े हुए अनाथ बच्चों की रक्षा के लिए विवाह विभिन्न साधनों में से एक साधन था। पैग़म्बर (सल्ल0) और उनके साथी विवाह के बिना उन्हें अपने घरवालों में सम्मिलित नहीं कर सकते थे। इस प्रकार पैग़म्बर (सल्ल0) ने भी असहाय, निराश्रित और विधवा महिलाओं से विवाह किया।

मुसलमानों ने बहुत से युद्धबंदियों को गिरफ्तार किया था और वह बंदी भी सुरक्षा और शरण के अधिकारी थे। उन्हें न मारा गया और न उन्हें मानवीय अथवा भौतिक अधिकारों से वंचित किया गया। इसके विपरीत वैध विवाहों के माध्यम से उनका पुनर्वास करने में उनकी सहायता की गयी। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) और आपके साथियों को भी, सुरक्षा का हाथ असंख्य विधवाओं और महिला युद्धबंदियों तक फैलाना था और इस प्रकार आपने उनके बच्चों को भुखमरी और तबाही से बचाया।

यदि इन युद्धबंदी विधवाओं और महिलाओं को बिना किसी प्रतिबन्ध के मुक्त कर दिया जाता तो पूरा समाज भ्रष्ट आचरणों से नष्ट हो जाता। इस प्रकार समाज को भ्रष्टाचार से बचा लिया गया। पैग़म्बर (सल्ल0) और आपके साथियों ने इन महिलाओं को विवाह बन्धन के बिना अपने हरम में नहीं रखा। क्या कोई व्यक्ति विधवाओं और अनाथों के लिए इससे बेहतर समाधान सुझा सकता है? क़ुरआन ने इस चीज़ की कल्पना पहले ही कर ली थी और इसीलिए इन विवाहों के उद्देश्य के सम्बन्ध में पहले ही कहाः "ताकि तुमपर कोई आरोप न लगाया जा सके"।

मानवता के लिए आदर्शः

पैग़म्बर संसार में मानवता के लिए एक आदर्श बनकर आए थे और इसी प्रकार वह अपने जीवन के सभी पहलुओं में आदर्श थे। विशेष रूप से विवाह एक प्रभावशाली उदाहरण है। आप सबसे दयालु पति थे, आप सर्वाधिक प्रिय और आकर्षक जीवनसाथी थे। इसके अतिरिक्त पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) अपनी पत्नियों का सम्मान स्वतन्त्र महिला के रूप में करते थे। ये महिलाएँ आपके मिशन की मददगार और उसमें समर्थक थीं। अपनी बीवियों और सामान्य रूप से महिलाओं के साथ आपके व्यवहार में कहीं नारी द्वेष का उदाहरण नहीं मिलता। पैग़म्बर एक ऐसे समाज में पैदा हुए जो बेटियों की हत्या करता था, आपने घोषणा की कि जो लोग अपनी बेटियों के साथ स्नेह करते हैं और उनके ऊपर लड़कों को वरीयता नहीं देते, वे जन्नत में प्रवेश करेंगे। आपको यह कहते हुए भी रिवायत किया गया है कि यदि कोई किसी व्यक्ति के चरित्र के बारे में जानना चाहता हो तो उसे उसकी पत्नी की दशा के बारे में मालूम करना चाहिए!

पैग़म्बर की बीवियाँ मात्र घर का सौन्दर्य नहीं थीं। वे स्वतन्त्र विचार रखती थीं और पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की मृत्यु के बाद मुस्लिम समुदाय के आध्यात्मिक, सामाजिक

और राजनैतिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। जिन्होंने भी इस्लाम धर्म स्वीकार किया- सौदा, हफ्सा, ज़ैनब, उम्मे सलमा, उम्मे हबीबा,- ये निश्चित रूप से चरित्र की धनवान थीं और दृढ़ संकल्प रखती थीं। हफ्सा मात्र सक्रिय ही नहीं थीं बल्कि शिक्षित भी थीं और वह उस कुरआन की उस मूल प्रति के संग्रह कार्य की संरक्षिका थीं जिसपर हज़रत उस्मान (रज़ि0) का प्रामाणिक कुरआन आधारित था। हज़रत ज़ैनब बेसहारा लोगों के बीच काम करने के लिए प्रसिद्ध थीं और उनको उनकी उदारता और दानशीलता के कारण ''ग़रीबों की माँ'' की उपाधि मिली थी। हज़रत उम्मे सलमा पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) को उस रणनीति को सुझाने का श्रेय रखती हैं जिससे आपने अपने अनुयायियों में मतभेद पर काबू पाया, जब आपने हुदैबिया की सन्धि में अपने शत्रुओं को रियायतें प्रदान की थीं। उनमें सर्वाधिक स्वतन्त्र और मुखर हज़रत आयशा थीं। आप एक युवा दुल्हन थीं जो पैग़म्बर के घर में पली बढ़ी थीं। प्रारंभिक मुस्लिम समुदाय के बीच राजैनतिक युद्धों में उनकी प्रमुख भूमिका रही। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) से अपनी निकटता के कारण आप पैग़म्बर के जीवन, चरित्र और क्रिया-कलापों के सम्बन्ध में जानकारी का प्रमुख स्रोत थीं, सबसे अधिक रिवायतें आप ही से प्राप्त हुईं , जिनको हदीस कहा जाता है। इस प्रकार आपकी बीवियाँ उस नयी सामाजिक व्यवस्था का आदर्श थीं जिसे पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) स्थापित करना चाहते थे। जिसमें महिलाओं को अपने पुरुषों के समर्थन में उनके मित्र और सहयोगी के रूप में समाज के सक्रिय साझीदार के रूप में आगे आने के लिए प्रेरित किया जाता था। यह स्पष्ट है कि पैग़म्बर अपने मिशन में महिलाओं के परामर्श और उनके सहयोग को महत्व देते थे।

ज्ञान का भण्डार

पैग़म्बर (सल्ल0) के विवाहों का एक अन्य कारण मानव समाज के मार्गदर्शन के लिए आप (सल्ल0) के कर्मों और कथनों की विरासत की सुरक्षा को सुनिश्चित करना भी था। अल्लाह तआला ने पैग़म्बर (सल्ल0) को एक विश्व शिक्षक बनाकर भेजा था। अतः आपके कर्म अल्लाह के मार्गदर्शन में होते थे।

आधी मानवता महिलाओं पर आधारित है और उन्हें भी इस्लाम का सन्देश प्रभावपूर्ण ढंग से और ईमानदारी से पहुँचाना था। पैग़म्बर (सल्ल0) अपने सन्देश और शिक्षाओं को अपने व्यवहारिक उदाहरणों और शिक्षाओं से प्रतिदिन पुरुषों को देते थे। यह अत्यन्त

आवश्यक था कि सच्ची वफ़ादार और निष्ठावान महिलाओं का एक समूह हो जिसे इस सन्देश को दूसरी महिलाओं तक पहुँचाने के लिए तैयार किया जाए। इस उद्देश्य के लिए एक मात्र तर्कपूर्ण व्यवहारिक और प्रभावपूर्ण तरीक़ा पैग़म्बर (सल्ल0) के परिवार को विस्तृत करना था। इस प्रकार वह महिलाएँ पैग़म्बर (सल्ल0) से अत्यन्त निकट होंगी, उनके निकट रहेंगी, उनके शब्दों और परामर्शों को सुनेंगी और अपने घरों में उनके कर्मों को देखती रहेंगी। पैग़म्बर (सल्ल0) के घर के प्रकाश स्तम्भ से यह नियमित शिक्षा और प्रशिक्षण महिलाओं की व्यक्तिगत गुप्त और नाज़ुक समस्याओं की विस्तृत जानकारी की रक्षा का एक महत्वपूर्ण माध्यम था जो किसी अन्य स्रोत से मानवता को प्राप्त नहीं हो सकता था। उन्होंने इस्लाम के ज्ञान के खज़ानों और पैग़म्बर (सल्ल0) के व्यवहार को निष्ठापूर्वक हस्तान्तरित किया, क्योंकि उन्होंने आपको कर्म करते हुए देखा था, स्वयं भी पैग़म्बर (सल्ल0) के साथ उसका अनुकरण किया था।

अन्तर-क़बायली (अन्तर्जातीय) विवाहों को प्रोत्साहन

हम देखते हैं कि अर्न्तजातीय विवाहों पर प्रतिबन्ध लगाकर समाज के साथ बहुत बड़ा धोखा किया गया है। मानवता को व्यवहारिक शिक्षा देने के लिए पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) ने क़बीलों के बीच जन्म और नस्ल पर आधारित सभी भेदों को मिटा दिया। आपने मिस्र से आयी हुई एक क़िब्ती लड़की, हब्शा से आयी हुई एक निग्रो लड़की और दूसरे धर्म और दूसरी नस्ल से आई हुई एक यहूदी औरत से विवाह करके यह स्पष्ट कर दिया कि एक मुसलमान किसी भी ऐसी महिला से विवाह कर सकता है जो पहले किसी भी धर्म और किसी भी देश में रही हो शर्त यह है कि वह अल्लाह की इबादत में किसी को साझीदार न बनाये। ऐसा ही विवाह आपने मारिया (रज़ि0) से भी किया था। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) केवल बन्धुत्व और समानता की शिक्षा देकर ही सन्तुष्ट नहीं हुए बल्कि आप चाहते थे कि जो कुछ शिक्षा आप दे रहे हैं। उसे व्यवहार में अपनाया भी जाना चाहिए।

विधवाओं का पुनर्विवाहः

अभी पिछले दिनों तक विधवा विवाह एक बड़ी समस्या थी। विशेष रूप से भारत में और इस्लाम से पूर्व अरब में। पैग़म्बर (सल्ल0) ने ऐसे विवाहों की अनुमति दी और आपने अनेक विधवा महिलाओं से विवाह करके (सिवाय कुँवारी आयशा (रज़ि0) और तलाक़शुदा ज़ैनब (रज़ि0)) स्वयं एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

तलाक़शुदा महिलाओं का पुनर्विवाहः

इस्लाम से पहले अरब के लोग तलाक दी हुई महिलाओं से विवाह करने से बचते थे। पैग़म्बर (सल्ल0) ने इसके विरुद्ध शिक्षा देने के लिए ज़ैनब (रज़ि0) से विवाह किया जिन्हें स्वतन्त्र किये हुए दास ज़ैद(रज़ि0) ने तलाक़ दे दी थी।

क़ानून बनाने के लिएः

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के कुछ विवाह नियम बनाने और कुछ कुरीतियों को मिटाने के लिए हुए थे। ऐसा ही विवाह आपका ज़ैनब (रज़ि0) के साथ हुआ जो संकेत करता है कि तलाक़ दी हुई महिला विवाह कर सकती है। हज़रत ज़ैद (रज़ि0) को मुहम्मद (सल्ल0) ने मुँहबोला बेटा बनाया था। जैसा कि इस्लाम से पहले अरबों में परम्परा थी। परन्तु इस्लाम ने इस परम्परा का उन्मूलन कर दिया। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) पहले व्यक्ति थे जिन्होंने व्यवहारिक रूप से इसे ग़लत घोषित करके स्पष्ट कर दिया। अतः आपने अपने मुँहबोले बेटे की तलाक़ दी हुई पत्नी से विवाह कर लिया। जिससे दर्शाया जा सके कि मुँहबोला बेटा बनाने से वास्तव में वह वास्तविक बेटा नहीं हो जाता और यह भी दर्शाना था कि तलाक़ दी हुई महिला के लिए विवाह करना वैध है।

संयोगवश ज़ैनब (रज़ि0) मुहम्मद (सल्ल0) की फुफेरी बहन थीं और ज़ैद (रज़ि0) का उनसे विवाह से पहले उन्हें पैग़म्बर (सल्ल0) को विवाह के लिए प्रस्तुत किया गया था। उस समय उन्होंने इन्कार कर दिया था। परन्तु जब वह तलाकशुदा हो गयीं तो आपने उन्हें स्वीकार कर लिया। इसके दो क़ानूनी उद्देश्य थेः तलाकशुदा महिला के विवाह को वैध करना और मुँहबोले बच्चों की स्थिति को स्पष्ट करना। कुछ लोगों के मन में ज़ैनब (रज़ि0) की कहानी के साथ पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की नैतिक ईमानदारी के सम्बन्ध में हास्यास्पद और गढ़ी हुई कहानियाँ जुड़ी हुई है। पैग़म्बर (सल्ल0) के

आलोचकों और शत्रुओं द्वारा ये आक्रामक, द्वेषपूर्ण और गढ़ी हुई कहानियाँ ऐसी नहीं हैं जिनपर यहाँ विचार किया जाए। (देखिये क़ुरआन, 33:36-38)

हमारे पास जो साक्ष्य मौजूद हैं उनके अनुसार पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की बीवियाँ उच्च चरित्र वाली थीं। उन्होंने पवित्र जीवन व्यतीत किया और उनमें से अनेक कुलीन वंशों से सम्बन्ध रखती थीं। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की मृत्यु के बाद भी उन्होंने सादगी का जीवन व्यतीत किया और धर्म परायण रहीं। उनमें से किसी के प्रति कोई आरोप नहीं लगाया गया है। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के शत्रुओं और आलोचकों ने उनकी छवि को धूमिल करने का प्रयास किया है। यह अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है अथवा उन लोगों के दिलों को चोट पहुँचाने की अनुमति जो पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की बीवियों को अपनी माँओं के रूप में अत्यधिक प्यार, सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं?

एक ब्रिटिश जीवनी लेखक आर.वी.सी. बोडली जो अपनी पुस्तक 'द मेसेन्जरः द लाइफ ऑफ मुहम्मद' के लिए प्रसिद्ध हैं लिखते हैंः

''मुहम्मद (सल्ल0) के वैवाहिक जीवन को पश्चिमी दृष्टिकोण अथवा ईसाई दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिए।''

ब्रिटिश जीवनी लेखक बोडली पूछते हैं,

'कि यूरोप और अमेरिका के क़ानून को एशिया और अफ़्रीक़ा के क़ानून से श्रेष्ठ क्यों समझा जाता है। वह टिप्पणी करते हैं कि पश्चिम के लोग जब तक यह सिद्ध न कर सकें कि उनकी जीवन व्यवस्था दूसरों की तुलना में अधिक उच्च स्तर पर कायम है, उन्हें अन्य आस्थाओं और जातियों और देशों के सम्बन्ध में अपना निर्णय सुरक्षित रखना चाहिए।'

इस्लाम में विधवाओं, तलाकशुदा महिलाओं का विवाह

इस्लाम धर्म बहुविवाह, विधवाओं और तलाकशुदा महिलाओं को पुनःविवाह की अनुमति अनेक कारणों से देता है। ऐसे कारणों के सम्बन्ध में किसी को कल्पना अथवा परिकल्पना नहीं करनी होती। ये कारण वास्तविक हैं और इन्हें प्रतिदिन हर जगह देखा जा सकता है इनमें से कुछ कारणों का हम विश्लेषण करते हैं।

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार *''सामान्यतः, किसी दी हुई आयु में मृत्यु का जोखिम पुरुषों की तुलना में महिलाओं के लिए कम होता है''।*

अनेक सामाजिक और राजनैतिक कारणों से विधवाओं और बेसहारा लोगों की संख्या एक विशेष सीमा तक बढ़ती रहेगी। इसके बड़े कारण युद्ध, दुर्घटनाएँ, प्राकृतिक आपदाएँ, गिरफ्तारियाँ हैं।

प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) में लगभग 8 मिलियन सैनिक मारे गये। इनमें अधिकतर आम नागरिक व सैनिक पुरुष ही थे।

द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) में लगभग 60 लाख लोग या तो मारे गये अथवा जीवन भर के लिए अपंग हो गये, इसमें से अधिकतर पुरुष थे।

केवल ईराक-ईरान युद्ध (1979-1988) में ही 82,000 ईरानी महिलाएँ और लगभग 1,00,000 ईराकी महिलाएँ विधवा हो गयीं, यह सब दस वर्ष के अन्तराल में हुआ।

ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ सड़कों पर रोजाना दुर्घटनाएँ न होती हों। वर्ष 2009 में, सरकारी रिपोर्ट के अनुसार भारत में दुर्घटनाओं में कुल 3,60,000 लोग मारे गये। इसमें 77 प्रतिशत पुरुष व 23 प्रतिशत महिलाएँ थीं।

समाज में पुरुषों की कमी का एक और कारण कारावास है। वर्ष 2009 में यू0एस0 में 72,25,800 लोग दोषी ठहराकर जेल भेज दिये गये। इसमें से 97 प्रतिशत पुरुष थे, जो एक लम्बे कारावास की सजा काटने के लिए विवश हो गये। पुरुष क़ैदी महिलाएँ क़ैदियों से सामान्यत अधिक होते हैं।

कुछ दोषियों को लम्बी अवधि का कारावास जिसमें सजा-ए-मौत और आजीवन कारावास सम्मिलित है, मिलेगा। एक स्वस्थ्य समाज के लिए उपयुक्त और मानवीय समाधान आवश्यक है और यह केवल महिला समाज को उनके अधिकार उपलब्ध कराने

से ही प्राप्त किया जा सकता है। इस विशेष परिस्थिति में इस्लाम विवाह सम्बन्धों के समापन का परामर्श देता है और कुछ अन्य कठोर सजाओं में तीन वर्ष से अधिक लम्बे कारावास के कारण विवाह सम्बन्ध टूट जाते हैं। इस प्रकार प्रभावित महिलाओं को अपना वैध जीवन साथी चुनने की अनुमति दी जायेगी। इस प्रकार बहुविवाह इन महिलाओं को बचा सकता है और इस गम्भीर समस्या का समाधान कर सकता है।

अब यदि कोई समाज इस संवर्ग में आता है और यदि वह बहुविवाह पर रोक लगाता है और वैध विवाहों को मात्र एक पत्नी तक सीमित कर देता है तो विधवा और तलाकशुदा महिलाएँ क्या करेंगी? वह प्राकृतिक रूप से ऐच्छिक जीवनसाथी कहाँ से पायेंगी। वह सहानुभूति, समझ, सहयोग और सुरक्षा कहाँ से और कैसे प्राप्त करेंगी? इन समस्याओं के प्रभाव साधारण रूप से शारीरिक ही नहीं है बल्कि वह नैतिक, भावनात्मक, सामाजिक, भावात्मक और प्राकृतिक भी हैं। प्रत्येक सामान्य महिला चाहे वह व्यापारी हो चाहे विदेश सेवा में हो या गुप्तचर विभाग में हो। उसे एक घर और अपने एक परिवार की चाहत होती है। उसे किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो उसकी देख-रेख करे। यहाँ तक कि यदि हम इस समस्या पर पूर्णतः शारीरिक दृष्टिकोण से देखें तब भी इसके प्रभाव गम्भीर दिखायी देंगे और हम उनकी अनदेखी नहीं कर सकते अन्यथा मनोवैज्ञानिक हीन भावनाएँ, मनोबल का टूटना, सामाजिक विक्षोभ और मानसिक अस्थिरता उत्पन्न होगी।

इन प्राकृतिक इच्छाओं और भावनात्मक उमंगों को समझना चाहिए। इन्हें किसी से सम्बन्धित होने, देख-रेख करने, अपनी देख-रेख कराने जैसी इच्छाओं को किसी न किसी तरह सन्तुष्ट करना होगा। ऐसी परिस्थितियों में महिलाएँ साधारणतः अपनी प्रकृति को बदल नहीं पातीं अथवा वह दैवीय जीवन नहीं अपना पातीं। वह महसूस करती हैं कि उन्हें भी जीवन का आनन्द लेने का सम्पूर्ण अधिकार और अपना हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है। यदि वह इसे वैध और शालीनतापूर्वक नहीं पा सकती तो वह अन्य स्रोतों से प्राप्त करने में असफल नहीं होतीं, चाहें वह प्रयास जोखिम भरे हों अथवा क्षणिक हों। बहुत कम ऐसी महिलाएँ हैं जो स्थायी रूप से पुरुषों के स्थायी और सुनिश्चित साथ के बिना कुछ कर सकती हैं।

ऐसी परिस्थिति में कोई भी महिला एक मनोवैज्ञानिक रोगी हो जायेगी अथवा विद्रोही और नैतिकता नष्ट करने वाली हो जायेगी।

अतीत में भी जब किसी महिला का पति मर जाता था तो विरासत की सम्पत्ति की तरह या तो उसको पति के भाई अथवा सौतेले बेटे के हवाले कर दिया जाता था जो

उसके साथ क्रूर व्यवहार करता था। भारतीय समाज में एक रीति यह थी कि विधवा को उसके पति की चिता पर जला दिया जाता था। यदि उसे जीवित रहना होता तो वह सांसारिक आकर्षणों से दूर रहती और पूरे जीवन भर विलाप करना पड़ता।

परन्तु इस्लाम ने विधवा महिलाओं अथवा तलाकशुदा महिलाओं के शोक को चार महीने और दस दिन तक सीमित कर दिया जिसे इद्दत की अवधि कहा जाता है। इसके बाद उसे प्रत्येक प्रकार के सौन्दर्य अपनाने की अनुमति दी जाती है और अब वह पुनः विवाह कर सकती है और क़ुरआन इसे इसकी अनुमति देता है।

"उन महिलाओं से विवाह करो जो विवाह बन्धन से नहीं जुड़ी हैं"।

(क़ुरआन, 24:32)

क़ुरआन की आयतें जिनका ग़लत अर्थ समझा गया है:

इस्लाम आलोचकों और शत्रुओं की बड़ी संख्या के प्रकोप का भागी रहा है। उनके लिए सबसे अच्छा खेल यह है कि वह इस्लाम पर ग़ैर-मुस्लिमों के विरुद्ध हिंसा भड़काने का आरोप लगाते हैं और यह लोग अधिकतर संसार के उन क्षेत्रों से आते हैं जो मानवता के विरुद्ध सबसे बुरे अपराधों में लिप्त हैं। दो विश्वयुद्ध करने, बोस्निया में नरसंहार करने, स्टालिन के आतंक, जापान पर नाभिकीय आक्रमण, इराक, अफगानिस्तान, लीबिया और लेबनान का पूर्ण विनाश करने के बाद भी इनकी तोपें खामोश नहीं हैं। इस्लाम को सबसे अन्धकारपूर्ण रंग में रंगने के लिए उनकी मीडिया सदैव क़ुरआन की आयतों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने में लगी रहती है ताकि क़ुरआन की आयतें हिंसा का उपदेश देती हुई प्रतीत हों। ऐसा विकासशील और प्राकृतिक स्रोतों से भरपूर मुस्लिम देशों के विरुद्ध युद्धों को उचित ठहराने के लिए किया जाता है।

क़ुरआन मुसलमानों के लिए मार्गदर्शन का मुख्य पाठ्यक्रम है। यह सच्चाई है कि क़ुरआन एक बार में अवतरित नहीं हुआ है। इसकी बजाए यह मक्का और मदीना के शहरों में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के आरम्भिक अनुयायियों के एक छोटे से समाज में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया में मार्गदर्शन करने के लिए 23 वर्षों के दौरान अवतरित हुआ। इन दोनों स्थानों के श्रोता एक-दूसरे से पूर्णतः भिन्न थे। इसी तरह परिस्थितियों की प्रकृति भी भिन्न थी। मक्का में जहाँ पैग़म्बर (सल्ल0) ने अपनी पैग़म्बरी के 23 वर्षों में से पहले 13 वर्षों के दौरान इस्लाम का प्रचार किया, आपने वहाँ एक विरोधी वातावरण का सामना किया। टकराव का प्रारम्भ आपके विरोधियों की ओर से किया गया। आपके विरोधी मक्का के क़ुरैश थे और यह विरोध धीरे-धीरे आलोचना, उत्पीड़न, दमन और हत्या के प्रयास के रूप में किया जाता रहा। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) और आपके अनुयायी मदीना स्थानान्तरित हो गए। जहाँ वह शान्तिपूर्वक रह सकें। उनमें से अनेक को मक्का से निकाला गया और उन्हें अपने परिवार और सम्पत्ति मक्का में ही छोड़ने के लिए कहा गया। उनमें से कुछ अन्य को रात के अँधेरे में मक्का छोड़ना पड़ा। क्योंकि उनको जान

का खतरा था। कुछ लोग इतने बहादुर थे कि उन्होंन अपने मक्का प्रवास की नीयत की घोषणा की। मदीना में उनके पास अनुयायियों की बड़ी संख्या थी जो अपने आज्ञापालन में समर्पित थे और वह अपने जीवन को अल्लाह और पैग़म्बर के आदेशों के अनुसार ढालने के इच्छुक थे।

लेकिन प्रवास के दूसरे ही वर्ष में इस्लाम के शत्रु, मक्का के क़ुरैश, जिन्होंने मदीना पर आक्रमण किया, इसके परिणामस्वरूप बद्र का युद्ध हुआ, जिसमें क़ुरैश के क़ाफिर मुसलमानों के हाथों बुरी तरह पराजित हुए। तीसरे वर्ष भी मक्कावालों ने मदीना के विरुद्ध आक्रमण का नेतृत्व किया। मुसलमानों को इसमें बहुत क्षति हुई लेकिन किसी तरह मुसलमान अपने पूर्ण विनाश से बचने में सफल रहे। हिजरत के पाँचवें वर्ष मक्का वालों ने लगभग 10,000 की विशाल सेना लेकर मदीना पर चढ़ाई की। पैग़म्बर (सल्ल0) और आपके अनुयायियों ने अपनी संख्या बहुत अधिक कम देखकर और हथियारों की कमी को देखते हुए मदीना के चारो ओर एक विशाल खाई खोदी और उन्होंने सीधे टकराव से परहेज़ किया। युद्धों से थक जाने के कारण मक्का के लोग फिर कभी नहीं आए। सातवें वर्ष दोनों पक्षों में एक सन्धि हुई जिसका मक्कावालों ने छः महीने के अन्दर ही उल्लघंन किया। इसका बदला लेने के लिए पैग़म्बर ने स्वयं 10,000 की सेना लेकर हिजरत के आठवें वर्ष मक्का पर चढ़ाई की और बिना युद्ध और रक्तपात के मक्का पर विजय प्राप्त की। इस्लाम के शत्रुओं को पैग़म्बर द्वारा क्षमादान दिया गया। आरम्भिक इस्लाम के सैनिक अभियानों का यह संक्षिप्त इतिहास है। इन वर्षों के दौरान क़ुरआन लगातार पैग़म्बर (सल्ल0) का मार्गदर्शन करता रहा।

उपरोक्त इतिहास में जो चीज़ देखी जा सकती है वह यह है कि ये युद्ध पैग़म्बर (सल्ल0) पर थोप दिए गए थे। आपने कोई युद्ध आरम्भ नहीं किया। बल्कि जब आपके ऊपर आक्रमण किया गया तो आपने उसका पूरी ताकत से मुक़ाबला किया। और जब सन्धियों को तोड़ा गया तो आपने सन्धियों का उल्लघंन करने वालों के विरुद्ध युद्ध करने की नीयत की घोषणा की। परन्तु आपने सभी नागरिकों के लिए क्षमादान की घोषणा की।

यही ऐतिहासिक घटनाक्रम है। इन्हीं के अनुसार पैग़म्बर का मार्गदर्शन किया गया था। अब क़ुरआन की आयतों को समझने के लिए यह आवश्यक होगा कि प्रत्येक आयत को उसके सन्दर्भ से जोड़ा जाए। क़ुरआन के आलोचक इस मामले में ग़लती करते हैं और वह इस्लाम के विरुद्ध अपने पूर्वाग्रहों के समर्थन के लिए इनको सन्दर्भ से हटकर देखते हैं।

भारत और विश्व के कुछ देशों में क़ुरआन की कुछ आयतों के बारे में सन्देह पैदा करने की कोशिशें की जाती रही हैं। कुछ लेखक आयतों को बुरी नीयत के साथ उनके सन्दर्भ से हटाकर प्रस्तुत करते हैं और अपनी धारणाओं और कल्पनाओं के आधार पर उनकी व्याख्या करते हैं। क़ुरआन को उसके सन्दर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। यदि कोई एक आयत को चुन ले और इसके परिप्रेक्ष्य की अनदेखी करे तो अधिकतर वह भटक जाएगा। क़ुरआन और इसकी आयतों को पढ़ने के लिए शर्त यह है कि विश्वास की लगनशीलता के साथ पढ़ा जाए। यदि कोई बुरी नीयत से पढ़ेगा तो उसे मार्गदर्शन नहीं मिलेगा।

क़ुरआन की उन्हीं व्याख्याओं और तफ्सीरों को स्वीकार करना चाहिए जो प्रामाणिक हों और ऐसे लोगों द्वारा लिखी गयी हों जिन्हें क़ुरआन, इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य ओर पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) के जीवन का प्रामाणिक ज्ञान हो।

यहाँ हम क़ुरआन की ऐसी आयतों को प्रस्तुत कर रहे हैं जिनका ऐसे लेखक प्रयोग करते हैं जिनकी नीयत सन्देह पैदा करना और लोगों को भटकाना हैः

"और अल्लाह की राह में उन लोगों से युद्ध करो जो तुमसे युद्ध करें और सीमाओं का उल्लघंन करने वाले न बनो, निस्सन्देह अल्लाह, सीमाओं का उल्लघंन करने वालों को पसन्द नहीं करता। और उनको जहाँ कहीं पाओ, क़त्ल करो, और उन्हें निकालो जहाँ से उन्होंने तुम्हें निकाला है, और फ़ितना (उत्पीड़न), क़त्ल से भी बढ़कर है। और तुम उनसे मस्जिद-ए हराम (कअबा) के पास न लड़ो जब तक कि वे तुमसे वहाँ युद्ध न करें। तो यदि वे तुमसे वहाँ युद्ध करें तो उन्हें क़त्ल करो यही अवज्ञाकारियों का बदला है। फिर यदि वे बाज़ आ जायें, तो निस्सन्देह अल्लाह अत्यन्त क्षमाशील और दयावान है। और उनसे युद्ध करो यहाँ तक कि फ़ितना शेष न रहे और दीन अल्लाह का हो जाये। और यदि ये बाज आ जायें, तो जालिमों के सिवा किसी के विरुद्ध कदम उठाना ठीक नहीं। आदर वाला महीना आदर वाले महीने के बराबर है और आदर के विषयों में बराबरी का बदला है। तो जो तुम पर ज़्यादती करे, तो तुम भी उसकी ज्यादती के बराबर उससे ज़्यादती का बदला लो। और अल्लाह का डर रखो, और जान लो कि अल्लाह उन्हीं लोगों के साथ है जो उसका डर रखते हैं"। (क़ुरआन 2:190-194)

क़ुरआन का उपरोक्त अनुच्छेद कई तरह से हमारे आधुनिक समय के संकट और दुविधा की ओर संकेत कर रहा है। ऐसा इसलिए है कि यह आयतें क़ुरआन में सबसे अधिक चर्चित बयानों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस्लाम के आलोचक और पूर्वाग्रह रखने वाले लोग कहते हैं कि इस्लाम अपनी प्रकृति के अनुसार हिंसक है।

यह आयतें उन निर्देशों का अंग हैं जो मुसलमानों और अन्य समुदायों के बीच के सम्बन्धों को नियन्त्रित करती हैं; इसलिए ये सावधानीपूर्ण विश्लेषण चाहती हैं और इस बात की आवश्यकता है कि सभी लोग इसे स्पष्ट रूप से समझें। ये आयतें इसकी समझ प्राप्त करने के लिए बहुत नाज़ुक हैं कि मुसलमानों को अपने आप से क्या माँग करनी चाहिए,और अन्य समुदायों को किस तरह मुसलमानों को ज़िम्मेदार ठहराना चाहिए।

अब साधारण प्रश्न यह है कि जिस निश्चयात्मक और घोषणात्मक कथन से यह अनुच्छेद प्रारम्भ होता है, वहाँ से लेकर- ''लेकिन अत्याचार न करोः अल्लाह अत्याचारियों को पसंद नहीं करता''- हिंसा की सम्पूर्ण अनुमति तक उन्हें कोई किस तरह देखता है?

उत्तरः यह प्रश्न कोई उसी समय कर सकता है जब वह अपनी समझ को दूषित करके और इस बात की अनदेखी करके सोचता है कि यह अनुच्छेद क़ुरआन के संपूर्ण नैतिक ढाँचे में किस तरह बैठता है।

वास्तव में क़ुरआन की इन आयतों को पढ़ते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि एक ही चेतावनी नहीं बल्कि अनेक चेतावनियों को ध्यान में रखा गया है। पहली बात तो यह है कि किसी भी अनुच्छेद को उसके सन्दर्भ से हटकर नहीं पढ़ना चाहिए; सभी अनुच्छेदों को क़ुरआन के सम्पूर्ण ढाँचे और अनुच्छेद के पहले और बाद में आने वाले अनुच्छेदों की रोशनी में देखना चाहिए। दूसरे यह भी नहीं भूलना चाहिए कि क़ुरआन 23 वर्षों की अवधि में अवतरित हुआ और यह केवल सामान्य लोगों के वास्तविक और जीवन्त समुदाय की वास्तविक परिस्थितियों को ही सम्बोधित नहीं करता बल्कि यह भविष्य में आने वाली संसार की शेष मानवता को भी सम्बोधित करता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि लगभग 1500 वर्ष पहले क़ुरआन की आयतों के अवतरण के समय मुसलमान किन समस्याओं से जूझ रहे थे इनकी जानकारी रखने के अतिरिक्त हमें यह विचार भी करना चाहिए कि क़ुरआन वास्तव में किस तरह की मानसिकता और किस तरह का दृष्टिकोण विकसित करना चाहता है।

जिस सन्दर्भ में यह आयतें अवतरित हुई थीं उसे विशेष रूप से समझने की आवश्यकता है। उभरता हुआ मुस्लिम समुदाय, जिसकी संख्या कुछ सौ से अधिक नहीं थी, उसकी घेराबन्दी की गयी थी और वह जीवन और मृत्यु की भयानक परिस्थितियों में जकड़ा हुआ था। मुसलमानों और अरब के विभिन्न क़बीलों, विशेष रूप से मक्का के क़ुरैश क़बीले के बीच खुला वैमनस्य जारी था। इस्लाम को मक्का में दबाने में असफल होने और यह जानने के बाद कि मुसलमानों को मदीना में शरण मिल गयी है और वह वहाँ ताक़तवर होते जा रहे हैं, मक्का के क़ुरैश ने सदैव के लिए मुसलमानों को नष्ट करने के लिए तलवार और हथियार उठा लिये थे।

क़ुरैश ऐसे बड़े युद्ध की तैयारी कर रहे थे जिसे यह फैसला करना था कि मुसलमानों को जीवित रहना है या नष्ट हो जाना है। (इस टकराव का अन्तिम परिणाम प्रसिद्ध बद्र के युद्ध के रूप में हुआ (क़ुरआन, 2: 624)) जैसा कि बाद में आने वाली क़ुरआन की आयतें स्पष्ट करती हैं क़ुरैश पूर्णतः मुस्लिम समुदाय को नष्ट कर देने के लिए वचनबद्ध थे।

> "वह तुमसे उस समय तक लडते रहेंगे जब तक वह तुम्हारे ईमान से तुमको विमुख न कर दें, अगर वह कर सकें"। (क़ुरआन, 2:17)

अतः मुसलमानों के पास कौन से विकल्प बचे थे? अन्ततः इन्हीं परिस्थितियों में मुस्लिम समुदाय को आत्मरक्षा में लड़ने की अनुमति दी गयी, जिनको अब तक युद्ध करने से रोका गया था। इस प्रकार क़ुरआन की आयतें ऐसे समय में अवतरित हुई थीं जब मक्का के क़ुरैश और मदीना के मुसलमानों के बीच वैमनस्य बढ़ते जा रहे थे और एक समुदाय के रूप में मुसमलानों का अस्तित्व दाव पर लगा हुआ था।

और इन आयतों में एक विशिष्ट निर्देश है जो मात्र एक ऐतिहासिक परिस्थिति के लिए विशेष है। उदाहरण के लिए यह आदेश "उनको क़त्ल करो" यह स्पष्ट करता है कि क़ुरआन उस कारवाई की ओर संकेत कर रहा है जो उन लोगों के विरुद्ध की जानी चाहिए जो मुसलमानों से वैमनस्य में लिप्त हैं, विशेष रूप से मक्का के क़ुरैश। क़ुरैश के इन अत्याचारियों ने मुसलमानों को अपने घरों से निकाल दिया था। अतः पैग़म्बर के अनुयायियों को यह अनुमति दी गयी कि वह *उन्हें उस स्थान से निकाल दें जहाँ से उन्होंने इनको निकाला था।* उन्होंने मक्का की पवित्र मस्जिद को अपने अधिकार में

कर लिया था और मुसलमानों से कहा गया था कि यदि संभव हो तो पवित्र मस्जिद की सीमाओं के अन्दर युद्ध न करो।

और इसके बावजूद परीक्षा की इन कठिन घड़ियों में मुसलमानों से कहा जा रहा है कि 'सीमाओं का उल्लघंन न करो"। अर्थात उन्हें महिलाओं, बच्चों या युद्ध न करने वालों की हत्या करने या सम्पत्ति को जलाने या फसल या मवेशी को नष्ट करने या, जितना उन्होंने अत्याचार किया है उससे अधिक अत्याचार करने, जैसे अति के काम उनको नहीं करने चाहिए- क्योंकि सीमाओं का उल्लघंन करने का परिणाम आत्मविनाश हो सकता है:

"अपने ही हाथों से अपने आप को विनाश में न डालो"। (क़ुरआन, 2:195)

और यदि शत्रु लड़ने से रुक जाये तो मुसलमानों को हथियार डाल देना चाहिए; मात्र वैमनस्य का मुक़ाबला ही वैमनस्य से करना चाहिए। इस प्रकार मुसलमानों का युद्ध वास्तव में एक प्रतिरोध था जिसका उद्देश्य दुश्मन को निकालना और नष्ट करना नहीं था बल्कि उन्हें इस बात के लिए राजी करना था कि वह लड़ने से रुक जायें।

अतः यहाँ सामान्य सिद्धान्त बताये गये हैं जिनका व्यापक व्यवहारिक उपयोग है। क़ुरआन के अनुसार युद्ध को न्यायोचित ठहराने की एक मात्र संभावना आत्म रक्षा ही है। वास्तविक और क़ानूनी शत्रु वह है जो इस्लाम और इसके समुदाय के विरुद्ध युद्ध छेड़ता है- यही सिद्धान्त क़ुरआन में दिया गया है। (उन लोगों को युद्ध करने की अनुमति दी गयी जिनके विरुद्ध अन्यायपूर्वक युद्ध छेड़ा गया है (क़ुरआन, 22:39)) इसीलिए पैग़म्बर (सल्ल0) द्वारा लड़े गये तीन युद्ध- बद्र का युद्ध, उहद का युद्ध और खन्दक का युद्ध- अपनी प्रकृति में रक्षात्मक थे। उपरोक्त अन्तिम युद्ध वास्तव में लड़ा ही नहीं गया। अपनी रक्षा के लिए मदीना के चारों ओर खाई खोदी गयी थी और यह नीति इतनी सफल रही कि शत्रु इस खाई को पार करने में असमर्थ रहा और वह मदीना का एक महीने तक घेराव करने के बाद निराश होकर वापस चला गया। इसमें यह शिक्षा निहित है कि; अत्याचार से मना किया गया है, और मुसलमानों को टकराव प्रारम्भ नहीं करना चाहिए:

"अत्याचार न करो क्योंकि अल्लाह अत्याचारियों को पसन्द नहीं करता"।

क़ुरआन में रक्षात्मक युद्ध का सीधा सम्बन्ध दमन से है। क़ुरआन कहता है कि दमन और अत्याचार हत्या से भी बुरे हैं। जैसा कि इतिहास से स्पष्ट है, दमन अवर्णनीय

अत्याचारों की ओर ले जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप मानहानि और मानव सम्मान का उल्लघंन हो सकता है और इसके द्वारा लोगों को स्वतन्त्रता और विकास के अधिकार से वंचित किया जा सकता है। दमन और अत्याचार, दमनकारी और पीड़ित दोनों की मर्यादा घटाते हैं। वह लगातार घृणा को हवा देते हैं और सच्ची स्वतन्त्रता से वंचित करके नये-नये टकराव उत्पन्न करते हैं और उन अवसरों से वंचित करते हैं जो सभी लोगों को मिलने चाहिए। वे निर्दोषों पर जीवन्त मृत्यु थोपते हैं। इसी की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए क़ुरआन मदीना के मुसलमानों को मक्का के अत्याचारियों के विरुद्ध खड़े होने और युद्ध करने की अनुमति देता है जो मदीना के मुसलमानों का दमन और उत्पीड़न कर रहे थे और इनके विरुद्ध अनैतिक भाषा का प्रयोग कर रहे थे।

बाद में आने वाली आयत में क़ुरआन दमन की प्रकृति की चर्चा करता हैः

''यदि वह तुम्हें जीवित रहने नहीं देते और तुम्हें शान्ति से नहीं रहने देते और अपने हाथ तुमसे नहीं रोकते''

दूसरे शब्दों में दमन लगातार उत्पीड़न का नाम है जो किसी को अपनी इच्छा और पहिचान के अनुसार जीवन व्यतीत करने के अधिकार और स्वतन्त्रता से वंचित करता है और शान्ति के लिए किसी विकल्प की अनुमति नहीं देता। जिस शब्द का अनुवाद उत्पीड़न किया जाता है वह अरबी भाषा में फ़ितना है। इसमें उत्पीड़न, दुर्दशा, हत्या, विद्रोह और लगातार मुसीबत सम्मिलित है। यह लोगों को अपने विश्वास के अनुसार कर्म करने की स्वतन्त्रता से रोकने के समानार्थी है। यह वही परिस्थितियाँ हैं, जिनमें इस सूरः में बाद में युद्ध को घृणित वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। (क़ुरआन, 2:217) और यही बाद में वैध और न्यायोचित हो जाता है।

दमन के विरुद्ध युद्ध और अपने जीवन के लिए इस संघर्ष को ही क़ुरआन में अल्लाह के मार्ग में न्यायोचित युद्ध कहा गया है। 'अल्लाह के मार्ग में' की शब्दावली का अर्थ अपने विश्वास के प्रचार के लिए किया जाने वाला युद्ध नहीं है और इस रूप में क़ुरआन में एक बार भी नहीं प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर उद्देश्य निश्चित रूप से उत्पीड़न और दमन से मुक्ति है और न ही आयत 'जब तक दमन समाप्त न हो जाए और धर्म अल्लाह के लिए न हो जाए'। (2:193) का अर्थ इस्लाम का प्रभुत्व और दूसरे विश्वासों के लोगों को अधीन बनाने और उनका दमन करने से हैं।

इसके बजाए इस शब्दावली का उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था के उन फलों पर ज़ोर देना है जिसमें इन्सान, इन्सान की गुलामी से मुक्त हो और इसका उद्देश्य दमन से मुक्ति के अन्तिम परिणाम की ओर संकेत भी करना हैः अल्लाह की इबादत बिना भय और दमन के की जा सके। वास्तव में उपवाक्य ''धर्म अल्लाह के लिए हो जाए'' का अर्थ यह है कि प्रत्येक समुदाय इबादत कर सके। कुरआन में इसे सूराः 22 आयत 40 में स्पष्ट किया गया है कि जो लोग अल्लाह के रास्ते में दमन से लड़ते हैं वह मठों गिरजाघरों और यहूदियों की इबादतगाहों और मस्जिदों को मुक्त कराते हैं जिसमें अल्लाह का नाम अधिक से अधिक लिया जाता है और अगर ऐसा न होता तो इन इबादतगाहों को ढा दिया जाता। जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वह बिल्कुल यही हैंः धर्म अल्लाह के लिए है।

इन आयतों का सन्देश यह है कि दमन के विरुद्ध युद्ध का अन्तिम परिणाम यह होना चाहिए कि धर्म के आधार पर कोई दमन न हो और प्रत्येक व्यक्ति अपने पसन्द का धर्म अपनाने के लिए स्वतन्त्र हो। इसलिए स्पष्ट रूप से इन आयतों और इससे पहले की कुरआन की आयतों में कोई विरोधाभास नहीं है।

वास्तव में इसके विपरीत जो व्याख्या की गयी है कि- युद्ध उस समय तक जारी रहना चाहिए जब तक सभी लोग इस्लाम स्वीकार न कर लें- एक तरफ तो कुरआन की भावना के ही विरुद्ध है और दूसरी तरफ अन्य बहुत सी आयतों को विरोधाभासी बना देती है जैसे ''धर्म में कोई ज़बरदस्ती नहीं'' (कुरआन, 2:256)। ऐसी व्याख्या उन आयतों को तथ्यहीन बना देती है जो ईमानवालों को अन्य समुदायों से समझौता करने और सन्धि करने के लिए उभारती हैं।

कुरआन की यह आयतें (कुरआन, 2:190-195) साधारणतः अन्य आयतों (जैसे कुरआन, 4:76, 4:34, 4:89, 4:91 और 9:5, 9:12, 9:14, 9:29, 9:36, 9:123) के साथ पढ़ी जाती हैं जिनमें से सभी युद्ध करने के आदेश की बात करती हैं। लेकिन जिन आयतों ने प्राचीन व्याख्याकारों और कुरआन के आलोचकों का ध्यान अपनी ओर सबसे अधिक आकर्षित किया है, वह कुरआन (9:5) है जिसे तलवार की आयत भी कहा जाता है और (3:149) जिसे आजकल कभी-कभी आतंक की आयत कहा जाता है। यहाँ पर इनकी विशेष प्रासंगिकता को देखते हुए इन आयतों पर चर्चा करना महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।

तलवार वाली आयत-(9:5) शिर्क करने वालों को मारो जहाँ कहीं तुम उनको पाओ, उनको पकड़ो, और उनको क़ैद करो, और हर हमले की जगह पर उनके लिए घात में लगे रहो- इसे सभी मुसलमानों के लिए निर्देश के रूप में नहीं देखा जा सकता। फिर यह उन लोगों के संबंध में निर्देश है जो घमासान युद्ध के मैदान में युद्धरत हैं। आयत का पहला भाग पवित्र महीनों की बात करता है जब माना जाता था कि एक क़िस्म की सन्धि लागू है। लेकिन बनी दमरः और बनी कनाना क़बीलों के अतिरिक्त, जो मुसलमानों से की गयी सन्धियों का सम्मान करते थे, मदीना और मदीना के आस-पास के सभी अन्य क़बीले अपनी सन्धियों का उल्लघंन कर रहे थे और मुसलमानों की लगातार हत्या और दमन कर रहे थे। वास्तव में मुसलमानों के मामले में ये उल्लघंन सभी अरब क़बीलों की विशेषता थी। यहाँ भी मुस्लिम समुदाय का अस्तित्व दाव पर लगा हुआ था। अतः मुसलमानों से कहा गया कि अपने बचाव के लिए युद्ध के तरीक़े अपनायें लेकिन जब दुश्मन तौबा कर ले अर्थात लड़ाई समाप्त हो जाए तो उन्हें अपने रास्ते पर जाने की अनुमति दी जानी चाहिए। युद्ध के मैदान में भी इस्लाम के दुश्मनों का आचरण उचित नहीं था और वह व्यापक रूप से सम्मान किये जाने वाले क़बीलाई समझौतों का सम्मान नहीं करते थे। मुसलमानों ने युद्ध से रुक जाने के इस आदेश का पालन किया और तलवारों को उस समय म्यान में वापस डाल लिया, जब दुश्मन ने हथियार डाल दिया। लेकिन मक्का के क़ुरैश मुसलमानों की इस नीति का अक्सर दुरुपयोग करते थे और इस दौरान धोखा और विश्वासघात करते थे और इस तरह अनेक मुसलमानों की हत्या कर देते थे। इसलिए क़ुरआन की यह आयत उन लोगों के विरुद्ध द्वेष और क्रोध प्रकट करती है, *"जिन लोगों के साथ तुम्हारा समझौता है और वह इस सन्धि को बार-बार तोड़ देते हैं"।* (क़ुरआन, 8:56) यही वह विशेष लोग हैं जिनकी ओर यह आयत इशारा करती है।

अब हम इस आयत पर विचार करते हैं (अर्थात, हम विश्वास न करने वालों के दिलों में आतंक डाल देंगे), वह अन्य देवताओं को पूजते हैं जिनके लिए कोई प्रमाण नहीं उतारा गया है। (क़ुरआन, 3:149) यह आयत क़ुरआन के वास्तविक और काल्पनिक विरोधियों का पसन्दीदा हथियार रही है।

इस्लाम के विरोधी और आलोचक जो प्रचार करते हैं उसके विपरीत यह वास्तविकता

का बयान है। इस आयत के संदर्भ को देखिए। यह आयत उहद के युद्ध के दौरान अवतरित हुई थी, जब पैग़म्बर मुहम्मद(सल्ल0) बद्र के युद्ध में मुसलमानों की छोटी सेना द्वारा मक्का की सेना को पराजित करने के बाद एक वर्ष के अन्दर दूसरी बार मक्की सेना के हमले का सामना कर रहे थेः क़ुरआन यहाँ पर पैग़म्बर (सल्ल0) को भरोसा दिलाता है और उनको वचन देता है कि शत्रु पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल0) की ग़ैर पेशेवर सेना द्वारा आतंकित कर दिया जायेगा। यदि इस सन्दर्भ में देखा जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह आयत मुसलमानों के लिए सामान्य आदेश नहीं है, बल्कि यह आयत उस समय शत्रु जो कुछ महसूस कर रहा था उस पर एक टिप्पणी है।

जो लोग अत्यन्त सामान्य रक्षात्मक कारवाइयों में भी आतंक देखने के लिए उत्सुक रहते हैं वह इस तरह की आयतों में अधिक ख़तरनाक नतीजे पढ़ने के लिए आतुर रहते हैं। पवित्र ग्रंथों पर काला ब्रुश चलाने की उनकी उत्सुकता उन्हें भागवद्गीता में भी आतंक तलाश करने पर प्रेरित कर सकती है। गीता आत्म रक्षा में, और दमन तथा अन्याय के विरूद्ध युद्ध करने का आदेश देती है।जब अर्जुन ने अपने चचेरे भाइयों 'कौरवों' के विरूद्ध लड़ने के बजाए निहत्थे क़त्ल होना पसन्द किया तो कृष्ण ने उनको युद्ध करने की प्रेरणा निम्नलिखित शब्दों में दीः''तुम्हारे मन में ये अशुद्ध विचार कैसे आ गये जो तुम्हें स्वर्ग में जाने से रोक रहे हैं। इस पतित नामर्दी और दिल की कमज़ोरी को छोड़ दो, और उठो ऐ शत्रुओं को पराजित करने वाले!''

(भागवद्गीता अध्याय 1, श्लोक43-46 तथा अध्याय 2, श्लोक 2-3)

कल्पना कीजिए, यदि कोई इन श्लोकों की व्याख्या इस प्रकार करे कि भागवद्गीता हिंसा और अन्यायपूर्ण हत्या के लिए प्रोत्साहित करती है! तो क्या यह जान-बूझकर किया गया प्रयास शरारतपूर्ण और संदर्भ से हटा हुआ नहीं लगेगा? यदि उपयुक्त संदर्भ में समझा जाये तो गीता न्याय के पक्ष में और बुराई के विरूद्ध लड़ने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार इन श्लोकों का संदर्भ सच्चाई को समझने के लिए काफ़ी है।

आभार

यह किताब उन विचारों और गहन विश्लेषणों को प्रस्तुत करती है जिन्हें मैने कई वर्षों के दौरान सैकड़ों लोगों से प्राप्त किये। जिन लोगों ने इन शीर्षकों पर प्रभावपूर्ण विचार रखने में मेरी सहायता की है मैं उनकी सूची को यहाँ प्रस्तुत नहीं कर सकता।

मैं यहाँ कुछ विद्वानों का आभार प्रकट करना चाहूँगा जिन्होंने इस किताब के संकलन में सीधे मदद की या इसपर अपनी महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ भेजी। विशेष रूप से, इस पुस्तक के संकलन और लेखन में मैंने जिन लेखकों से लाभ उठाया है, उनका मैं निष्ठापूर्वक आभारी हूँ। उनमें से सबसे पहले मैं वयोवृद्ध राजनीतिशास्त्री और संयुक्त राज्य अमेरिका की सी.आई.ए. की नेशनल इन्टेलीजेन्स काउन्सिल के पूर्व उपाध्यक्ष ग्राहम ई. फूलर का आभारी हूँ। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश और प्रेस काउन्सिल ऑफ इण्डिया के अध्यक्ष मार्कण्डेय काटजू, आई.आई.टी मुम्बई के पूर्व प्रो0 श्री राम पुनयानी, मानवाधिकार कार्यकर्त्ता मि0 जान लुई एस्पॉज़िटो जो जार्ज टाउन विश्वविद्यालय में इस्लामिक स्टडीज़ और इण्टरनेशनल अफेअर्स के प्रोफेसर हैं और बंगलौर के पत्रकार मक़बूल अहमद सिराज का आभारी हूँ जो अनेक मीडिया संगठनों के लिए काम करते हैं जिनमें विशेष रूप से बी.बी.सी. विदेश सेवा भी सम्मिलित है।

इस पुस्तक के लिखने और संकलन करने के पीछे किसी लाभ या कमाई की नीयत नहीं है।

जिन विद्वानों ने मूल दस्तावेज़ की जांच की है उनमें डा0 यू0 आर0 अनन्तमूर्ति, जिनको मैन बूकर सम्मान के लिए नामित किया गया है और जो भारत सरकार से पद्म भूषण सम्मान प्राप्त कर चुके हैं, डा0 बी0 शेख अली पूर्व उपकुलपति मंगलौर और गोवा विश्व विद्यालय,प्रसिद्ध इस्लामी संस्था दारूल उलूम नद्वतुल उलमा के मोहतमिम और आल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल ला बोर्ड के अध्यक्ष मौलाना सैयद मुहम्मद राबेअ हसनी नदवी,भारत के सर्व श्रेष्ठ साहित्य सम्मान ज्ञानपीठ से विभूषित और कन्नड़ विश्वविद्यालय हम्पी, के संस्थापक उप कुलपति डा0 चन्द्रशेखर कम्बार, कर्नाटक पुलिस के महानिदेशक (क़ानून और व्यवस्था) श्री विपिन गोपाल कृष्ण और जामिया मिल्लिया विश्वविद्यालय

के प्रोफेसर डा0 मुहम्मद रफत सम्मिलित हैं। इस रचना को परिष्कृत करने में इन विद्वानों के परामर्श बहुमूल्य सिद्ध हुए। अल्लाह से दुआ है कि वह इन सब पर कृपा करे और इस रचना को पूरा करने में इनके योगदान को स्वीकार करे । आमीन!

इस किताब का हिन्दी में अनुवाद करने के लिए मैं जनाब अब्दुल्लाह दानिश और हिन्दी किताब की टाइपिंग और सेटिंग के लिए उनके सहयोगी श्री दिनेश कुमार सिंह का आभार प्रकट करना भी अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

इस रचना को व्यवहार रूप देने में उत्साह, वफ़ादारी और विनम्रता के साथ सहयोग देने के लिए मैं जनाब मुहम्मद नोमान खाँ का आभार प्रकट करना चाहूँगा।

मैं अपने परिवार के लोगों, भाईयों और बहनों का आभारी हूँ; मैं अपनी पत्नी शबाना फिरदौस और बेटी सय्यिदा सूफिया का भी आभारी हूँ जिसके साथ मैं अनेक महत्वपूर्ण अवसरों पर न रह सका क्योंकि मैं इस कार्य में व्यस्त था। और सबसे अधिक मैं अपना गहन आभार अपनी माँ अस्मत सारा के प्रति प्रकट करुँगा जो इस मिशन में लगातार उत्साह बढ़ाने में मुख्य भूमिका निभाती रहीं। यह उनकी दुआएँ और भली बातें ही थीं जो लगातार मुझे आगे बढ़ाती रहीं। लेकिन सबसे बढ़कर सर्वशक्तिमान अल्लाह की सम्पूर्ण दया थी जिसने मुझे इस काम को आगे बढ़ाने में आवश्यक संसाधन, गहराई और उत्साह उपलब्ध कराया। उसके उपकार के बिना यह मिशन न तो पूरा हो सकता था और न लाभप्रद हो सकता था। मैं अल्लाह से दुआ करता हूँ कि पूरी मानवता तक शान्ति और प्रेम का संदेश फैलाने में वह मेरा मार्गदर्शन करे। आमीन!

जनवरी, 2014

सैय्यद हामिद मोहसिन
चैयरमैन, सलाम सेन्टर

हवाले

1. मुहम्मद इन्साक्लोपीडिया ऑफ सीरत	अफजारुल रहमान
2. द इमरजेन्स ऑफ इस्लाम	डा0 मुहम्मद हमीदुल्लाह
3. लाईफ ऑफ मुहम्मद	हेकल
4. मुहम्मद	मार्टिन लिंग्स
5. प्रोफेट मुहम्मद	फतहुल्लाह गुलेन
6. मुहम्मद आल दैट मैटर्स	ज़ियाउद्दीन सरदार
7. इन्टोडयूसिंग इस्लाम	ज़ियाउद्दीन सरदार
8. ए वर्ल्ड विदआउट इस्लाम	ग्राहम ई0 फूलर
9. द इस्लामिक थ्रेट, मिथ ऑर रियलिटी	जॉन एल. एसपोज़िटो
10. डिमिस्टीफाईंग ऑफ इस्लाम	डा0 अली शिहाता
11. मुहम्मद एण्ड द क़ुरआन	रफीक़ ज़करिया
12. इस्लाम इन फोकस	हमूदा अब्दालाती
13. द होली क़ुरआन	अब्दुल्लाह यूसुफ अली
14. द क़ुरआन	डा0 नज़ीर अहमद

This document was created with the Win2PDF “Print to PDF” printer available at

https://www.win2pdf.com

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.
Visit https://www.win2pdf.com/trial/ for a 30 day trial license.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

https://www.win2pdf.com/purchase/